भारती-भाषांजलि का दूसरा पुष्प

पथ-निर्देश

[राजनीतिक उपन्यास]

लेखक—

पं० श्रीराम शर्मा 'राम'

मिलने का पता—

भारती (भाषा)-भवन

चर्खेवालाँ, दिल्ली

प्रथमावृत्ति

संवत् २००६] [मूल्य ५)

प्रकाशिका
(श्रीमती) सावित्री दुलारेलाल एम० ए०
संचालिका, भारती (भाषा) भवन
दिल्ली

अन्य प्राप्ति-स्थान

१. मानव-मंगल माला, पूसारोड, नई दिल्ली
२. गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, ३६ गौतम बुद्ध-मार्ग, लखनऊ
३ राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ टोली, पटना
४. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइन्स, आगरा

नोट — हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्तान भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे।

हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
चमनलाल कतियाल
अमरभारत-प्रेस
दरियागंज, दिल्ली

वक्तव्य

प्रत्येक भाषा में साधारणतया उपन्यासों की अधिकता पाई जाती है—उपन्यास पढ़नेवाले पाठकों की संख्या ही अधिक देख पड़ती है। इसका कारण यही है कि यह लघुपाक साहित्य पढ़ने से समय भी कटता है, और मनोविनोद भी होता है। हिंदी में सबसे पहले तिलिस्म और ऐयारी के उपन्यासों की ही धूम रही। बहुत-से लोग जासूसी उपन्यासों के भी प्रेमी थे। ऐसे उपन्यास प्रायः साधारण मनोरंजन के साधन हैं। उनसे पाठक का न तो मानसिक-उत्कर्ष ही होता है, और न ज्ञान की वृद्धि ही। हाँ, जासूसी उपन्यास कुछ लाभ अवश्य पहुँचाते हैं।

हर्ष का विषय है, अब उपन्यासों का वह युग चला गया। हिंदी में इधर सामाजिक-गार्हस्थ्य-संबंधी तथा राजनीतिक उपन्यास देख पड़ने लगे हैं, पर उनमें भी मौलिक उपन्यासों की गणना उँगलियों की पोरों पर की जा सकती है।

आज हम जिन लेखक महाशय का यह नवीन, मौलिक, चित्ताकर्षक, राजनीतिक उपन्यास लेकर पाठकों की सेवा में उपस्थित हो रहे हैं, वह इस क्षेत्र में उतने प्रसिद्ध न होने पर भी पाठकों के लिये अपरिचित नहीं। इस उपन्यास के लेखक पं० श्रीराम शर्मा हिंदी के सुप्रसिद्ध कहानीकार के रूप में देश के लाखों हिंदी-प्रेमी सज्जनों के सुपरिचित कलाकार हैं।

यहाँ इस उपन्यास के चरित्रों का विश्लेषण करने के लिये स्थान नहीं। पाठक स्वयं इसे पढ़कर समझ लेंगे कि यह किस कोटि का उपन्यास है। हमारी राय में यह उपन्यास अच्छे ढंग से लिखा गया है, और इसके सभी पात्रों के चरित्रों का अच्छा विकास हुआ है। शर्माजी को हम अभी से एक उच्च कोटि का उपन्यासकार समझते हैं, और हमें विश्वास है, आपकी इस रचना को पढ़कर पाठक हमारी सम्मति का समर्थन किए बिना न रहेंगे।

अंत में हमारा शर्माजी से यही अनुरोध है कि आप इस क्षेत्र में पूर्ण मनोयोग के साथ अग्रसर हों। आशा है, निकट भविष्य में हम आपका और कोई उत्कृष्ट उपन्यास लेकर पाठकों की सेवा में उपस्थित होंगे।

नई दिल्ली

तुलसी-जयंती, संवत् २००६ — सावित्री दुलारेलाल

हमारे नवीन उपन्यास

अंतिम चरण

(लेखक— पं० यज्ञदत्त शर्मा एम्० ए०)

लेखक ने इस उपन्यास की रचना भारत-विभाजन के पश्चात् कांग्रेस-सरकार के वर्तमान शासन-काल की पृष्ठभूमि पर की है। धर्म, समाज और राष्ट्र, तीनों की ही समस्याओं को लेकर इस काल के भारतीय जीवन में क्या-क्या उथल-पुथल हुई और समाज के स्वार्थी समुदाय ने किस प्रकार परिस्थितियों से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा किया, इसका चित्रांकन इस उपन्यास के शब्द-शब्द से मुखरित हो उठेगा। उपन्यास का प्रत्येक पात्र बहुत सबल है, और वह अपने ढंग के समाज का प्रतिनिधि भी है। मानव-जीवन को व्यापक स्वार्थपरता को उपन्यास का नायक ब्रह्मचारी आनंदप्रकाश तटस्थ रहकर देखता है, और अपनी कला द्वारा अंत में उसका व्यंग-चित्र समाज के रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। उपन्यास के अंत में स्पष्ट कर दिया गया है कि जनता के ठेकेदार बनकर स्वार्थी लोग जनता को धोखा देने में अधिक दिन सफल नहीं हो सकते। सुंदर छपाई, बढ़िया गेट-अप और कला-पूर्ण आवरण पृष्ठ-सहित पुस्तक का मूल्य ७॥)

सूर्यलोक

(लेखक—श्री वसंतकुमार माथुर एम्०ए०, एम्०एस०-सी०, बी० टी०, विशारद)

उपन्यासक्षेत्र में हिंदी ने विशेष रूप से प्रगति की है, और एक-से एक सुंदर रचना साहित्य को प्रदान की है। इस दिशा में मुं० प्रेमचंद का उपन्यास-साहित्य हिंदी की वह अमर थाती है, जिसे लेकर वह संसार

के मध्य गर्व के साथ रक्खी हो सकती है। तुलनात्मक दृष्टि से हिंदी में उच्च कोटि के उपन्यासों में सूर्यलोक का एक विशेष स्थान होगा। इसमें मौत है, संघर्ष है, साहस है, अदम्य निःस्वार्थता है अर्थात् पुरुषोचित सभी गुण हैं, और साथ ही प्रेम की विमल रेखा सूर्य के उग प्रकाश की भाँति है, जो बादलों को रंगीन कर देती है। इसके पात्र आहें भरने के स्थान पर बंदूक पकड़ते और पुरुषोचित गुणों के बल पर अपनी प्रेमिकाओं को प्राप्त करते हैं। हमारा दावा है, ऐसा आदर्श, ओजपूर्ण उपन्यास हिंदी-साहित्य में अब तक प्रकाशित नहीं हो सका। मूल्य ८)

पथ-निर्देश

रानी के जीवन का वह क्षण नितान्त दयनीय, अशांत और कठोर बन कर आया कि जब उसके पति अभयबाबू रुधिर से प्लावित और अशक्त अवस्था में घर के द्वार पर आये। देखते ही, रानी को जैसे सांप सूँघ गया। उसकी छाती फट पड़ने लगी। पल भर में मोहल्ले के व्यक्ति भी एकत्र हो गये। अभयबाबू चारपाई पर डाल दिये गये। उनके खून से भीगे हुये कपड़े उतार दिये। एक व्यक्ति डाक्टर को बुला लाया। फटा हुआ सिर टांके लगा कर बाँध दिया गया।

एक व्यक्ति ने रानी को बताया—'यह सब पुलिस के हाथों हुआ—नगर के गुण्डों ने भी अपना बल प्रदर्शित किया!'

किन्तु रानी का मुँह झुका था। उसके अन्तर में विद्रोह उठ चुका था। उसकी आत्मा की वह पीड़ा आँखों के द्वार पर भी आ गयी। अन्तर कोलाहल से भर गया। जितने भी व्यक्ति, उस समय उसके घर आये हुये थे, उन सभी का मुँह झुका हुआ था। वह रानी के पति अभयबाबू की ओर तो देखने का साहस करते, परन्तु रानी की उन दयनीय, करुणामयी और वेदना से पूरित आँखों को देखने का साहस कदाचित उनमें नहीं था। वह जब भी उन आँखों को देखते, तो लगता कि जैसे ज्वाला का एक बड़ा समूह उन आँखों के द्वार से फूटा पड़ रहा था। ज्वालामुखी का वह लावा मानों उन्हीं को लक्ष कर रहा था। उसी पुरुष-समाज को, कि जिसका एक व्यक्ति यों बेहाल कर

दिया गया। हाय! कितना दीन था वह समाज......कितना हीन!

धीरे-धीरे आगन्तुक लौट चले। स्त्रियाँ भी चली गयीं। वे नारियाँ रानी को शाँत रहने के लिए भी कहती गयीं। उत्तर में रानी ने कोई बात नहीं कही, अपितु, जो कुछ सुना, उसी को मन में उतार कर, जीवन की उस अशांत घड़ी में अपने तईं एक सहारा ही अनुभव किया। उसकी दीनता और अवशता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता था कि आँखों में आँसू और मुँह पर अंतर का कोलाहल आकर भी मौन बन गया था!

जब सब पड़ोसी चले गये, तो रानी ने पास खड़े हुये जग्गू नौकर को संबोधित करके कहा कि वह चौका उठा दे। जितनी रोटियाँ बनी हैं, उन्हें खा ले, बर्तन मांज ले।

जग्गू कई वर्ष का पुराना नौकर था, रानी को मा समझता था। रानी की बात सुनी, तो उसने कह दिया—'मैं नहीं खाऊँगा। चौका उठा दूँगा।'

इतना सुनकर रानी ने फिर उद्वेगपूर्ण स्वर में कहा—'पागल है, तू! खायगा क्यों नहीं,—खा! जा!'

जग्गू ने रानी की ओर देखा। तदन्तर ही, रानी की आँखों में भर आये आँसुओं को भी उसने लक्ष किया। उसने चाहा कि फिर भी खाने के लिए इन्कार कर दे, किन्तु इसके बाद ही, रानी क्या कहेगी, वह जानता था। निदान, उसने मुँह से कुछ नहीं कहा। वह वहां से चलकर रसोई-घर में पहुँच गया। बना हुआ खाना उठाकर रख दिया और बर्तन मांजने बैठ गया। उसी अवस्था में, उसके मन में फिर आया कि जिस रानी और अभयबाबू ने उसे बचपन से अपने पास रखा, उसके अनेक दोषों को भी क्षमा कर दिया, उसी अभयबाबू और रानी पर विपत्ति

का वह बड़ा-सा पहाड़ गिरता हुआ देख, बरबस, उसका मन फिर खिन्न बन गया। वह रानी कि जिसने उसे अपने पुत्र विनोद के समान ही देखा और अपना समझा, उसी रानी को अपने पति की पीड़ा में दुःखी देख, जग्गू का मन भर आया। और उसी समय जग्गू मन में कह रहा था, राम ! राम ! बात भी कुछ, पुलिस ने ऐसी लाठी चलायी कि जैसे आदमी कुछ नहीं ! पत्थर है ! हाय ! उन निर्दयी, कठोर और निष्ठुर सिपाहियों ने भुला दिया सब कुछ ! वह कह रहा था—' हाँ, उनके हाथ में तो शक्ति थी न, उन्हें किसका भय ! जरूर, पत्थर का कलेजा लेकर लाठी चलायी होगी ! आंख मूंद कर ! उसने कहा—अच्छा ही हुआ कि लाठी बीच सिर पर नहीं पड़ी; नहीं तो......नहीं...

उसी समय, जग्गू काँप गया। बर्तन मांजते हुए उसका हाथ रुक गया। रानी ने पीछे से आकर कहा—'अरे, तूने खाया नहीं, जग्गू !' पहिले खा लेता।'

सुनते ही, एकाएक वेदना के स्वर से जग्गू बोला—बीबी जी—'

'अरे हाँ, तू खा ले।' आहत स्वर में रानी ने फिर कहा। किन्तु जग्गू मौन रह गया। उत्तर नहीं दिया। लेकिन जब रानी उसके सामने से पानी के लिये गिलास उठाने लगी, तो हठात उसने देखा कि जग्गू रो रहा है। देखते ही, रानी ने आतुर होकर कहा—'जग्गू !'

मानों झटका खाकर—जग्गू ने फूटकर रोते हुए कहा—बीबी जी !

'अरे, तू क्यों रोता है......तू......

किन्तु रानी ने तुरन्त ही फिर कहा—'हाँ, तू क्यों न रोयेगा, रे ! तू भी उनका अपना है,—अच्छा, रे !' वह बोली—न, जग्गू ! रो मत ! बाबू जी अच्छे हो जायेंगे, ! आमला तो है, इस दुनिया में सब-कुछ होता है। जहाँ खुशी है, वहाँ दुःख भी......जिनके

पास शक्ति है, उन्हीं के द्वारा उसका दुरुपयोग भी यहाँ देखा जाता है रे, जग्गू!'

जग्गू ने कुछ नहीं कहा। किन्तु यह स्पष्ट दिखायी दिया कि उसकी बीबीजी ने जो कुछ कहा, उसको वह समझ अवश्य गया। वह उसके हृदय के अन्तराल में भी समाविष्ट हो गया। इसी से, उसका मुँह भारी बन गया। आँखें चढ़ गयीं और होठों पर जैसे कुछ आता हुआ रुक गया।

उसी समय रानी ने रसोई के द्वार पर खड़े होकर फिर कहा—'गरीबों के लिये यह भी एक बड़ा पाप है कि पेट के लिए जिसकी नौकरी करें, उसकी उल्टी-सीधी बातें भी स्वीकार करते जायें। उन बातों को न मानें तो पिटें, जीवन से हाथ धोयें। वह एकाएक तड़प कर, फिर जग्गू की ओर देखते हुए बोली—'हाँ, जग्गू! जिन्दगी भी पाप है......जीवित रहना एक समस्या है!'

अनायास ही, जग्गू ने सांस भर कर समर्थन किया—'हां, बीबी जी!'

वहाँ से रानी फिर अभयबाबू के पास चली गयी। इतनी देर में उनकी बेहोशी दूर हो गयी, चेतना आ गयी। जब रानी पास गयी तो उन्होंने पूछा—'विनोद कहाँ है? जग्गू?'

रानी ने बताया कि विनोद सो रहा है। जग्गू काम कर रहा है। तदन्तर उसने तबियत का हाल पूछा। उत्तर में अभयबाबू ने मुँह फेर लिया और फिर आँखों को बन्द कर लिया। यह देख, रानी ने आगे कुछ और कहना उचित नहीं समझा। उसने अनुभव किया कि उसके मन में जो हलचल थी, वही अभयबाबू के मन में है। निदान, उस अवस्था को लक्ष कर उसने अशान्त भाव में, हाथ की हथेली पर अपना मुँह रख लिया।

उसी समय जग्गू भी वहाँ आ खड़ा हुआ। अभयबाबू ने उसकी ओर देख कर कहा—'जग्गू !'

सुनते ही, जग्गू ने आतुर हो कर कहा—'जी, बाबूजी !'

अभयबाबू ने कहा—'दिखता है, तू रोया है! पागल !' उन्होंने उसकी ओर देखकर—कहा-'रोया नहीं करते बेटे ! यह तो होना ही था। यहाँ ऐसा ही होता है। मैं भी तो तुझको मार देता हूँ। गालियाँ भी देता हूँ। मैं भी......

रानी ने देखा कि बात करने के साथ, अभयबाबू का स्वर द्रवित बन गया। मन का उद्वेग वाणी में उतर आया। वह रोक कर बोली—'तुम चुप रहो ! मन अशाँत है। सिर में चोट है। इस तरह तो खून का दबाव बढ़ने का अंदेशा है !'

अभयबाबू ने कहा—'अन्देशा तो मुझ सरीखे व्यक्ति के चारों ओर घूमता है। आज का मानव इसी अवस्था में पड़ा है। देखती तो हो, आज का व्यक्ति अशांत है। पीड़ित है। जीवित रहते हुए भी मृत्यु सरीखी पीड़ा से व्याकुल है।'

रानी ने कहा—इतना सब देख कर भी, मैं न समझूंगी, क्या !'

'हाँ, रानी ! इसी से कहता हूँ जिस प्रकार आज तुम्हारा पति इस क्षत-विक्षत अवस्था के साथ तुम्हारे सामने आ पड़ा है, उसी प्रकार तो आज घर-घर इसी अवस्था का नग्न-ताण्डव हो रहा है। मानव जल रहा है—धू धू ! समाज पीड़ा से भरा हुआ, जन-जन की, कोटि-कोटि आपदाओं को अपनी छाती पर लिए हुए विक्षिप्त बन गया है। बताओ तो, ऐसी अवस्था में क्या करें मानव......ऐसे......

रानी गंभीर थी, उसका मन भर आया। स्वर अवरुद्ध हो

गया। उसकी आत्मा अशांत बन गयी। अन्तर का उद्वेग आँखों में छलछला आया। किन्तु जब उसने देखा कि अभयबाबू की आँखों में भी आँसुओं का वेग उमड़ आया है, तो बरबस ही, उसके मन का रुका हुआ बाँध टूट गया। आँखें रो पड़ीं और उनका उमड़ता हुआ प्रवाह उसके गोरे-गोरे और सलोने गालों पर बह गया। लेकिन उसी समय, उन दोनों के लिये यह विषय भी कठोर और विषम बन गया कि अभयबाबू ने अपनी भरी हुई आंखों से देखा कि जग्गू उनके पैरों पर सिर रखे हुए फूट-फूट कर रो पड़ा है, वह रोता जा रहा है। इतना देखते ही, चंचल बन कर अभयबाबू ने अपनी पीड़ा भुला दी और कातर भाव में जग्गू का हाथ पकड़ लिया। उसका सिर अपनी छाती में लगाते हुये कहा—'अरे जग्गू...मेरा बेटा!'

दूसरा अध्याय

जग्गू कह रहा था—'बाबूजी, उस सिपाही को मुझे बता दीजिए कि जिसने आप पर हाथ उठाया। इतना मार दिया!'

अभयबाबू ने कहा—'क्या करेगा—तू मारेगा?' तदंतर ही उन्होंने क्षणिक हँस कर कहा—'जिस व्यक्ति ने मुझे मारा, वह बड़ी शक्ति रखता है, जग्गू! वह एक बड़े साम्राज्य का प्रतिनिधि है। संसार की बड़ी शक्ति उसके सिर पर है। वह कहने लगे–'जानता है तू, पुलिस का सिपाही जिस प्रमाद में अन्धा होता है, वह उसे वसीयत में मिलता है। और शक्ति का दुरुपयोग कौन नहीं करता! अधिकार पाकर कौन अन्धा नहीं बनता! जो नहीं बनता, वह देवता है! वह मनुष्य है!'

रानी ने कहा—'सिपाही का क्या दोष! वह तो पूँजीवादियों के पाप की प्रतिक्रिया है!'

अभयबाबू ने कहा—'हाँ, यही मेरा मत है। शक्ति पाकर ही मनुष्य अन्धा बन जाता है, 'उसी समय द्वार पर एक युवक आकर खड़ा हुआ। उस ओर देखते ही, अभयबाबू ने कहा—'नजीर भाई! आ जाओ!' नजीर ने आगे बढ़ कर रानी की ओर देखा और सलाम करके कहा—'आज जो कुछ हुआ, वह अभी तक मेरे मन में और आँखों में डोल रहा है, भाभी!' वह बोला–'जानता तो पहिले भी था कि पैसा आदमी को अन्धा बनाता है। परन्तु पैसे का आदमी अपनी खुदगर्जी के लिये दूसरे का ईमान और प्राण भी ले लेने की बात सोच सकता है, यह मैंने आज ही देखा। सच, भैया आज बाल-बाल बच गये......कहूँ कि मौत के मुँह से निकल आये!'

अभयबाबू ने कहा—'वह शायद तुम्हीं थे कि मुझको पीछे हटा लिया था।'

नजीर ने गंभीर बनकर कहा—'हाँ, मैं ही था।' उसने बताया—'लाठी का दूसरा वार मेरे सिर पर न पड़ कर कंधे पर पड़ा। चोट गहरी नहीं लगी। डाक्टर से पट्टी बँधवा ली और अब यहीं चला आया।'

रानी ने कहा—'तुम भी आराम करते। यहाँ तो कल भी आ जाते।'

नजीर बोला—'लोगों ने तो रोका, पर दिल नहीं माना, भाभी! भैया किस हालत में हैं, यह जानना मेरे लिये जरूरी था।'

तदनन्तर सभी मौन हो रहे। सभी गंभीर। दिखता था, वे सभी—रानी, अभयबाबू और नजीर—एक ही समस्या पर उलझे-अटके थे। पैसा और व्यक्ति—ये दोनों विकल्प मानों सादृश्य न पाकर भी एक दूसरे के संपर्क में आकर कितने विपस और कठोर बन गये कि समझे नहीं जा सकते और इसी को वे तीनों समझने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु प्रस्तुत समस्या इतनी कठोर तो थी नहीं कि जिसे न समझा जाता। वह तो कोटि-कोटि जनों की वेदना से पूरित बन कर युग-युग का गंभीर और कठोर आर्त्त अपने साथ लिये हुए उसी प्रचार अजेय बन कर प्रतिष्ठापित थी। उसकी वास्तविकता दिखती थी। विश्व के जिन अवशेष रह गये, खंड-हरों पर नवीन और सुसज्जित दुनिया का निर्माण हुआ, उसी के अन्तर में छुपी हुई मानव की पुकार दब नहीं गई...वह मिटाई भी नहीं जा सकी। क्रांति, अशांति और मानव की हुँकार उन हीरे-मानिकों से सजी हुई अप्सराओं को बरबस डरा रही थी

और कंपित कर रही थी। लेकिन फिर भी मानव मूढ़ था, अवि-चल था, अन्धा था, वह उस युग की पुकार को अपने पैरों से रौंदकर आगे बढ़ रहा था। मानव चिल्ला रहा था—अभयबाबू, नजीर और रानी का स्वर भी उस जनता की पुकार में सम्मिलित था। लेकिन, हाय! वह क्रूर, दम्भी और अपनी शक्ति द्वारा स्वेच्छित बना हुआ मानव—जग को—उन सबको—रौंदता हुआ, मानो कुछ देख नहीं रहा था...समझ नहीं रहा था, वह मानव!

उसी समय, अभयबाबू ने गहरी साँस छोड़ कर कहा—'सूझता नहीं कि क्या होगा! कैसे होगा!'

नजीर ने भी अपनी साँस छोड़ी और उसी स्वर में कहा—'सचमुच समझ में नहीं आता,—ऐसे तो साँस भी नहीं चलता!'

रानीने तभी रोषपूर्ण होकर कहा 'गरीब मरेंगे...मिट्टी में मिलेंगे। गोलियों और लाठियों के शिकार होंगे,—ये इंसान,—खुदा के बन्दे!

सुनते ही लाल बनकर, नजीर बोला—'न भाभी! ऐसा होगा, आगे भी होगा, तो देखना तुम, इन ऊँची बुर्जियों का सिर जमीन में झुक जायगा, पैसे वाला मिट्टी में मिल जायगा!'

छूटे तीर की तरह, रानी ने और अधिक अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'मैं ऐसा नहीं देख पाती, नजीर भाई! पैसे वाले तुम्हारी जिस दुर्बलता से लाभ उठाते हैं, तुमने उसे समझा है क्या?' उसने कहा—आज ही क्या—'धनवान सदा ही मनुष्य की दुर्बलता और विवशता से लाभ पाता रहा है। पैसे का आदान-प्रदान इसी एक नीति पर हुआ है। देखते हो, मुट्ठी भर धनवानों ने सारे-के-सारे विश्व को बाँध रखा है। उनकी जैसी नीति है, उसके अनुसार ही, उनका जाल फैला हुआ है। बताओ तो, आज तुम्हारे कारखाने में ऐसा क्यों हुआ।

में सवाल करती हूँ, क्यों ?' इतना कहते ही रानी का मुँह लाल हो गया। आँखें चढ़ गयीं। गले की नसें भी फूल गयीं। उसी अवस्था में उसने और अधिक रोष में बढ़ कर कहा—'भैया नजीर, तुम्हारे भैया जिस प्रकार खून में डूबे हुए आज घर के द्वार पर आ पड़े, उसके बाद ही तो रामू आया और मुझे तुम्हारी मिल के मजदूरों की करतूत भी बता गया। अब भी वही मेरे मन में घूम रहा है। लगता है कि जैसे रामू का एक-एक शब्द मेरी आत्मा में अंगारे बन कर फूट पड़ना चाहता है। वह काँटे बन गया है।

एकाएक, बरबस ही, नजीर ने पूछा—वह क्या भाभी ?

'उसे तुम भी जानते हो ! यह तुम्हारे भैया भी।' रानी ने कहा—'मेरा मन है कि मजदूर स्वयं मूर्ख है . विवेक शून्य है !

'यह तो मैं मानता हूँ, भाभी !' नजीर ने सांस भर कर कहा।

'और यह भी मानोगे कि आज जो कुछ हुआ वह मजदूरों की कृपा से हुआ। मिल-मालिकों और पुलिस वालों ने तुम्हारी दुर्बलता और निष्क्रियता का बरबस ही फायदा उठा लिया। तुम रोटी माँगने गये थे, ..पत्थर लेकर आये। अपने सिर फुड़ाकर लौटे !'

'भाभी !' नजीर कातर बन गया।

'नजीर भाई ! मैं कहती हूँ रोटी मांगने से नहीं मिलती। वह छीनी जाती है...ली जाती है !' रानी ने कहा—'और कैसी बात कि तुम क्रांति के दूत बन कर आये, पर मौत से डरने लगे थे...तुम जीवन से मोह करने लगे, नजीर मुहम्मद !'

उस समय नजीर मुहम्मद मौन रह गया। उसका सुन्दर, सुडौल गोरा-गोरा मुँह काला पड़ गया। रानी ने बरबस ही, जैसे उसके मुँह पर स्याही का पोता फेर दिया। उस समय अभयबाबू

का मुँह आसमान की ओर उठा हुआ था। लगता था कि उनके मन में भी बहुत अधिक अशांत वातावरण छा गया था अथवा काले और कठोर बादलों ने उसके मन को ढंक लिया था।

उसी समय रानी ने फिर कहा—'रामू ने मुझे बताया कि जब आप लोगों का जलूस मिल के फाटक पर पहुँचा, तो पुलिस के सार्जेन्ट ने केवल डराने के अभिप्राय से जलूस को लौट जाने के लिये कहा। उसने अपनी पिस्तौल का मुँह भी ऊपर उठाया। सिपाहियों ने लाठियों को सम्हाला। कुछ ने बन्दूकों की नालों का मुँह हड़ताली मजदूरों की ओर किया। बस, इसका ही यह परिणाम हुआ कि जलूस का आधा भाग पीछे हट गया। तुम लोगोंके कहने से जो मजदूर रुके, उन पर लाठियों का प्रहार हो गया, इतना कहने के बाद ही, उसने अपनी आँखों में जाने कितनी भयंकर ज्वाला उँडेलते हुए कहा—भाई नजीर, मैं पूछती हूँ क्या उन मजदूरों के लिये यही उचित था। इस कायरता का प्रदर्शन करना क्या उनकी हीनता का सबूत नहीं था!' वह फिर बोली—'रामू ने मुझे यह भी बताया कि जलूस से पूर्व ही, बहुत से मजदूर मिल के अंदर पहुँच गये थे। मिल-मालिकों द्वारा उनके लिये मिठाई-पूरी के सामान तक बनवाये जा रहे थे। हाय! कैसी हीनता थी वह! कितनी दयनीयता! उसने कहा—'और चाहते हैं मजदूर की उन्हें कोई देखता नहीं...कोई मानता नहीं, छिः! भूखे कुत्ते! दाने-दाने पर मरने वाले...'

नजीर ने बात सुनी और अभयबाबू की ओर देखा।

रानी से सुनते ही अभयबाबू ने कठिनाई से कहा—'हाँ, यह ठीक है, नजीर भाई! मिल में मजदूरों के लिये खाना बन रहा था। जलूस में जितने हड़ताली थे, पुलिस को देख, उन्हें भागना

भी नहीं था। यह तो उनकी कायरता का सबसे बड़ा प्रमाण था।'

नजीर नें अपने हाथ मलते हुए कहा—'ओह, सचमुच !'

अभयबाबू ने कहा—'मजदूर स्वयं अयोग्य हैं, यह भी मैंने आज समझा।' तदनन्तर उन्होंने फिर रानी की ओर देख कर कहा–'रानी, तुम्हारी बात को स्वीकार करने के बाद, हमें यह भी मानना पड़ेगा कि श्रमिक-वर्ग में जो आज इतनी कायरता और आत्महीनता दिखाई देती है, वह भी पूँजीवाद की नीति का ही दुष्परिणाम है। उसने रोटी छीन कर जनता को कायर बना दिया है। शनैः शनैः जिस प्रकार इस रौरवकाण्ड की रचना की गई और आदमी को अपना दास बनाने की प्रवृत्ति बलवती होती गयी, उसी की प्रतिक्रिया का यह परिणाम हुआ है कि आज का मानव दास की श्रेणी से भी निम्न स्तर पर पहुँच गया है। मानव भिक्षुक बन गया है...आत्महीन बन गया है, यह मानव है !'

रानी ने कहा—'इस सत्य के पास एक और रहस्य भी है। मैं तो उसी को देखती हूँ और मानव का पाप मानती हूँ !'

नजीर ने गम्भीर बनकर पूछा—'क्या ?

रानी ने शांत व सतेज बनकर नजीर की आँखों में झाँकते हुए कहा–'वह हो, तुम ! तुम्हारे साथी !' वह कहने लगी–तुम मजदूर बनकर भी, अपने को मजदूर नहीं मानते। मध्यमवर्ग का मानते हो। और मध्यमवर्ग जहाँ क्रांतियों का जन्मदाता रहा है, वहाँ बुराइयों और नीचताओं का प्रदर्शक भी बना है। यह वर्ग अपने स्वार्थ के लिये कभी मजदूरों को बहकाता है और कभी अवसर पाकर पूँजीपतियों की खुशामद भी करता है। बड़ा संदिग्ध वर्ग यह ! जैसे मनुष्य का श्राप ! और आफत यह है कि आज के इंसान की समस्याओं का पुँज भी यही वर्ग बना है।'

एकाएक नजीर ने ओर से कहा—'तुम ठीक कहती हो, भाभी! बीच का आदमी ही इन झगड़ों का सरदार है। वह दोनों को ठगना चाहता है।'

तनिक मुसकराकर अभय बाबू ने कहा—लेकिन यह भी तो समझो, मध्यम वर्ग का व्यक्ति ही अधिक परेशान है। वह दोनों ओरकी वास्तविकता समझता है। जीवन उसी का कठिन है, वही जीवन देखता है।'

'इसलिये वह भ्रम में है। दूसरों को भी भ्रम में रखना चाहता है।'—रानी ने कहा।

उसी समय जग्गू ने आकर पूछा—'बाबूजी, दूध लाऊँ?'

'हाँ अब ले आओ। गला सूख रहा है। अब मन भी स्वस्थ हो चला है।'

रानी ने उठ कर कहा—'लो, मैं बातों में ऐसी लगी कि भूल गयी।'

तुम बैठना नजीर भाई, दूध पीकर जाना। रानी चली गयी। वह मुसकराकर नजीर को बैठे रहने के लिये, हाथ से भी संकेत कर गयी।

तीसरा अध्याय

अभयबाबू के जीवन का यह अनुभूतिपूर्ण सौभाग्य था कि रानी सरीखी सुयोग्य और सुन्दर पत्नी को पाकर, उनका जीवन-पथ अधिक आसान बन गया। रानी उनके ही विचारों की मूर्तिमान नारी थी। भले ही, अभयबाबू ने जीविका के हेतु एक मिल में विशिष्ट पद प्राप्त कर लिया था, परंतु उनके जीवन की मांग कुछ और थी। विद्यार्थी-जीवन में ही, अभयबाबू ने समाज और देश के प्रति अपनी सेवायें अर्पित करने की आवश्यकता अनुभव की थी। देर से उनके हृदय में यह भावना पनप रही थी कि मनुष्य-जीवन पाकर अनुभूति और प्रेरणा का योग पाना ही उद्देश्य-सिद्धि का आधार है .....जीवन के भोग और कामनाओं में डूब जाना भला इन्सान के लिए संगत कहाँ! अतएव, उनके हृदय की वह भावना अभी जीवित थी,—जाग रही थी। रानी सरीखी कोमल और भावनामयी पत्नी पाकर, अभयबाबू की वह आकांक्षा अपेक्षाकृत बलवती हुई। फलस्वरूप, वह रात-दिन फूलती-फलती गयी। रानी शिक्षित थी। वह समाज की वर्तमान गति को समझने की क्षमता रखती थी। वह जानती थी कि समाज में अभिव्यक्ति की शक्ति नहीं रही। निरन्तर की दासता ने जाति की आत्मा दुर्बल बना दी। रानी जब भी अवसर पाती, तो अभयबाबू और उनके मित्रों से तर्क करती। वह जीवन की गहराई में उतरना चाहती। उस रहस्य को समझने के लिये तड़पती। लेकिन एक पूंजीपति मिल-मालिक द्वारा जिस पाशविक प्रवृत्ति का उसे

आभास मिला और स्वयं उसी का पति शिकार बना, तो उस अवस्था को देखकर निश्चय ही, रानी के मन की मानसिक धुरी मानो टूट-टूट जाने लगी। वह अपने को स्थिर रखने में समर्थ नहीं हो सकी। उसके मन में बार-बार आया कि समाज बदले। पुराने रास्ते पर चलने वाले देश की दिशा बदलें। और रानी के मत से उसका उपाय एक था,—क्रांति—जन-क्रांति! वह प्रबल इच्छा करती कि कोलाहल बढ़े। मानव, दासता से मुक्ति पाने के लिये कर्मण्य बनें और सजीव बने! भारत माता प्यासी है तो युवकों का रक्त उसे पीने को मिले। साम्राज्यवादी और पूंजीवाद की मनोवृत्तियाँ उस रक्त में डूब जायें......निर्धन और 'दीन मानव की आंखें खिल जायें। रानी यह देखकर भी दुःखी थी कि समाज का अगुआ,—बुर्जुआ—इतना स्वार्थी है कि मनुष्यता भूल कर जाति और देश का शोषण करता है। फिर भी वह निर्बाध चलता है......सिरमौर बनता है......सोने-चाँदी के महल निर्मित करता है! समाज के नेता भी पैसे के दास हैं। वह भी पैसे की शक्ति और उसका चमत्कार स्वीकार करते हैं। सोचती रानी, राम-राम! मुँह में राम, बगल में छुरी लिए हुए ये नेता, ये समाज-सुधारक, ऐसे क्या जनता-जनार्दन की सेवा कर सकते हैं। न, ये समाज के चोर हैं,—लुटेरे हैं!' वह कहती, मजदूरों और श्रमजीवियों में बैठ कर, उनके हितचिंतक बनते हैं और जब पैसेवालों के वैभव को देखते हैं, तो उसमें से भी कुछ थोड़ा-सा, अनायास ही, वह भी पाना चाहते हैं। उनकी खुशामद करते हैं......मजदूरों को हीन बताते हैं, ये लोग। मोटरों में घूमते हैं, बंगलों में रहते हैं और अन्धकार में पड़े हुए मजदूर के साथी बनते हैं,—कम्युनिस्ट बनते हैं—मूर्ख!

कदाचित यही कारण था कि प्रायः रानी के मन में इतना धनिकों के प्रति रोष नहीं उठता, जितना कि अपने नेताओं की निष्क्रियता के लिए। वह इस बात की कल्पना नहीं कर पाती कि नेता भी धनिक हो, वैभव का पुजारी हो। रानी एक सम्माननीय वकील की पुत्री थी, किंतु श्रमजीवियों के साथी बनने के कारण उसके पिता कभी जेल में जाकर बैठते और कभी बाहर रहते। वे प्रायः मजदूर और किसानों के कामों में लगे रहते। यही कारण था कि वह सदा पैसे के मोहताज रहते। निरन्तर ही, अपनी पत्नी और पुत्री रानी को सम्बोधित करके कहते थे, यही है, जीवन का वह मर्मस्थल कि जहाँ समाज में काम करने वाला कार्यकर्त्ता पैसे वालों के सामने झुकता है ..उसे झुकाया जाता है। लेकिन वह इतने कठोर, अपनी धुन के इतने पक्के कि घर में भोजन का अभाव होने पर भी न तो अपने पथ से विचलित हुए, न अपनी भावना और इच्छाओं के विपरीत पैसे-वालों के दास बने। इस प्रकार रानी के पास भी पैतृक सम्पत्ति थी। वह सम्पत्ति पैसा नहीं, जायदाद नहीं, अपितु जीवन की भावना थी, अन्तर्ज्योति का प्रकाश था। निस्सन्देह, उसी प्रकाश में, वह अपना जीवन-पथ देखने में समर्थ थी। रानी जिस प्रेरणा से अन्तभूत थी, कदाचित वही उससे कह रही थी, अभयबाबू को पुलिस द्वारा घायल पाकर भी सुन रही थी, उसका पति जीवित रहे, त्याग और बलिदान का प्रतीक रहे।

किंतु रानी भी नारी थी। दुर्बलता उसके पास भी थी। पति का मोह वह भी अपने हृदय में छिपाये थी, वह यौवनमयी नारी इस बात पर अधिक देर तक नहीं टिकी रही कि उसका पति इसी प्रकार घायल बनता रहे,—विपिन्न रहे! फलस्वरूप, जब

यह अपने वर्तमान को काँपता हुआ पाती, तो स्वयं भी सिहर जाती। वह चाहती कि पति से कहे इस दिशा को छोड़ दो......शहर भी त्याग दो! लेकिन, जब-जब रानी के अंदर इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न होती, तो तदन्तर ही, वह अपने आप में खो जाती, लगता कि वह बरबस शून्य भी बन जाती। ऐसे अवसर पर उसकी आत्मा में से जिस अनुभूतिपूर्ण और त्यागमयी भावना की पुकार उठती, तो बरबस, रानी अपने-आप अभूतपूर्व और अलौकिक बनने की बात भी सोच पाती। उस समय, वह इतनी तन्मय और अधीर बन जाती कि लगता, शतशत और कोटि-कोटि मानवों की शक्ति से आविर्भूत होकर वह एक दुर्बल नारी न रह पाती, सबल और अपने-आप में अजस्र शक्ति पाजाती, जैसे दुर्गा या महाकाली बनने की कल्पना करती। हो और रानी उस भूतपूर्व तेज से आलोकित होकर चमक उठती। उस समय निःसन्देह, वह पति को चिंता छोड़ देती। अपने एक मात्र बच्चे की ममता त्याग देती। रानी के लिए यह भी कैसी अकल्पनीय बात थी कि यद्यपि, वह अभी तक अपने घर में ही रही, परन्तु जब अपने मानस में किसी गुप्त शक्ति का आभास पाती, तो चाहती कि उस शक्ति को पाये, उसे देश और समाज में चमकाये। वह समाज के व्यक्तियों, किसान और मजदूरों के बीच में जाकर उन्हें ललकारे, 'तुम सोते हो, तुम टुकड़ों पर जीते हो, उठो! देखो, तुम्हारे खून-पसीने से यह भव्य संसार बना है। इन महलों की ऊंची ऊंची बुर्जियों में जिस मानव का अट्टहास गूंज रहा है, वह तुम्हारी अकर्मण्यता और मूर्खता का प्रदर्शन कर रहा है,—मेरे बच्चो! मेरे भाइयो! आओ, मा भारती के इस उजड़े हुये आँगन में बिछे हुए इन

चाँदी-सोने के ठीकरों को ठुकरा कर तुम मनुष्यता की पूजा करो...तुम मानव में मानवीयता का मंत्र फूंक दो, भारतवासियों! किन्तु हाय! कैसी विवशता थी उस रानी की कि मन में उतना वेग और अरमानों का अगाढ़ श्रोत पाकर भी वह घर की दहलीज के बाहर नहीं हुई। वह पति, बच्चा और घर,—उन तीनों की सेवा में समर्पित होकर ही, अपना जीवन बिताती रही। पति और बच्चा सुखी है, तो वह भी सुखी है। उन्हीं के जीवन में वह अपना जीवन देखती है। परन्तु जब रानी ने यह देखा कि यह संघर्ष—पैसा और मानव का संघर्ष—रुकने वाला नहीं, अपितु, नित-नित आगे ही बढ़ने वाला है; तो उसने एक बार फिर अपने अंतर में उठता हुआ भूचाल देखा। उससे अपनी आत्मा और मन को भी प्रभावित होते देखा। यह तो वह निर्णय नहीं कर सकी कि वह क्या करे,—किस दिशा को चुने—लेकिन, यह सत्य ही था कि बार-बार उसके मन ने कहा, यह अन्याय है......यह मानव के पतन की पराकाष्ठा है! समाज में दासता है, तो क्यों भगवान और भक्ति का ढिंढोरा पीटा जाता है!

अभयबाबू के चोट लगने की खबर अखबारों के द्वारा रानी के पिता के पास भी पहुँच गयी। जब वह आये, तो अभयबाबू की शारीरिक अवस्था प्रायः सुधर चुकी थी। लेकिन उन्होंने अभी मिल में जाना आरंभ नहीं किया था। बिस्तर भी अभी नहीं छोड़ा था।

रानी के पिता ने आकर कहा—इस क्षेत्र में काँटे हैं, आपदायें हैं, मानव की कठोरता और जीवन की विषमता तो पग-पग पर बिछी हुई है। तुम इस रास्ते पर बढ़ते हो, तो बढ़ो। मैं नहीं रोकूँगा।

किंतु भावुकता और आदर्श में मत बहो। वह क्षणिक है। जीवन की वास्तविकता क्या है, पहले उसे समझने का प्रयत्न करो। यही मैंने रानी को बताया है। मैंने जन-कार्य के इस कठिन मार्ग पर पड़ कर जिन कष्टों को उठाया है, उनका कुछ भाग पुत्री के नाते रानी भी उठा चुकी है। यह उस रहस्य का स्वाद जानती है।

उस समय रानी भी वहाँ बैठी थी। वह सिर झुकाये हुये थी। अभयबाबू मौन थे। वह एक विद्यार्थी के सदृश, अपने श्वसुर का एक-एक शब्द गुरुमन्त्र के समान सुन रहे थे।

रानी ने कहा—'पिताजी, आप हमें बताइये कि हमारी दिशा क्या है। हमें क्या करना है।'

इतना सुन कर पिता हँसे नहीं। वह गँभीर बन गये। बोले—'रानी बेटी, दिशा और कर्तव्य खोजे जाते हैं, बताये नहीं जाते। तुम दोनों आज जिस अवस्था में हो, उसमें अपना भला-बुरा भली भाँति देख-सुन सकते हो। जो उचित समझो, करो। यह घर भी तुम्हारा एक सेवा-क्षेत्र है। नारी का यही पहिला कर्तव्य है।' उन्होंने अधिक गंभीर बनकर कहा—'परंतु मैं यह कदापि नहीं कहूँगा कि जीवन यही है...तुम्हारा कर्म यही। यही उपालम्भ। यह तो सभी करते हैं। सभी इसे मानते हैं। किंतु जनता-जनार्दन की पुकार जिन कानों में पड़ती है, जिस हृदय से मानव की वेदना आकर टकराती है, महान सचमुच में वह है...वही मानव। कोटि-कोटि मानवों के दुःखों से बोझिल बन कर जिस वसुंधरा के हम पुत्र बने हैं, तुम समझो कि हम उसके प्रति भी अपना कुछ उत्तरदायित्व लिये हुए हैं। मैं तो स्वीकार करता हूँ कि मानव की दुरव्यवस्था का उत्तरदायित्व सभी पर है, केवल कुछ धनिकों पर ही नहीं। एक-एक व्यक्ति इस पाप से बोझिल है। भूखा मानव

भी क्षमा योग्य नहीं है। वह भी आत्महीन बन गया है। जीवन मे दूर हो गया है...जैसे उच्छिष्ट रूप ही उसने स्वीकार कर लिया है! इतना कहा और रानी के पिता ने उन दोनों की ओर देखा। तदन्तर उन्होंने मुसकरा दिया। दिखता था कि उस समय वह साठ वर्ष के वृद्ध रानी के पिता किसी ऋषि के सदृश बन कर ही उपदेश दे रहे थे और अपने उन दो पुत्र और पुत्री को जीवन का सच्चा संदेश प्रदान करने में समर्थ हो सके थे।

अभयबाबू ने कहा—'मैं मिल की नौकरी छोड़ दूँगा,—मैं जनता के चरणों में अपने जीवन को समर्पित कर दूँगा, पिताजी!'

यह सुन कर रानी के पिता मुसकराये। तदन्तर उन्होंने रानी की ओर देखा और तनिक-सा हँस दिया।

अभयबाबू ने फिर कहा—'मेरा अधिक खर्च नहीं। वैभव की आकाँक्षा नहीं।'

रानी के पिता ने फिर भी कुछ नहीं कहा। उन्होंने नितांत मौन होकर उस बात को भी सुन लिया।

किंतु रानी ने अभयबाबू की ओर देख, दाँतों से हँस कर कहा—'मनुष्य आवेश में बहता है। बहुत कुछ कह बैठता है। वैसे कोई कुछ करे तो क्या रोका जा सकता है। सभी का मार्ग खुला है। सत्-पथ पर आने के लिये किसी निर्देश को पाने का भला कौन आकांक्षी रहा है।' वह बोली—'आपके मन में कुछ आया है, तो कीजिये। मैं विश्वास दिलाती हूँ अगर योग नहीं दे सकी, तो रास्ते का काँटा भी नहीं बनूँगी।'

पिता बोले—'अभय बेटा, तुम्हें यह समझना चाहिये कि रानी जिस मा की पुत्री है, उसने भूखी रह कर भी मेरे रास्ते को अव-

कुछ नहीं किया। उसने कभी भी अपनी आवश्यकता दिखा कर मुझे विवश नहीं किया। मैं आज भी स्वीकार करता हूँ जो कुछ कर सका, उसी की प्रेरणा और सहायता पाकर किया...उसका अमर सहयोग पाकर ! मैं उस नारी का ऋणी हूँ ।'

अभयबाबू ने कहा—'पिताजी, इसका मुझे भी भरोसा है। रानी ने मुझे सदा ही प्रोत्साहन दिया है...एक अलौकिक जीवन ! रानी ने मुझे आभारित किया है ।'

पिता ने कहा—'पहिले अपना लक्ष्य निर्धारित करो। कष्ट सहन और पीड़ाओं से खेलने का अपने को अभ्यासी बनाओ। सिद्धि प्राप्ति के लिये तपस्या की आवश्यकता होती है—कठिन मार्ग की। जब तुम्हारा मन पूरी तरह इसके लिए तैयार हो जाये, तो आगे बढ़ो। सेवा-क्षेत्र में उतरना आसान है, निभाना कठिन। अधिकाँश के समान तुम्हारा भी भ्रष्ट हो जाने का अंदेशा है। जीवन की इच्छाओं का दमन करना आसान नहीं। योग की कल्पना करना और है, निभाना और ।'

अभयबाबू ने कहा—मुझे इसका पता है, पिताजी !

'और तुम्हें यह भी पता है कि समाज में जिस गंदगी और भ्रष्टाचार का बीज बोया जा चुका है, उसका अंकुर तुम्हारे जीवन में भी फूट निकला है,—मानव की इच्छाओं का द्वंद्व तुम्हें भी सताता है।' रानी के पिता ने अपनी बात को दोहराया।

अभयबाबू ने अधीर होकर कहा—'मैंने अनुभव किया है। उन सबको देखा है।

यह सुन कर रानी के पिता मुसकरा दिये। उन्होंने रानी और अभयबाबू को आँखों के द्वारा ही जैसे शुभाशीष प्रदान कर दिया।

छठा अध्याय

अभयबाबू ने मिल की नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। जीविका का एक आधार था, वह छोड़ दिया। अपने त्याग-पत्र में उन्होंने मिल-मालिकों को लिखा कि उन्हें श्रमिक-वर्ग की सेवा करनी है। नौकरी करके यह काम नहीं किया जा सकता। साथियों ने अभयबाबू के इस निर्णय को सुन कर आश्चर्य किया। क्योंकि उन्हें मिल से पाँच सौ रुपया मिलता था। इतनी बड़ी नौकरी को त्याग देना उनकी दृष्टि में एक साहस ही था,—अलौकिक और अभूतपूर्व !

लेकिन अभयबाबू के उस त्याग-पत्र में तथा किये गये साहस में रानी का कितना हाथ था, इसे तो अभयबाबू को छोड़ भला और कौन जान सकता था। उन्होंने जब-जब रानी के सामने इस समस्या को रखा, तो तभी-तब, उसने अपूर्व दृढ़ता और गंभीर बनकर कहा—'मुझसे क्या कहते हो ! मैं जिस पिता की पुत्री हूँ, उन्होंने मुझे अभ्यस्त बना दिया है। मुझे चने चबा कर रहना आता है।—'रानी ने यहाँ तक कहा—'भूख से मेरा बच्चा मर जाये, तो मुझे यह भी देखकर रोना नहीं आयगा......मरने का विचार भी उत्पन्न नहीं होगा अपने पिता के द्वारा मैंने सीखा है, जनता-जनार्दन की सेवा में ही मेरा सुख है.....उसी में जीवन की शांति है। फलस्वरूप, त्याग-पत्र देकर और मिल से संबंध तोड़ कर जब अभयबाबू सेवा-क्षेत्र में उतरे, तो भले ही, उन्हें पहिले के समान सुख-सुविधा प्राप्त नहीं थी, परंतु जितना आत्म-संतोष उन्हें उस अवस्था में मिल सका, सम्भवतः कभी

भी हो गया। यही कारण है कि आज का मानव जल रहा है,—गल रहा है और सड़ रहा है। मानव अशांत है, भूखा है और पीड़ित है। उसने कहा—'आप सोचिये, ऐसा क्यों है? मानव! जानता हूँ कि आप जिस पूंजीवाद के दास बने हुए हैं, उसके प्रति ईर्षित हैं, क्षुभित हैं। निश्चय ही यह अवस्था तो आपको पनपने नहीं देगी। आपको संघटित भी नहीं होने देगी।'—वह कह रहा था—'यह भी सत्य है कि आपके अंतर में जो भूख है, आपकी जो आवश्यकता है, वह आपको उठने का और सोचने का अवसर नहीं देती। लेकिन क्या आपको इतना भी अवसर नहीं मिलता कि जिस मानसिक धरातल पर आपका जीवन टिका हुआ है, उसको कमजोर, शिथिल न बना देना भी आपके हाथ है।' उस समय महेन्द्र लाल हो गया था। उसका सुन्दर गोरा मुँह चमक उठा था। वह कह रहा था—'विश्वास कीजिये, यदि आप तनिक देर के लिए भी अपने स्वार्थों की होली जला दें, अपने को मनुष्य बनाने के लिए तैयार कर लें, तो संसार का यह हिस्सा क्या, समस्त विश्व आपके चरणों में आ गिरेगा। समूचा विश्व चीख-चीख कर कहेगा—तुम प्रभो हो...तुम ही अन्नदाता!' महेन्द्र ने कहा—'मैं जानता हूँ यह पूँजीवाद का ही श्राप है कि जो आपके मानसिक और शारीरिक पतन की इस पराकाष्ठा के साथ ऐसा निंद्य और वीभत्स नाटक विश्व के रँगमंच पर खेला जा रहा है। यह शक्ति का दुरुपयोग आज ही नहीं हजारों वर्षों से चला आ रहा है। मानव ने मानव को ठगा है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि संसार के पर्दे से चाँदी-सोने को उठा दिया जाये। उसे नष्ट कर दिया जाये। प्रश्न है, यह हो कैसे? उसकी आवश्यकता को जिस प्रकार धनिकों ने अनुभव किया, वैसा ही लालच चाँदी-सोने के लिये आपके अंतस में भी पैदा हुआ। उसके लिए

आपने भी अपने को बेच दिया है। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि धनिक आपकी इस कमजोरी को पाकर निहाल हो गया। वह महलों का स्वामी बन गया। कोठार बन्द कर दिया और आपको अभीष्ट वस्तु मिलना तो दूर, रोटियों का भिखारी बना दिया। आप गिड़गिड़ाये, मचले, पर धनिक ने अपने सरमायेदारी के दंभ में आकर आपको फटकार दिया। उसने निःसंकोच कह दिया—'चल, चल, कुत्ता कहीं का—चोर !'

उसी समय, महेन्द्र ने और अधिक तेज होकर कहा—'आप मनुष्य बनिये ! धनवान बनने की कल्पना मत कीजिये। आप मनुष्य का आदर करना सीखिये। अपनी बुरी आदतें छोड़िये, मनुष्य की पीड़ा क्या है। भगवान का रूप हमें किस प्रकार दिखाई दे सकता है, ऐसा भी प्रयत्न कीजिये। आत्म-सम्मान को पाना भी सीखिये। किसी के सामने बरबस मत झुकिये।'

जब महेन्द्र अपना भाषण समाप्त करके बैठा, तो उसने रानी के पास बैठी हुई उस मुस्लिम युवती की ओर लक्ष किया। कुरते की जेब से रूमाल निकाल कर मुँह पोंछ लिया। उसी समय रानी ने कहा—'तुम अच्छा बोले, भैया !'

तनिक हँस कर और उस पार बैठी हुई युवती की ओर देख कर महेन्द्र ने कहा—'बनाती हो, झूँठ !' और उसने उसी समय देखा कि उस युवती ने बरबस ही, उसकी ओर देख कर मुसकराते हुए अपनी आँखों को झुका लिया।

रानी ने उसकी ओर देख कर महेन्द्र से कहा—'इस बहिन से मेरा अभी परिचय हुआ है। इनका नाम जेबुन्निसाँ है। मैंने तुम्हारा भी परिचय दे दिया है। इनका कहना है कि ये कुछ लिखती हैं,—अफसाने; तुम उन्हें देखो, ऐसा इन्होंने मुझ से कहा है।'

महेन्द्र ने कहा—'ज़रूर ! ज़रूर !' वह बोला—'पर जीजी, तुमने तो बढ़ा-चढ़ा कर बताया होगा कि ऐसा है यह महेन्द्र... इतना लायक और विद्वान !' कहते हुए वह हँस दिया।

रानी ने कहा–हाँ, मैंने कह दिया है, यह मेरा भैया महेन्द्र पहले सिरे का आलसी है। तुम कुछ दोगी, तो रख लेगा। महीनों जवाब भी नहीं देगा।' तदन्तर ही उसने फिर कहा–'इसी से मैंने कह दिया है, जो कुछ भी दिखाओ, उसे स्वयं वापिस ले लेना। नहीं तो बाँट देखते ही तुम्हारा समय बीत जायगा।'

उसी समय सभा समाप्त हुई। अभय बाबू ने उन सबके पास आकर कहा—चलो, चलें।

नजीर साथ था। सभा का प्रबंध भी उसी के हाथ में था। उसने महेन्द्र की ओर अपना हाथ बढ़ा कर कहा–'शुक्रिया आपको ! आज लगा मुझे कि हमें अब आगे बढ़ना ही पड़ेगा। हमारे बड़े भाई अभयबाबू तो अकेले थे, आपका साथ पाकर हमें और भी बल मिलेगा।'

सुन कर महेन्द्र हँस दिया। उसने कहा–'नजीर भाई, काम तो आप लोगों को ही करना पड़ेगा। मैं तो वैसे ही मूँग की दाल में टोरा मरीग्वा आ गया। आप कहेंगे तो फिर भी आपकी खिदमत में आ जाऊँगा। हो सका, तो कुछ काम भी करूँगा।

शुक्रिया ! शुक्रिया ! एकाएक नजीर ने उत्साहित होकर कहा।

रानी ने कहा—'नजीर भाई, महेन्द्र तो तुम्हारे हैं, जैसे मेरे वैसे ही तुम्हारे भाई !'

नजीर ने कहा–'भाभी जी, मुझे भरोसा है।'

सब चल दिये। सभास्थल से कुछ दूर साथ चल कर जेबुन्निसाँ ने चौराहे के मोड़ पर आते ही, रानी की ओर देखकर

कहा—खुदा का शुक्र है कि आज आपसे भेंट हुई। मैं कल आपके यहाँ आऊँगी——जरूर!

रानी ने स्नेहात्मक स्वर में कहा—जरूर! जरूर!

उसी समय जेबुन्निसाँ ने महेन्द्र की ओर देखा। उसने तनिक होठों पर मुसकराकर कहा—मैं अपनी भाभी को तो तकलीफ दूँगी ही, पर आपको भी। मैंने कुछ लिखा है, उसे साथ लाऊँगी। कहे देती हूँ, हँसियेगा नहीं। जो सूझा, वह लिख लिया। वह ठीक से तो नहीं बन पड़ा, पर आपसे कुछ पा सकी, तो जरूर आगे भी लिखूँगी। अच्छा, सलाम!

जेबुन्निसाँ चली गयी।

घर जाकर रानी ने जरा हँसते हुए, जैसे देर से रुकी हुई अपनी बात को न रोक कर ही, बरबस अभयबाबू की ओर देख कर कहा—'सुनते हो, यह भैया, अब अपना परिचय बढ़ा चला है। अब तक कुछ आदमियों से ही परिचय था। अब युवतियों से भी हो चला है। एक मुस्लिम परिवार तक जा पहुँचा है।'

अभयबाबू ने भी उसी भाव में हँस कर कहा—तो बुरा क्या, अच्छा है!

रानी ने कहा—'जी, अच्छा है! आपको भी पसन्द आता है!

अभय बाबू ने कहा—'कुछ मन में हो, तो बताओ; उस लड़की को कल यहाँ आने से रोक दूँगा। कह दूँगा, महेन्द्र बाबू की बहन को यह अरुचिकर लगा है।'

महेन्द्र अब तक चुप था। वह उन दोनों के हास्य-मिश्रित वार्तालाप में अपना मन भी लगता देख रहा था।

रानी ने उसकी ओर देख कर कहा—क्यों भैया, अब तो तू कल से मास्टरी भी करेगा। एक मुस्लिम युवती को पढ़ायेगा!

महेन्द्र ने उत्तर नहीं दिया। वह गंभीर बन गया।

रानी ने कहा—'ज़ेबुन्निसाँ भी अच्छी लड़की है, भावुक और गंभीर दीखती है। ऐसी लड़की मुझे आज बहुत दिनों में दिखाई दी है।

महेन्द्र ने कहा—'उससे कह देना, मेरे पास समय नहीं, मैं उसकी कोई सहायता नहीं कर सकूँगा।

'हुँ' आ गये न, गुस्से में ! तो मेरा हँसना भी तुम्हें लग गया ! चकित बनकर रानो ने कहा।

अभयबाबू ने कहा—तुमने कुछ अधिक कह दिया। इतना नहीं कहना चाहिये था !

किंतु रानो ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा—'क्यों न कहना चाहिये था ! मैं बहिन हूँ। मुझे ही तो यह सब कहना था, अपने भैया से ज़रूर कहना चाहिये था।

अभयबाबू ने कहा—अच्छा, अच्छा, देखो तो जग्गू क्या कर रहा है। चाय बना रहा है, या नहीं। सुन कर रानो ने वह कमरा छोड़ दिया।

उसके पीछे ही अभय बाबू ने कहा—'जीवन भी अजीब पहेली है, महेन्द्र बाबू ! कभी मधुर, कभी कठोर।'

यह सुन कर बरबस ही महेन्द्र मुसकरा दिया।

अभयबाबू ने फिर कहा—तुमने आज भाषण अच्छा दिया, प्रभावशाली बन गया।

महेन्द्र ने कहा—लेकिन फ़ायदा क्या ! वह बोला—मजदूरों को भाषण नहीं, जीवन चाहिये—पेट के लिए रोटी चाहिये।

यह सुन कर अभयबाबू का मन, बरबस ही, फिर मजदूरों के जीवन की गहरी और काली-काली छायी हुई घटा के अंतराल में चला गया। वह मन उसी में डूब गया।

पाँचवा अध्याय

जीवन में किस समय, कौन व्यक्ति कैसा मिले, यह भी एक पहेली है। उस दिन पहिले-पहल मजदूरों की सभा में जाकर रानी का एक मुस्लिम युवा लड़की से परिचय हुआ। युवती शिक्षित, सुन्दर और भावनामयी थी। वैसे देखने से ही वह ऊंचे परिवार की लगती थी। मुस्लिम नारी के सदृश परदा प्रथा पर भी उसकी आस्था नहीं थी। वह युवती कुमारी थी। उन्ही दिनों रानी के चाचा का पुत्र महेन्द्रकुमार वहाँ आया हुआ था। वह एक पत्र-कार्यालय के सम्पादन-विभाग में काम करने लगा था। महेन्द्र प्रतिभावान था। यद्यपि रानी का अपना सगा भाई कोई नहीं था, परन्तु महेन्द्र भैया को पाकर उसका अभाव पूरा हो गया था। निदान, जब महेन्द्र उस नगर में आया, तो इच्छा न करके भी, उससे रानी का अनुरोध नहीं टाला जा सका। वह उसी घर में रहने लगा। अभयबाबू को एक साथी मिल गया—अपना सरीखा भावुक और विचारवान। रानी को अपना भैया।

सभा में, जब अभयबाबू के कहने से महेन्द्र को भी भाषण देना पड़ा, तो वह उस कला में अधिक निपुण न होकर भी जिस प्रकार बोला, उससे श्रोताओं में जैसे नव-स्फूर्ति और नये जोश का संचार होता दिखाई दिया। महेन्द्र कह रहा था—'भले ही मानव के आदि-जन्म के साथ पूंजीवाद का इस रूप में विकास न हुआ था, परन्तु धीरे-धीरे बढ़ती हुई मानव की भूख ने स्वेच्छा और स्वार्थपरता का रूप स्वीकार किया, तो न केवल मानव ने मानव को भाई समझना छोड़ दिया, अपितु, वह उसका दुश्मन

पहिले मिलना तो दूर, उसकी कल्पना करना भी, उनके मन में नहीं आया था। जिस व्यक्ति को अपने पौरुष पर भी कभी गर्व नहीं हुआ, वही व्यक्ति अब अपने जीवन को क्षुद्र तिनके की अपेक्षा एक कीमती वस्तु मानने लगा। भले ही जीवन की अमरता का उन्हें पहिले ज्ञान न हुआ हो, लेकिन वह अमरत्व और शुभाशीष उनके अन्तस में ही परिव्याप्त था, यह उन्हें अब दिखायी दिया। कल्पनाओं का जीवन मिट गया, उसमें वास्तविकता ने स्थान ले लिया।

उसी समय, उनके बीच में आ गया महेन्द्र। रानी और अभयबाबू को महेन्द्र का आना भी एक आकस्मिक सुख का अनुभव हुआ। यही कारण था कि उन दोनों ने उसे अपने पास से नहीं जाने दिया। यद्यपि महेन्द्र उस नगर में जनता की सेवा करने नहीं आया, लेकिन अभयबाबू को नित्य ही, किसी-न-किसी सभा का आयोजन करते देख, तथा अन्य प्रचार सम्बन्धी कार्यों में लगा पाकर, वह एक युवक की स्वाभाविक इच्छाओं को न रोक सका, न मार सका। अपितु वह स्वयं भी कुछ करने की प्रेरणा पाने लगा। इसी से, जब जब उससे मजदूरों के आंदोलन में योग देने के लिए कहा जाता, तो वह एकाएक इंकार न कर पाता, वह योग देने लगता।

लेकिन अभयबाबू के सामने भी यह प्रश्न था कि केवल भाषणों से ही मजदूरों का भला नहीं हो सकता। उसके लिये किसी ठोस कार्य-क्रम की आवश्यकता थी और जीविका के धन्धे की, तभी उनका जीवन बदल सकता था। परन्तु इन बातों के लिये चाहिए था पैसा। वह पैसेवालों के पास से ही आ सकता था। जिन पैसेवालों के विरोध में उन्होंने आँदोलन खड़ा किया, उन्हीं से पैसा माँगा जाय, यह न तो उचित ही था, और

न संगत ही। इसलिए इस विषय में रानी, अभयबाबू और उनके साथियों में जो विभिन्न मत थे, उनका सामंजस्य नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी था कि मजदूरों में जिस आत्म-चेतना की आवश्यकता थी उसके लिये उन्हें शिक्षित होना चाहिए। मनुष्य के आचार-विचारों को परिष्कार देने के लिये केवल शाब्दिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं, उसका नैतिक, सामाजिक और मानसिक धरातल भी बदलना चाहिए। और यह तभी सम्भव था कि जब वह वातावरण बदला जाय। मजदूरों को व्यवहारिक शिक्षा और मानव के आदर्शों का ज्ञान कराया जाय।

कार्य आरंभ हो गया। कुछ पाठशालाओं का निर्माण किया गया। रानी को उन पाठशालाओं का संयोजक बनाया गया। उन पाठशालाओं में केवल मजदूर ही न पढ़ते, बल्कि दुकानों, कचहरियों और दफतरों में काम करने वाले व्यक्ति भी आते। जिन व्यक्तियों को जरा भी शाब्दिक ज्ञान नहीं था, उन्हें आरम्भिक पुस्तकें पढ़ाई गयीं। जिन्हें कुछ पढ़ना आता था, उन व्यक्तियों का कथा के रूप में आदर्श व्यक्तियों के जीवन-चरित्र सुनाने का कार्यक्रम था। पढ़ाने वालों में कुछ पुरुष थे, कुछ नारियाँ थीं। उन्हीं में एक जेबुन्निसाँ थी। वह स्वयं ही इस कार्य के लिए अपने को समर्पित कर चुकी थी।

लेकिन इस पाठ्यक्रम के साथ, यह भी कार्यक्रम था कि जिसमें पुरुषों और नारियों को दैनिक रहन-सहन का भी ज्ञान कराया जाय। यह काम भी विशेषतः अध्यापिकाओं के ऊपर पड़ा। जो व्यक्ति पढ़ने आते, उनसे चार आने मासिक लिया जाता।

उस दिन रविवार का दिन था। अभयबाबू ने प्रातः ही रानी और महेन्द्र को सुनाया कि नजीर ने भी मिल से काम छोड़ दिया।

अभयबाबू को इस बात का पता था कि नजीर मुहम्मद का मुसलमानों के एक पुराने और प्रतिष्ठित घराने से संबंध था। भले ही वह मुसलमान था, परन्तु वह अपने को किसी विशेष जाति से संबंधित न कर केवल मनुष्य मानता और इसी एक विचारधारा पर आश्रित बना हुआ, मनुष्य के कल्याण की बात सोचता था। मिल में से वह जितना वेतन पाता, वह सभी उसके घर में खर्च होता। उसी के ऊपर घर का भार था। यही कारण था कि अभयबाबू ने नजीर को काम छोड़ने से रोका। क्योंकि पैसे के बिना वह किस प्रकार की कठिनाई में पड़ सकता था, इसका उन्हें पता था।

लेकिन इतना सोचकर भी, नजीर ने काम छोड़ दिया। रानी ने जब यह सुना, तो उसने कोई अचरज नहीं दिखाया। मानो उसे इस बात का पता था। तभी अभयबाबू ने कहा -'हमारी गोष्ठी में एक नजीर मुहम्मद ही ऐसा था कि जो अभी तक मिल में जा रहा था। अवश्य ही, वह अपने मन में लजाता होगा। एक दिन जब उसने कहा, तो मैंने रोका था।'

रानी ने कहा—जिस बात को आत्मा न स्वीकार करे, उसे न करना ही अच्छा था। नजीर ने ठीक ही किया। उन्हें यही करना था।

अभयबाबू ने कुछ चिंता का भाव लेकर कहा—रानी, आदर्श और भावना की पूजा और है, वास्तविकता और। मिल की नौकरी छोड़कर शीघ्र ही हमें भी पेट की चिंता का शिकार होना पड़ा। आखिर रोटियाँ तो चाहिए ही, बताओ कैसे क्या कुछ होगा।'

अपने पति को पेट की उस चिंता में डूबता हुआ पाकर, एकाएक

रानी का माथा ठनक गया। उसने जिस बात को कल्पना कभी नहीं की उसी को सामने देख कर, एकाएक उससे कुछ नहीं कहा गया। क्योंकि यह उसने भी अनुभव किया कि जिस आदर्श के पीछे उसके पति ने काम छोड़ दिया, तो पैसा आना तो रुक गया, लेकिन घर का खर्च बदस्तूर चल रहा था। वह नहीं रुका। नौकर भी, अन्य खर्च भी।

उसी समय अभयबाबू ने फिर कहा—'मेरे मन में यह बार-बार आता है कि कुछ काम तो करना ही चाहिये। आखिर, जब जीवन है, तो पैसा चाहिये।

रानी फिर भी चुप थी। गंभीर थी। किंतु अपनी बात कहने के साथ, अभयबाबू के मन में बरबस ही, यह बात उठ आई कि मजदूर-आंदोलन के लिये उन्होंने जो मध्यम-वर्ग से पैसा एकत्र किया, वह अब दस हज़ार के लगभग हो चुका। करीब दो सौ रुपया पाठशालाओं की फीस से आने लगा। अपनी स्थिति की आशंका से जब उनका मन चिंतित हुआ, तो उन्हें भय लगा कि जब उनके घर में कुछ नहीं रहेगा, तो ज़रूर उस पैसे में से लेने के लिये उन्हें विवश होना पड़ेगा। इस विवशता और आशंका को लक्ष्य करके ही, उनकी आत्मा में रोमांच उठ आया। लगा कि जैसे अपनी दृष्टि में ही उनका पतन होने लगा। उनका मन काँप-काँप गया।

उसी समय रानी ने साहस और बल के साथ संयत भाव में कहा—'चिंता क्या, जो होना होगा वह हो जायगा! जो मनुष्य सेवाक्षेत्र में उतरता है, उसे इस प्रश्न को छोड़ देना पड़ेगा।

अभय बाबू ने अपने होठों पर जीभ फेर कर कहा—यह चिंता नहीं, विचारने का विषय अवश्य है, रानी! हम दोनों अकेले नहीं, लड़का है,—विनोद!

रानी ने कहा—तुम भाग्यवादी नहीं हो, मुझे उस पर भरोसा है। भाग्य भी काम करता है।

अभयबाबू ने फिर भी जैसे लड़के कड़वे भाव में मुसकरा दिया। उन्होंने मुँह से तो कुछ नहीं कहा, परंतु भाग्य की निष्क्रियता का पहले की तरह उन्हें अब भी पता था।

रानी ने कहा—'जब यह काम आरम्भ किया है, तो इसे जगा दो। हम सदा न ही इसमें लगे रहें, यह किसी ज्योतिषी ने जन्म-पत्री में लिख दिया है।

अभय बाबू ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—जब आदमी आगे बढ़ता है, तो पीछे हटना कठिन है। उसे फिर आगे की ओर ही देखना पड़ता है।

यह सुनकर रानी ने सुरमे दाँतों से हँस दिया। तदन्तर ही उसने कहा—तो इच्छा क्या है। अगर उत्साह न हो, तो काम कर लो। इस सेवा को छोड़ दो। कल ही मिल-मैनेजर के पास जाओ और कहो, मैंने काम छोड़ कर गलती की मुझे फिर आपको यहाँ ही काम करना है।

इस उपहास और व्यंग को सुन कर अभय बाबू का मन विदीर्ण हो गया। उन्हें यह सुनना अच्छा नहीं लगा। कदाचित इसी से घूर कर रानी की ओर देखा और झटका खाकर मुँह फेर लिया।

किंतु रानी ने जैसे अपने तरकश में से दूसरा तीर भी निकाल लिया था। वह कमान पर भी चढ़ गया था। जब फिर अभयबाबू ने उसकी ओर देखा, तो उसने छूटते ही कहा—'सोचा होगा कि जीवन का यह नया खेल अधिक प्यारा है...अधिक सरल। उसने कहा''विश्वास कीजिये, यह तुम जैसों की शक्ति की बात नहीं, इस क्षेत्र में तो कांटे हैं...कठोर शूल, लोहे के चने को चबा कर ही यह काम किया जा सकता है। आप से नहीं।

एकाएक अभयबाबू ने कहा—'रानी'—

आहत स्वर में रानी ने कहा—हाँ, मैं ठीक कहती हूँ। अभी तो चार मास भी नहीं हुए कि तुम में ऐसे विचारों ने घर किया है। मेरे पिता जी को देखिये उन्होंने जीवन ही इस कार्य में लगा दिया। उन्होंने घर वालों की सब इच्छाओं का दमन करके ही ऐसा किया। तुम्हें अपनी पत्नी सजी हुई चाहिये, स्वयं भी शरीर पर सूट चाहिये, बच्चों को अमीरों जैसे चोंचले, तो मैं फिर कहती हूँ इस मार्ग को छोड़ दीजिये। फिर किसी मिल की नौकरी कीजिये और वहां के मैनेजर और मालिकों की चापलूसी करने लगिये। मजदूरों के भाग्य-विधाता आप जैसे बनें, तो निश्चय ही उन्हें इस नर्क से बड़ा नर्क देखने को कहाँ मिलेगा। उन्हें साहसी और बलवान पथ-प्रदर्शक चाहिये, आप सरीखा निर्बल नहीं।

अभय बाबू ने अपने सूखे फैनिल सरीखे दाँत निकाल कर कहा—तुम क्रोध में हो, भ्रम में हो। विश्वास करो, मैं मजदूरों के साथ धोखा नहीं करूँगा।

रानी ने फिर तड़ित होकर कहा—'धोखा करने के लिए भी साहस चाहिये। वह बोली—उन बेचारे मजदूरों का क्या है; उनके लिए तो ऊपर आसमान है और नीचे धरती—शायद ईश्वर भी उनकी ओर से आँख फेर कर बैठ गया है। वे दुर्बल हैं, निस्तेज हैं, इसलिए यह हरा भरा विश्व भला उनकी ओर देख भी कैसे सकता है। उन्हें बे-मौत मरना है—मानव के पैरों में कुचलने के लिये ही तो है उनका जीवन। एकाएक अवरुद्ध हो धीमे स्वर में रानी ने कहा—लेकिन यह भरोसा रखो; मानव में जो क्रांति होती है; उसका उद्गम क्षेत्र भी इन मजदूरों के अंतस

में ही किया है। जिस दिन आँधी उठेगी; प्रतिक्रिया की अग्नि अपने लाल-लाल अँगारे उगलने के लिए बाध्य होगी; तो भले ही उससे कुछ मजदूर मर जायँ; लेकिन इन धनिकों और ऊँची बुर्जी वालों का नाश होना भी अवश्यम्भावी है...निश्चित है। बस, अलाव में पतंगा डालने की देर है, आग की सामग्री प्रस्तुत है। उसने साँस भर कर अभय बाबू की ओर देखा और कहा—हाँ, वही क्राँति है; वही परिवर्तन। यह स्वाभाविक है। विपत्ति की अनुपम देन। भला इसे कोई रोक सकता है; किसने रोका है; आज तक। जो राज्यों के मालिक थे; वे भिखारी बने; भिखारी राजा; भला प्रकृति के उस विराट परिवर्तन को किसने मिटाया है। ऐसा तो स्वतः होना है। मानव की आत्मा में जब रोदन पैदा होता है; पीड़ा से उसका जीवन घिर जाता है; तो तब वह मानव नहीं होता, उसकी आत्मा में प्रतिष्ठापित हुआ स्वयं सिद्ध ईश्वर रोता है। और उस रोने का ही नाम है; क्रांति—मानव की भस्म लीला।

अभयबाबू ने अपने माथे में बल डाल कर कहा—तो इस क्राँति का अर्थ क्या हुआ! नीचे के व्यक्ति ऊपर जा बैठेंगे। वह भी आज के धनिकों की तरह स्वार्थ और स्वेच्छा दिखायेंगे। रानी ने कहा—जरूर! लेकिन कुछ देर के लिए साँस तो मिलेगी। मानव को मानव की महत्ता भी ज्ञात होगी। इतिहासों की पुनरावृत्ति की जायगी।

उसके बाद? अभयबाबू ने मुसकरा कर पूछा।

उसके बाद! रानी ने कहा फिर वही युद्ध। वही संघर्ष।

वह बोली—आप यह क्यों सोचते हैं कि मानव शांत रहे.. स्थिर रहे। न, मैं कहती हूँ; यह चलता रहे...बहता रहे...युद्ध

करता रहे । नहीं तो; मानव मानव नहीं रहेगा । पशु से भी बदतर बन जायगा अकर्मण्य और बुजदिल हो जायगा।

चकित बन कर अभय बाबू ने कहा—तुमने यह सब कहां से पढ़ा—रानी !

रानी ने अपनी आँखों में गर्व का आवेग लाकर कहा—मेरे जीवन की पाठशाला तो पिताजी रहे हैं...वही मेरे शिक्षक हैं।

तुम धन्य हो, रानी । काश; मुझे भी ऐसे ही पिता मिलते ।

रानी ने विदूत के साथ कहा—क्या अब नहीं है, वे तुम्हारे पिता ।

अभयबाबू ने कहा—हैं क्यों नहीं ! हैं ।

उसी समय द्वार पर नजीर आकर खड़ा हुआ । देखते ही रानी ने कहा—'आओ' नजीर भाई तुम भी नौकरी छोड़ आये, बधाई ।

नजीर ने उत्तर तो नहीं दिया, उसने अभयबाबू की ओर अपनी आँखों को कर दिया। मानो उन्हीं के ऊपर उस बात का जवाब भी डाल दिया ।

सातवाँ अध्याय

नजीर मुहम्मद से रानी कहा—आज तुम यहीं खाना खाओगे न, नजीर भाई।

हँस कर नजीर ने पूछा—आज कोई खास बात है, क्या ?

रानी ने बताया—आज विनोद की सालगिरह है।

अच्छा, अच्छा, तो जरूर। महेन्द्र बाबू नहीं हैं ? दफ्तर गये हैं ?

रानी ने कहा—हाँ वह दफतर गये हैं। इस घर में वही तो एक कामकाजी और कमाऊ रह गये हैं।

अभय बाबू ने कहा—महेन्द्र किसी दिन भी नौकरी छोड़ देंगे।

रानी ने कहा—मैं ऐसा नहीं करने दूँगी। उसे रोकूँगी।

यह सुन कर अभय बाबू और नजीर मुहम्मद चुप रह गये। रानी ने कहा—नौकरी छोड़ने के लिये तो मैं नजीर मुहम्मद को भी रोकती ; पहले जानती, तो जरूर ऐसा न करने के लिए कहती। वह कहने लगी—मनुष्य जिस त्याग और तपस्या की अच्छी और मधुर कल्पना करता है, उस प्रकार उसे निभा नहीं पाता। पैसा, पैसा है—मनुष्य की आवश्यकताओं का केंद्र है। निश्चय ही, पैसा न होने पर आदमी भूखा भी मर सकता है। प्रतिष्ठा तो वह पाये ही कैसे, वह समाज का एक हीन और तुच्छ व्यक्ति समझा जाता है।

नजीर ने कहा—हमने आवश्यकता से अधिक पैसे को इज्जत का बाना पहना दिया है। पैसा तो इंसान ने बनाया, लेकिन आज इंसान पैसे का गुलाम बन गया है। आज जितने झगड़े हैं; उनका यही कारण बना है।

रानी उस समय गंभीर थी। अभय बाबू की ओर उसकी दृष्टि लग रही थी। उसी समय उसने उन्हीं की ओर देखते हुए कहा आदमी का यही पाप हुआ है, नजीर भाई! यह पैदा किया गया है...यही स्वार्थ है। पैसा कमाने के लिए वैसा ही वातावरण बनाया गया है।

हां; यह सत्य है। पूँजीवाद ने संपूर्ण दुनिया को अपने पैरों में झुकाने के लिए ऐसा किया है।

नजीर ने अपनी बात लेकर कहा—'लेकिन मैं सोचता हूँ, अगर आदमी के सामने उसका उसूल पाक है,—इंसान की भलाई का फ़र्ज रहता है—तो पैसे का अभाव उसके मार्ग को नहीं रोक सकता। वह आगे बढ़ता है...पैसा उसके चरणों में आता है।

यह सुनकर अभयबाबू क्षणिक हँसा। उन्होंने रानी की ओर देखा। रानी मुसकरा रही थी, उसकी आँखें भी हँस रही थीं। लेकिन फिर भी उन्होंने अपनी बात लेकर कहा—'नजीर भाई, योगी और महात्मा बनने के लिए भी आदमी को एक बड़ी कुर्बानी में से पार होना पड़ता है। कह लें, एक जीवन क्या, उसके लिए कई कई जिन्दगियों को खपा देना पड़ता है। उन्होंने कहा—'अभी तुम्हारे आने से पहिले हम दोनों में यही प्रसंग छिड़ा था। उस समय तो मैंने रानी से नहीं कहा, पर अब कह रहा हूँ कि हमने जो मार्ग चुना है, वह देखते में जितना सरल है, व्यवहार में उतना नहीं। मेरा प्रश्न तो क्या, लेकिन तुमने अवश्य ही, काम छोड़कर

अच्छा नहीं किया। तुमने जल्दबाजी से काम लिया। जरूर, तुम्हारी बूढ़ी अम्मा को दुःख हुआ होगा।

उस समय नजीर खामोश था। गंभीर भी था।

रानी ने कहा—'अब जो कुछ हुआ, अच्छा हुआ। आगे की सुध लो कि क्या किया जाय। कोई ऐसा सिलसिला बनाओ कि मजदूरों में काम करने के साथ, कुछ कमाई का भी सिलसिला बने। जो भूखा है, वह सेवाकार्य नहीं कर सकता। वह ईमानदार भी नहीं रहता। जनता का भी विश्वास खो बैठता है।'

नजीर ने कहा—इस बारे में मुझे भी कुछ कहना है। बात छिड़ी है; तो जरूर कुछ सोच लेना होगा।'

अभयबाबू ने कहा—'मेरे सामने एक श्रमजीवी कोआपरेटिव बैंक खोलने की स्कीम है। इसके लिए कुछ धनिकों का भी सहयोग मिल सकता है। हमें जितने कार्यकर्ता और सहयोगी चाहिये; उनसे यह काम भी सध सकेगा;—यह बैंक देश भर में फैल जायगा। उसका मुनाफा मजदूरों के सामाजिक और आर्थिक संघटन पर खर्च किया जायगा।'

'उसका शुल्क क्या होगा ?' रानी ने पूछा।

अभयबाबू ने बताया—'कम से कम पचास रूपये।' 'उन्होंने कहा—'इससे कम किसी से नहीं लिया जायगा। जो अधिक देगा उसका शेयर बढ़ जायगा। उससे कारखाने भी खुल सकेंगे और एक दिन ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि उस पैसे का मूलधन इतना बढ़ जाये कि उससे काम बढ़ा कर बाजार में भी अपना पैर बैठ सकेगा। उस संघटन में कोई मजदूर नहीं, कोई मालिक नहीं; सबको अनुपाततः मुनाफा मिलता रहेगा। जो नौकर होंगे; उनको वेतन के अतिरिक्त लाभ का पैसा भी मिलता रहेगा।'

नजीर ने कहा—'यह स्कीम अच्छी है।'

रानी ने कहा—व्यवहारिक भी है। लेकिन बैंक का काम एका-एक चल सके; इसके लिए रुपया मिलना कठिन होगा। उसने कहा—और जो अधिक रुपया देंगे, उनका आधिपत्य भी बढ़ेगा। ऐसे ही फिर शक्ति का बोलबाला हो चलेगा। और यदि अधिक रुपया नहीं लोगे—एक-दो शेयर से अधिक नहीं मिले; तो रुपया कैसे आ जायगा? मजदूर-वर्ग तो एक शेयर का पचास भी नहीं दे सकेगा।

अभयबाबू ने कहा—'रुपया मिलेगा। देर लगेगी, किंतु हम ईमानदार हुए तो काम चल सकेगा।'

नजीर ने कहा—यकीन रखिये; नजीर आपके साथ है।

अभय बाबू ने कहा—मैं जानता हूँ नजीर भाई। उन्होंने कहा—लेकिन सवाल यह है कि हम काम करने के साथ अगर अपने बच्चों की रोटियों के लिये परेशान हुए तो यह सेवा कार्य अलग पड़ा रहेगा। हम-तुम इतने योगी नहीं; कि जो घर-फूँक कर तमाशा देखना ही हमें मान्य होगा।

नजीर चुप था। वह रानी और अभयबाबू की ओर देख रहा था।

अभय बाबू ने फिरकहा—किंतु जब इस काम का बीड़ा उठाया है तो इसे आगे बढ़ाना हमारा कर्तव्य है; जीवन का एक कार्य है। इसके लिए हम आरंभ से ही ऐसा कदम उठायें कि जिससे अभी रुकना न पड़े। आज दफतर के लिये मकान ले लिया है। वहाँ दस से पाँच तक तुम बैठो। तुम मिल से दो सौ रुपया पाते थे। लेकिन यहाँ से तुम पचास रुपया लेकर काम करो। उससे घर का खर्च चलेगा। दो मास में ही कोआपरेटिव बैंक का काम आरंभ

हो जायगा। अब तुम सौ रुपया ले सकोगे। इतना ही मिलता रहेगा। लाभ भी मिलेगा।

और तुम? रानी ने पूछा—'तुम क्या लोगे?

अभय बाबू ने बताया कि अभी वेतन नहीं लेंगे। लगभग चार मास तक निःशुल्क काम करेंगे। बाद में देखा जायगा।

नजीर ने कहा—कुछ लेना चाहिये। घर से कब तक खाया जायगा।

जानता हूँ भाई! मैंने जिस दिन नौकरी छोड़ी थी; तो तभी इस बात को अनुभव किया था। किंतु मेरी परिस्थिति और है। यदि अभी से लेने लगा; तो सुनकर भी लोगों अच्छा नहीं लगेगा। तुम लोगों को कोई कुछ नहीं कहेगा। क्योंकि उत्तरदायित्व तो मेरे ऊपर होगा।

अभय बाबू ने फिर कहा—मेरा मत है; जो भी काम करे; वह निःशुल्क न करे। कुछ अवश्य ले। हमारा इतना तो सौभाग्य होगा नहीं कि कोई धनिक या संपन्न हमारे बीच में आयेगा। भूखा ही आयेगा। इस भूखे की रोटी देना हमारा कर्तव्य होगा। जो भी आये; भाई बन कर आयेगा—किसी विशेष जाति या धर्म का माननेवाला नहीं। संघ में सब का समान अधिकार होगा। मैंने इसकी एक रूप रेखा तैयार कर ली है। प्रेस में दे दी है। दो-तीन दिन में वह छप जायगी। फिर शेयर बेचने के लिये उसे लोगों को दिया जायगा। उन्होंने कहा-'मैंने कुछ समर्थ व्यक्तियों के सामने भी इसकी चर्चा की है। उन्होंने भी इसे पसंद किया है। जिन्हें मजदूरों से हमदर्दी है, अवश्य ही हमें सहयोग मिलेगा। धन भी जरूर मिलेगा, नजीर भाई!'

नजीर ने कहा–जरूर ! सो शेयर बेचना तो मेरा काम होगा ।'

अभयबाबू ने कहा—'इतने ही मैं बेच लूँगा ।'

रानी ने कहा—'लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि शेयर मजदूर खरीदें और उनके पास इतना पैसा नहीं होगा ।'

अभयबाबू ने कहा—'मजदूरों की इच्छा पाकर, मिल-अधिकारियों से यह सहयोग माँगा जायगा कि वह उन मजदूरों को इतना रुपया पेशगी दे दें और प्रति मास वेतन में से दो रुपये मासिक के हिसाब से काटते रहें। जो मजदूर चला जायगा, मर जायगा; तो उसका शेष रुपया संघ के फंड में से मिल वालों को दे दिया जायेगा। अथवा कारीगर अथवा बाहर के अन्य व्यक्ति संघ के लाभ का रुपया न लेना चाहें; तो वह रुपया सवन्यवाद लाभ के कोष में जमा किया जायेगा और अन्य कामों में लगा दिया जायगा ।'

उसी समय जग्गू रानी के पास आकर खड़ा हुआ ।

रानी उठी और उसके साथ रसोई घर की ओर चल दी। पीछे से नजीर ने कहा—'आप की स्कीम ठीक है यह हमें और अधिक पास-पास बैठा सकती है ।'

अभयबाबू ने जोर देकर कहा-'निश्चय ! -'उन्होंने कहा-'भाई आज के इस आर्थिक-संकट-काल में सभी परेशान हैं। पैसे वाले भी चिंतित हैं। इसी से वह पागल कुत्ते की तरह बन गये हैं। वह आदमी को आदमी समझना भूल गये हैं। लेकिन जब इस व्यक्ति के बीच आर्थिक व्यवस्था और एकता काम करती है, तो यह अपने मजहब और जाति ही क्या, सारे विचारों को भूल कर एक बन जाता है। यही-रूल है कि जहाँ आदमी, आदमी को भाई समझता है ।'

नजीर ने कहा—'यह नहीं है।'

अभयबाबू ने कहा-आदर्श तो बहुत है। पहिले के समान आज भी नये-नये पैदा किये जा रहे हैं। किन्तु जिस आदर्श और सेवा के साथ व्यावहारिकता नहीं, उसका पनपना कठिन है। जितने भी मजदूर-आँदोलन पैदा हुए और असमय ही मर गये, उसका यही कारण है। भूखा आदर्श और भूखा व्यक्ति ठोस नहीं बनता,-कर्मण्य भी नहीं।'

नजीर ने कहा—'यही मेरे मन में था।'

और देखते ही आज का मजदूर क्यों मिल अधिकारियों की जी-हजूरी करता है और न मानने लायक शर्तों को स्वीकार करता है! इसीलिए न कि वह भूखा है, दीन है, वह मजदूर है। वह चरित्रहीन है और पैसे से दीन! वह आत्महीन और पतित बन गया है; नजीर बाबू।'

नजीर मौन था। उसके मन में आ रहा था कि जो कुछ उसे कहना था; वही वह अभयबाबू से सुन रहा था। इसलिए उनकी बातों में दत्तचित्त होकर डूब गया।

अभयबाबू ने कहा—'सुनाओ; नौकरी छोड़ने की बात सुनकर बड़े मियाँ ने कुछ कहा तो नहीं। कहा तो होगा; यह बुरा है। मेरे लिये भी कुछ कहा होगा।'

नजीर ने कहा—'आप को वह कुछ नहीं कह सकते। इज्जत करते हैं। हाँ; मुझे अवश्य कहा कि जमाना बुरा है। हवा में बह जाना अपनी जिन्दगी को खपाना है।

'वे बुजुर्ग हैं। ठीक ही कहते हैं, भाई! सचमुच पैसे के विना हमारा जीवन ही खत्म होता है। पैसे ने हमें गुलाम बना रखा है।'

रानी लौट कर आई और बोली—'आज जेबुन्निसा को भी आना था, मैंने उससे कह दिया था।'

नजीर ने कहा-'वह आयेगी। आते वक्त मैं उनके यहाँ रुका था। जेबुन्निसा ने मुझसे कहा था।'

रानी की ओर देखकर अभयबाबू बोले-'तो यों कहा तुम्हारे विनोद की साल गिरह का कार्य क्रम पहिले से व्यवस्थित था......अच्छा!'

रानी ने कहा-दो-चार आदमी खायेंगे।'

नजीर ने कहा-लेकिन हम महेन्द्र बाबू के आने पर खायेंगे।'

हाँ; हाँ वह भी एक घंटे में आ जायगा। मैंने उससे कह दिया था।' रानी ने फिर रसोई में लौटते हुए कहा।

उसी समय जेबुन्निसा ने उस घर में आकर प्रवेश किया।

× × × ×

भोजन करने के बाद अभयबाबू और नजीर मुहम्मद बाहर चले गये। जेबुन्निसा ने रानी के पास बैठकर आलोड़ के स्वर में कहा-'भाभी; तुम मुझे अपने पास रख लो। सच यहाँ जी लगता है। तुम्हारे पास रहकर तो कोई भी सुखी रह सकता है।'

उस समय महेन्द्र भी वहीं था। वह एक अखबार पढ़ने में लगा हुआ था। तब जेबुन्निसा को बात सुनकर रानी ने महेन्द्र की ओर देखा। फिर जेबुन्निसा की ओर। उसने देखा कि उस का मुँह महेन्द्र की ओर था। बात सुन कर रानी मुसकरायी। किंचित होठों से हंसी। फिर तदन्तर ही; वह अचानक गम्भीर बन गयी। वह एकाएक बोल भी नहीं सकी।

जेबुन्निसा ने फिर कहा—'समाज और धर्म हमें यह तो नहीं सिखाता कि एक जगह रह कर भी दूर दूर रहें''हम गैर बने रहें!'

इतना सुनकर रानी ने सांस भरी और छोड़ दी। उसकी बात महेन्द्र ने भी सुन ली। इसीसे, उसकी आँखें भी अखबार से हट-कर रानी और जेबुन्निसा पर टिक गयीं।

रानी ने उसी अवस्था में कहा—काश, तुम्हारा कथन सत्य होगा...यह समाज एक बना होता।

मानों चिढ़ कर जेबुन्निसा बोली—'पर मैं तो यही मानती हूँ। अल्लाह और ईश्वर एक ही देखती हूँ।'

'लेकिन लोग तो ऐसा नहीं मानते। जिन बातों को तुम नहीं देखतीं, वह उन्हीं को लक्ष्य करते हैं।' रानी ने, साँस छोड़ कर कहा।

'परंतु उसका मतलब क्या है, भाभी! समाज खुद्‌गर्ज बन रहा है...बेहूदा! 'जेबुन्निसा ने लाल होकर कहा।

रानी बात सुनकर चुप रह गयी। उसके मन में तो आया कि कहे जिन्हें अपनी खुद्‌गर्जी प्यारी है; उन्हें यही करना होगा। हिन्दू-मुसलमान दो बने रहें;—अलग-अलग रहें; उन्हें यही अच्छा लगेगा। किन्तु उस समय उसे यह कहना अच्छा नहीं लगा। उसके मन में तो यह था कि जेबुन्निसा के उस ईरानी चेहरे पर और लाल-लाल गालों के ऊपर घुंघराले बाल आ-जा रहे थे, वह उसे भले लग रहे थे। उसके मन में इच्छा थी कि उसे अपने पास खेंच ले और उसका सिर अपनी गोद में रख कर प्यार करने लगे; उस सलोनी और सुंदर जेबुन्निसा को! किन्तु उसने यह भी नहीं किया। जब उसने मुँह से कुछ नहीं कहा; तो बलात उसकी ओर देखकर मुसकराया और तदन्तर ही महेन्द्र को लक्ष कर मन्द सा हँस दिया।

महेन्द्र ने कहा—'क्या बात है ?

रानी ने कहा—'सुना न; जेबुन्निसा की इच्छा है; यहीं रहे मेरे पास !

'तो इसमें अचरज क्या है ! जब मैं एक दूर का पँछी यहाँ आकर टिक गया; तो निश्चय ही; परिंदों की इस डाल पर सभी का जी लग सकता है। यहाँ सभी को आराम मिल सकता है; जीजी !'

यह सुनकर जेबुन्निसा हँसी। रानी मुसकरायी।

किंतु महेन्द्र ने फिर कहा—'लेकिन; यह भी देखा; जेबुन्निसा ने जिस भावना के आधार पर अपनी इच्छा को आधारित किया है; समाज उसे स्वीकार नहीं कर सकता। अच्छा यही है कि हम दूर से;—शक्ति भर पास रहते हुए ही खुदा बंदे से दुआ करें कि वह इंसान को बदल दे— इसे सच्चा इंसान बना दे; सबका भाई-भाई रहने दे !

यह सुन कर जेबुन्निसा ने रानी की ओर देखा। उत्तर उसके पास था, किंतु उसे रोक लिया। इसी से, उसने चाहा कि रानी कुछ कहे। किंतु जब रानी को पूर्वत् मौन पाया उसने स्वतः उसे टंकोर कर कहा—क्यों भाभी ! तुम्हारा क्या मत है ! क्या यह ठीक नहीं कि समाज और धर्म का रूप बिगाड़ने वाला इंसान जैसा आज है; वैसा कल भी रहेगा। जिन्हें बढ़ना है, कुछ करना है, बताओ, वह क्या आज भी कुछ न कर सकेंगे,—मैं कहती हूँ, जरूर कर सकेंगे।

रानी ने विकृत होकर कहा—इंसान नहीं बदलेगा...यह समाज भी जैसे का तैसा रहेगा।

महेन्द्र ने कहा—'न जीजी !' इंसान बदलेगा,। हवा आती

है और वह पुराने विचारों को साथ उड़ा कर ले जाती है। हमारे देश के इंसान को भी अगर जीवित रहना है;—तो इसे पास पास बैठना है,—वहाँ के इंसान को मिलना है,—उसने कहा—देखती हो, आज भी कितना परिवर्तन हुआ है। रूढ़िवादी बोलते अवश्य हैं; परन्तु उनकी आवाज में दम नहीं रह गया है।

इतना सुनकर रानी मुसकरायी। वह हँसी। महेन्द्र की ओर देख कर रानी बोली—स्वप्न तो नहीं देख रहे। देखते हो, इस रूढ़िवाद ने आज के शिक्षित व्यक्ति को भी गुमराह कर दिया है। जो सामाजिक समस्या है, उसने राजनीति के साथ संबंध जोड़ कर इस मानव को और अधिक पागल बनाया है।

महेन्द्र ने कहा—यह सब इस लिये है कि समाज का आर्थिक नियंत्रण भी दूसरों के हाथ में है। जब रोटी का प्रश्न उठता है, तो समस्त मानव एक सूत्र में बँधा हुआ मिलता है।

किंतु रानी ने उस विषय को छोड़ कर जेबुन्निसा से सीधा प्रश्न किया, सच बताओ; तुमने आज से कल जो अपना कार्यक्रम बनाया है, उसमें माता-पिता ने तो एतराज नहीं किया। तुम्हारी माता जी तो उस दिन मिली थीं, वह कह रही थीं, जेबुन्निसा का विवाह करना है। किंतु वह अभी तैयार नहीं...शादी के लिये रजामंद नहीं जेबुन्निसा...

जेबुन्निसा ने कहा—हाँ, भाभी! मैं अभी विवाह के लिये तैयार नहीं।

लेकिन विवाह तो करना ही होगा न! आज न, तो कल करना होगा।

जेबुन्निसा ने महेन्द्र की ओर देखते हुए कहा—'यह जरूरी नहीं।'

जरूरी नहीं—रानो ने मानो चकित बनकर कहा—'जरूरी तो है ! यह तो समाज का नियम है। वास्तविकता भी यह है। जीवन की नियमितता हर जगह स्वीकार की जाती है।'

यह सुन कर जेबुन्निसा किंचित क्षुब्ध बन गयी, लगा कि उसके मन की गति भी एकाएक बदल गयी। वह कह तो कुछ न सकी, परंतु बाहर दूर एक पेड़ की ओर देख, जैसे किसी गहरे अंधकार में चली गयी।

रानी ने फिर कहा—'वह नर और नारी की यही सामाजिकता है प्रकृति का यही नियम है।

सुनते ही, जेबुन्निसाने तपाक से रानो की ओर मुँह किया और कहा—मुझे इसे मानने में एतराज, है भाभी ! यह हमारा स्वभाव है,—हमने यही आवश्यक समझा है।

महेन्द्र इस बीच में फिर अखबार पढ़ने लग गया था। बात सुनकर उसने एकाएक जेबुन्निसा की ओर देख कर कहा—'यह ठीक है। हमने बरबस ही यह स्वभाव बना लिया है। नारी ने नर में और नर ने नारी में अपना सौंदर्य, अपना अभाव और अपनी भूख को शान्त करने का आधार देखा है,—यही माना है हमने।

बात सुन कर रानी ने बलात् हँस दिया।

महेन्द्र ने फिर कहा—'जबसे पुरुष द्वारा नारी का इस रूप में परिष्कार हुआ है, तभी से समाज गंदा और भ्रष्ट हो चला है, उसने अपनी वाणी पर जोर देकर कहा—नारी ने स्वयं ही अपना विकृत रूप उपस्थित किया है।' लेकिन रानो फिर भी हँस रही थी। बात सुनकर अब जोर-जोर से हँस पड़ी थी।

चकित बन कर, महेन्द्र बोला—'तुम हँस रही हो! मैं कहता हूँ, आज की नारी ने अपना सांस्कृतिक और चारित्रिक जीवन भ्रष्ट कर दिया है,—कह सकती हो, कि पुरुष द्वारा नारी को ठगा गया है!'

रानी ने एकाएक अपनी हँसी को रोक कर कहा—'महेन्द्र भैया! इतना तो बताओ, इस भारत में,—संसार में भी—कोई युग ऐसा भी रहा कि जब इस पुरुष और नारी जाति का सांस्कृतिक और चारित्रिक विकास आज से अधिक ऊँचा रहा हो'—उसने कहा—'मैं कहती हूँ जैसा आज है,—जितनी आवश्यकता एक दूसरे का आज दिखाई देती है,—उतनी ही, पहिले थी। शायद इससे भी अधिक थी। क्योंकि पहिले इतनी दासता, समाज पर इतना प्रतिबन्ध कभी देखने को भी नहीं मिला। तब तो यह पुरुष और नारी का समाज भोग-क्रिया में स्वच्छंद डूबा हुआ दीखता था।'

जेबुन्निसा ने कहा—'यह मानती हूँ।'

महेन्द्र ने कहा—'नहीं, यह गलत!' उसने हाथ में लिया हुआ अखबार मेज पर पटक दिया और कहा—'तुम्हारा अभिप्राय पुरुष और नारी के जिस चरित्र से है, मैंने उसको नहीं छुआ। वह मुझे महत्वपूर्ण भी नहीं लगता। उसे पकड़ूँगा, तो कहूँगा कि आज अधिकांश गृहस्थ चकले बन गये हैं। परंतु मैं तो कहता हूँ कि समाज के स्त्री-पुरुष मानव की सांस्कृतिक और चारित्रिक परिभाषा का अर्थ यह कदापि नहीं कि पुरुष कितनी और किस प्रकार की स्त्रियों से संबंधित है,—इसी प्रकार नारी,—मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि समाज में जितनी संकीर्णता आज है, वह कल नहीं थी। विचारों की अश्लीलता भी नहीं थी। पहिले का व्यक्ति स्वतंत्र था, नारी स्वतन्त्र थी। वह जो कुछ चाहते, कहते और करते थे। लेकिन आज इस नये युग के आगमन के साथ, हमारे अन्दर जिस अहंमन्यता के साथ, सद्भावना का लोप हो

गया है; उससे न केवल हमारा मानसिक विकास ही रुका है, बल्कि हमने अपने को एक पृथक और गलत धारा में भी बहने के लिए छोड़ दिया है। यही कारण है कि हिन्दू समाज मर रहा है, मुस्लिम-समाज बढ़ रहा है। गुमराह वह भी है,—अपने-आप में हीन है। किंतु यह तो गुलाम देश होने का एक कारण है,—विचारों की प्रगति का दब जाना हमारे पतन का आधार है। लेकिन, जो स्वाभाविक गति है, मानवता की पुकार है,—खेद तो यह है कि आज हमने उसको भी भुला दिया है!'

एक क्षण जेबुन्निसा और रानी चुप बैठी रहीं। वह एक दूसरे की ओर भी देखती रहीं। जेबुन्निसा ने कहा—'निश्चय ही, भारत की इस संतान को अपना रास्ता बनाना है,—हमें अपने को बद-लना है, भाभी! गुलामी हमारे अन्दर है, वह पाप हमने अपने मानस में छिपा रखा है। उसे निकालना है और फेंकना है।

रानी ने साँस भर कर कहा—'तो कैसे हो! क्या करना हो!

महेन्द्र ने कहा—'यह समय बतायेगा। वह तेजी से बढ़ता आ रहा है...वह नये-नये और अनुपम उपहार ला रहा है।'

'और तुम प्रस्तुत न हुए,—योग्य न बने तो? तब क्या होगा? तब तो तुम्हारा भाग्य आज से भी अधिक फूट जायगा' रानी ने कहा।

महेन्द्र बोला—'यह नहीं होगा,—कदापि नहीं।'

रानी ने फिर भी साँस छोड़ कर कहा—'अभी तो ऐसा ही दीख पड़ता है, महेन्द्र भैया!'

महेन्द्र ने जरा हँस कर कहा—'मैं इतना निराशावादी नहीं हूँ। हमारे समाज को आज विश्व के साथ चलना पड़ेगा। नहीं चलेगा, तो मर जायगा। विश्व की दौड़ में पिछड़ जायगा। कोई व्यक्ति, कोई समाज, कोई देश, आज अपनी अलग खिचड़ी

नहीं पका सकेगा। उसे मिलकर ही चलना होगा। देखो, सूरज निकल रहा है,--नव-प्रभात; इस जगमगाते हुये नये दिवस पर तुम्हारा देश अधिक समर्थ और तेजपूर्ण बन जायगा, जीजी! यह कायर नहीं रहेगा। समाज की जीर्ण श्रृंखलाएं टूट जायेंगी— युवकों में चेतना आयेगी और जिन युवतियों का उसे सहयोग मिलेगा, उससे यह देश बहुत आगे बढ़ सकेगा।

रानी ने फिर भी हँस कर कहा—शायद!

'नहीं, जरूर, जीजी!' महेन्द्र ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा।

किन्तु रानी ने यह सुन कर भी हँस दिया। उसने जोर से ठहका मार दिया।

जेबुन्निसा ने कहा—'मुझे भी यही भरोसा है। देश और समाज को बदलना है, निश्चय ही आगे बढ़ना है।'

रानी ने कहा—'ईश्वर करे, ऐसा ही हो। तुम्हारा कथन भी सत्य हो।'

सुन कर महेन्द्र मौन रह गया। किंतु उसी समय जब उसकी और जेबुन्निसा की दृष्टि मिली, तो रानी को यह देखकर अपूर्व विस्मय हुआ कि उसी क्षण जेबुन्निसा का मुँह अप्रत्याशित ढंग से शरमाकर लाल बन गया।

आठवाँ अध्याय

महेन्द्र स्वभाव का काल्पनिक और भावुक व्यक्ति था। भावना में ही वह मनुष्य का आदर्श देखता था। यही कारण था कि जिस जेबुन्निसा से उसका परिचय हुआ, वह अनायास ही उसके मन का स्वान्तःसुखाय विषय बन गया। उस मुसलिम युवती को वह किस रूप में देख सका, भले ही, इस बात का उल्लेख वह नहीं कर सकता था, परंतु जब भी जेबुन्निसा उसे मिलती, सामने बैठ कर बात करती, तो वह अपने मन में एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करता था। कदाचित यही कारण था कि एक दिन जब जेबुन्निसा घर आकर महेन्द्र के कमरे में पहुँची, तो महेन्द्र को कमरे में अकेला देख कर ठिठक गयी थी। लेकिन जब वह द्वार पर रुक गयी, तो उसे देखते ही महेन्द्र ने कह दिया—'आओ, जेबुन, आओ!'

निदान, जेबुन्निसा कमरे में आगे बढ़कर कुर्सी पर बैठ गयी।

उसी समय महेन्द्र ने एकाएक ही कह दिया—'तुम आती हो, तो लगता है कि कोई अपना आ गया,—अपना ही आत्मीय! जैसे, युग-युगान्तर से परिचित।'

सुनकर, जेबुन्निसा चुप रह गयी। वह एक किताब के पन्ने उलटती रही। उसके मुँह पर वैसे ही काफी लाली थी, महेन्द्र की बात सुन कर और अधिक सुर्ख हो गयी।

महेन्द्र ने फिर कहा—'हम जिस सांस्कृतिक जीवन की पूजा करते हैं, नहीं कह सकता कि तुम भी उसे मानती हो या नहीं। जीवन की जिस धारा में पड़े हुए हम बार बार तरंगित होते हैं, निश्चय ही, उसमें अकेले नहीं रहते,—हम जाने किस-किस के

साथ चलते हैं। साथ-साथ बढ़ते हैं। मुझे लगता है कि हम-तुम भी अवश्य किसी जन्म में साथ-साथ रहे हैं—यों आज भी इस जन्म में एक-दूसरे को पहचान सके हैं। बोलो,—तुम्हें भी इसका भरोसा है। ऐसा तुम्हारा भी मत बनता है?

उस समय जेबुन्निसा के मन में था कि वह कह दे; उसे भी भरोसा है? परन्तु उसने यह कहा नहीं,—उससे नहीं कहा गया। उसने एक बार महेन्द्र को देखा और फिर अपनी उन सुंदर आंखों को नीचे गिरा लिया। बरबस, उसने मुसकरा भी दिया।

महेन्द्र ने फिर कहा—'जीवन भी एक पहेली है, जेबुन्निसा! वैसे तो सभी जीवन पाते हैं, हंसते-बोलते हैं, लेकिन इस चलते-फिरते जीवन के अंदर जो हमारी शाश्वत आत्मा है, बताओ तो, उसे कितनों ने समझा है। अपने इस जीवन में मुझे यही समझना है। पेट के लिये नौकरी तो मैं भी कहीं कर सकता था, परन्तु यहाँ आने का मेरा अर्थ ही यह है कि मैं पैसे का जीवन न बनाऊं, मैं मनुष्य बनूं और इस जीवन के अंतर में जितनी बेबसी, रोदन और हर्ष भरा हुआ है, उसे समझने का प्रयत्न करूँ!'

एकाएक जेबुन्निसा ने कहा—'महेन्द्र बाबू, मेरी निगाहें भी यही खोजती हैं। मुझे यही पाना है। आप मुझे गैर नहीं समझेंगे, इतना आपसे भी कहना है।'—उसने कहा—'एक नारी इससे अधिक कहे भी क्या, यह भी मुझे नहीं सूझता। दिखता है, किसी का सहारा पाने के लिये कहना ही सबसे बड़ा है। वैसे जानती तो हूँ जीवन-पथ पर काँटे बिछे हैं, उनको लाँघ कर कहीं पहुँचना, किसी के पास जाना, आसान नहीं है।'

महेन्द्र ने कहा—'देखती हो, आज का मानव जिस जीवन की दल-दल में फंसा हुआ है, आसक्ति और भोग मानव का लक्ष बन चुका है, ऐसा मैं नहीं चाहता। साथी के रूप में, कोई भूल करूँ

तो अन्यथा भी कर देना। मैं जिस दिन भी तुम्हें गलत समझूं तो संकेत कर देना।'

लेकिन उस समय जेबुन्निसा के मन में था कि वह अपना मुंह महेन्द्र की छाती पर रख कर कह दे--तुम हो, मेरे--मेरे अपने ही प्राण! किन्तु इतना कहने का साहस उसमें तब भी नहीं हुआ। भले ही उसका झुका हुआ मुंह ऊपर उठ गया, किंतु आँखों से और होठों से मुसकरा भर देने के अतिरिक्त और उससे कुछ नहीं कहा गया।

महेन्द्र ने कहा--'आज का समाज गंदा है......पुरुष पतित हो चुका है। लगता है कि नर और नारी ने अपना ध्येय भुला दिया है। दो आत्माओं का मिलन वासना की दलदल में खो गया है। आज कहता हूँ. मुझे ऐसा अवसर मत दे देना। पुरुष दुर्बल है,---अपने आप में हीन है!'

जेबुन्निसा ने कहा---'नारी भी दुर्बल है!'

महेन्द्र ने कहा--दोनों हैं! दोनों ही पतित हैं...भ्रष्ट हैं! हाय! कैसी विवशता है कि वासना की आग में जल कर दोनों राख का ढेर बन गये हैं। इन्द्रिय-सुख में ही ये आत्मवत् होते हैं... दोनों एक-दूसरे के सौंदर्य और नखशिख को देखते हैं, जेबुन्निसा!

गम्भीर भाव में जेबुन्निसा बोली--'यह दोष नारी का है। नारी ने ही अपने को सजाया और पुरुष के सामने समर्पित कर दिया है!'

महेन्द्र ने कहा---'शायद ऐसा ही हो। पर मेरा मत है कि पुरुष ने ही नारी को बाध्य किया,--सजने और समर्पित होने के लिये संकेत दिया! यों, पुरुष ने नारी को न केवल पतित किया, बल्कि उसे मातृत्व से भी भ्रष्ट कर दिया... कामी पुरुष का श्राप बेचारी नारी को भोगना पड़ गया!'

उसी समय अभयबाबू और रानी घर में आये। महेन्द्र के पास जेबुन्निसा को बैठी देखकर अभयबाबू बोले---'तुम दोनों यहां

हो, घर में बैठे हो ! गुलाबसिंह मिल के मजदूरों में झगड़ा हो गया। कई जख्मी गये, एक मर गया !'

चौंककर, महेन्द्र ने पूछा—'कैसे झगड़ा हुआ ?'

अभयबाबू ने ईर्षायुक्त होकर, कठोर स्वर में कहा—'कैसे क्या, कारखानेदारों की जैसी परिपाटी है, उसी ने झगड़ा करवाया। मिल-मालिकों ने कुछ मजदूरों को बोनस दिया, कुछ को नहीं। उनसे कह दिया, तुमने हड़ताल की थी, इसलिये बोनस दण्ड स्वरूप नहीं दिया गया !'

'फिर ?–'महेन्द्र ने कहा—झगड़ा मजदूरों में क्यों हुआ ! मिल अधिकारियों से होना था।'

'यही तो समस्या है ! मिल अधिकारी अलग रहे। जिनको बोनस दिया, उन्हीं को भिड़ा दिया। रोष बढ़ा और झगड़ा हो गया। जिस पार्टी को बोनस मिला, उसी का सरगना मारा गया।'

'पुलिस आई होगी ? उसने गिरफ्तारी की होगी !'

'बीस आदमी गिरफ्तार हुये हैं।'—'अभयबाबू ने कहा—'हमारा एक काम और बढ़ गया। रुपये का खर्च भी आ गया। दिखता है, फिलहाल कोआपरेटिव बैंक का काम स्थगित हो गया। मिल बंद रहेगा। जिन मजदूरों ने हड़ताल कर दी है, उनके भोजनादि का प्रबंध भी करना पड़ेगा।'

जेबुन्निसा ने कहा—'यह अच्छा नहीं हुआ ! सच, काम बढ़ गया। मजदूरों को झगड़ा नहीं करना था। हड़ताल कर देते, तो मामला सुलझ जाता। अब मामला उनके प्रतिकूल पड़ गया। आदमी मर गया है, तो जरूर कुछ आदमियों को कारावास का दण्ड भी मिलेगा।

खिन्न स्वर में अभयबाबू बोले—'कम्बख्तों ने झगड़ा क्या किया, हमारा काम चौपट कर दिया! भूखे और आत्महीन हैं न, कुत्तें की तरह से किसी को भी काटने दौड़ते हैं। दिखता है, इनका सुधार-कार्य कठिन होगा। हमसे नहीं होगा। रात-दिन मरें और जब किसी फल की आशा लगायें, तो इनकी हरकतों से सब-कुछ नष्ट हुआ भी देखना पड़ेगा,—ओह!'

रानी उस समय दूसरे कमरे में थी। विनोद को दो दिन से बुखार हो रहा था। जग्गू उसी के पास था, इसलिये उसने बच्चे के पास जाकर बैठ जाना पसन्द किया।

उसी समय महेन्द्र ने कहा—'अब करना क्या होगा!'

क्षुब्ध भाव में, अभयबाबू ने कहा—'करना क्या, हमें मज़दूरों की जमानत करने के लिये भी कोई नहीं मिलता। मुश्किल से दो आदमियों को छुड़ाया गया। कल अन्य आदमियों की जमानत के लिए कलक्टर से मिलूंगा। उसे स्थिति भी समझाऊँगा। प्रयत्न तो करूँगा कि सब छूट जायें, परन्तु यह काम कठिन दिखता है, ज्यादती उन्हीं की थी कि जिन्हें बोनस नहीं मिला।'

स्थिर भाव में, महेन्द्र बोला—'उनकी ज्यादती नहीं थी। झगड़ा भी उन्होंने नहीं किया। मिल मालिकों ने कराया। मजदूरों में फूट डालना उनका लक्ष्य था। जिन मजदूरों ने बोनस ली, उन्हें भी कुछ नहीं लेना था!'

अभयबाबू ने खिन्न बन कर कहा—'ओह, तुम भी सब जगह आदर्श ढूंढते हो! महेन्द्र बाबू, तुम मजदूरों में भावना खोजते हो!'

जेबुन्निसा ने कहा—'भाई जी; आदमी वह भी हैं आत्मा और परमात्मा को मानते हैं! जरूर, वह भी भावना समझते हैं।'

अभयबाबू ने फिर कुछ नहीं कहा। उन्होंने अपना मत नहीं देना चाहा। कुछ देर बाद कहा—'जेबुन्निसा, अपने वालिद साहब से कहना, वह भी एक-दो आदमियों की जमानत कर दें। चाहें तो साथ चलकर कलक्टर से मिल लें। जरूर, उनका रसूख भी काम करेगा।'

जेबुन्निसा ने कहा—'वे चले जायेंगे। आप जैसा कहें, वैसा करेंगे। वे बुढ़ापे की कमजोरी के कारण कहीं आ-जा नहीं पाते; परंतु आप की बातों में दिलचस्पी जरूर लेते हैं।'

अभयबाबू ने फिर कहा—'कैसी विवशता है कि मजदूरों के लिये जमानती नहीं मिलते। आज जिस-जिस से कहा, वही खिसक गया। सभी पैसेवाले ठहरे! मिल-मालिकों के नातेदार! और मजा यह कि झगड़ा रोकने का प्रयत्न भी नहीं किया गगा। सुना, पुलिस को फोन भी जब किया, जब कि एक मजदूर मर गया। उस समय तो झगड़ा प्रायः शान्त हो गया था।'

महेन्द्र ने कहा—'यह बदमाशी है! उन्होंने मजदूरों में भी फूट डाल दी है। भूखों में भी भाईचारा न हो, ऐसी नीति सरमायेदारी ने सदा से स्वीकार की है।'

उसी समय रानी वहाँ आई। बोली—विनोद को बुखार तेज है।

जेबुन्निसा ने कहा—'विनोद को! कब से?'

महेन्द्र ने कहा—'परसों चढ़ा था।'

'ओह, आइये तो! मैं उसके पास बैठूंगी। मैं तो सोचती थी कि विनोद आपके साथ गया है, भाभी!'

जेबुन्निसा उठी और रानी तथा महेन्द्र के साथ विनोद के पास गयी। उसने विनोद के माथे पर हाथ रख कर कहा—'भैया, विनोद!'

विनोद ने कठिनाई से कहा—'हूं।'

'आ, मेरी गोद में बैठेगा। आ तो!' जेबुन्निसा चारपाई पर बैठ गयी और विनोद का सिर अपनी गोद में लेकर सहलाने लगी।

पीछे से अभयबाबू ने आकर रानी से कहा—'मलेरिया है। आज कल मौसम भी खराब है। आज तुम यहीं रहना। क्लास भी छोड़ देना।'

जेबुन्निसा ने कहा—मैं भी रहूँगी। मैं विनोद के पास हूं इतना किसी से घर कहला भेजियेगा।

अभयबाबू ने कहा—'तुम चली जाना। फिर आ जाना। अपने पिताजी को झगड़े से भी अवगत कर देना।'

विनोद ने बुखार की तेजी में कहा—नहीं, तुम्हें नहीं जाने दूंगा।'

जेबुन्निसा ने कहा—'हां, हां, मैं नहीं जाऊंगी, भैया!' और उसने फिर विनोद का सिर अपनी छाती से लगा लिया।

महेन्द्र ने कहा—मैं डाक्टर के पास जाता हूं। दवा लाता हूं।

अभयबाबू ने कहा—चिंता न करो। बुखार है। कल उतर जायगा।'

किंतु महेन्द्र रुका नहीं, वह चला गया।

रानी ने कहा—'गया भैया!'

जेबुन्निसा ने कहा—'हां, उन्हें जाना चाहिए। देखती हो, विनोद तप रहा है....बच्चा परेशान है।'

रानी ने फिर बलात्, अपनी उन ममतामयी आंखों को विनोद के तपते हुये और लाल हुये मुंह पर टिका दिया।

जेबुन्निसा ने कहा—'भाभी, बुखार है, कल उतर जायगा।'

किंतु रानी से बोला नहीं गया। उसका स्वर रुक गया। कलेजा मुंह तक आ गया।

जेबुन्निसा ने तब विनोद से कहा—'भैया, विनोद!'

विनोद ने कहा—'हूं'

'देखो, मैंने तुम्हारे लिये जाली का कुरता बनाया है। कल तैयार हो जायगा। लाऊंगी, तुम पहनना।

विनोद ने कह दिया—'अच्छा!'

जेबुन्निसा ने फिर कहा—'और भैया, जब तुम बड़े होगे, तो मुझे याद करोगे ना?'

विनोद ने कह दिया—'हां, करूँगा।'

सुनकर जेबुन्निसा हंस दी, उससे किंचित रानी के सूखे होठों पर भी हंसी का चिन्ह आ गया।

नवाँ अध्याय

नजीर मुहम्मद मजदूर-संघ के दफ्तर का इंचार्ज था। गुलाबसिंह मिल में झगड़ा होने के कारण पुलिस ने संघ के दफ्तर की तलाशी ली और नजीर को गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार पुलिस और मिल-मालिकों ने झगड़े को विकृत रूप दे दिया। यह देखकर अभयबाबू विचलित हो गये। उनका मानसिक धरातल क्षुब्ध बन गया। पुलिस और मिल-अधिकारियों का विचार था कि झगड़ा मजदूर-संघ के द्वारा हुआ। परिणाम स्वरूप मजदूर-संघ का काम बढ़ गया। उसे जनता की सहानुभूति मिल गयी और प्रतिष्ठा-साधन का अवसर भी हाथ आ गया। मिल के मालिक और पुलिस के अधिकारियों ने जो भूल की, उसका परिणाम यह हुआ कि मजदूर-संघ जनता की दृष्टि में चढ़ गया। उसका काम जनता के सामने आ गया।

लेकिन अभयबाबू को इससे सन्तोष नहीं था। उन्हें प्रतिष्ठा या आत्मगौरव की इच्छा नहीं, जो काम उठाया उसे निबाहने और पूरा करने का प्रश्न था। सहायक उनके परिमित थे। उनमें भी कुछ उत्साहहीन थे, कुछ प्रतिष्ठा के भूखे थे और कुछ केवल पैसा चाहते थे। यही अभयबाबू की चिंता का विषय था। महेन्द्र-बाबू अन्यत्र नौकर थे। वह जितना सहयोग दे सकते थे, उससे अधिक देने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। रानी अपना घर भी देखती थी, अपना बच्चा भी। जेबुन्निसा चौबीस घंटों में केवल एक घंटा पढ़ाने के लिए दे देती। इसके अतिरिक्त जो और सहयोगी थे, वे

निश्चय ही, अभयबाबू की दृष्टि में अयोग्य, उच्छृंखल और अकर्मण्य दिखाई देते थे। मिल से नौकरी छोड़कर और मजदूर-संघ की स्थापना करके अभयबाबू का यह निश्चित मत बन गया कि किसी भी सेवा कार्य को करने से पूर्व आवश्यक है कि व्यक्ति ईमानदार बने। और इसी का उनके संघ में अभाव था, नजीर मुहम्मद अवश्य उत्साही, ईमानदार और सच्चरित्र था, किन्तु उसे पुलिस ने पकड़ लिया। फलस्वरूप दफ्तर का काम रुक गया।

एक दिन महेन्द्र अपने दफ्तर से लौटा तो रास्ते में मजदूर-संघ के दफ्तर को खुला देख कर रुक गया। ऊपर गया तो जाकर देखा, अभयबाबू चिट्ठियां लिखने में लगे हैं। वे पसीना से भीग रहे हैं। चिंतित और व्यस्त भी लगते हैं। उसी समय महेन्द्र ने यह भी अनुभव किया कि इतने बीच में वह दुर्बल भी काफी हो गये हैं—जैसे थक गये हैं, अभयबाबू!

कमरे में जाकर उसने कहा—आप इतने व्यस्त हैं...अकेले...

अभयबाबू ने कलम रख दी और उदास दृष्टि से महेन्द्र की ओर देख कर कहा–'क्या करूँ भाई, सहायक नहीं मिलते! काम उठाया है, तो निभाना है। जब तक करा जायेगा, करे जाऊँगा।'

महेन्द्र ने कहा–'लाइये, कुछ चिट्ठियाँ मैं लिख दूँ।'

'तुम भी तो थके हो, अभी दफ्तर से लौटे हो!'

'लाइये, लाइये, कुछ लिख दूँ।'

महेन्द्र लिखने में लग गया। लिखते हुये ही उसने कहा—'अभयबाबू, बताइये तो, यह काम चल सकता है! मुझे अब भी संदेह है। इस क्षेत्र में काम करने वाला दो धाराओं में बहता है। पैसेवालों के स्वार्थ से तो लड़ना पड़ेगा ही, परंतु इन भोले और

कायर मजदूरों को भी एकाएक नहीं बदला जा सकता । यह भी एक समस्या है !'

अपने कार्य में लगे हुए ही अभयबाबू ने कहा--'समस्या तो और भी हो सकती हैं, महेन्द्रबाबू ! जो व्यक्ति काम करता है, उसके मार्ग में बाधाओं का निश्चय ही, पहाड़ खड़ा होता है। उस पहाड़ को काटना, अपना मार्ग प्रशस्त करना ही हमारा काम है, उन्होंने अपनी कलम रोक कर कहा—'भाई, यह सत्य है कि मजदूर मूर्ख है, परंतु इस अवस्था में तो उसे लाया गया है। निरंतर की हीनता, आर्थिक चिंता और पेट भरने की समस्या ने उसे आदमियत से भी गिरा दिया है। देखते नहीं हो, मजदूर भूखा रह कर भी दुराचारी है...शराबी है ! वह अपने भविष्य की चिंता नहीं करता। जीवन का सांस्कृतिक और शास्वत रूप भी नहीं देखता। वह पेट देखता है और इच्छा-तृप्ति का साधन पाना चाहता है। बस, इसी में डूब कर वह मर जाता है...अल्पकाल में ही उसका अन्त होता है !' यह कहने के साथ ही, उनके चेहरे पर गहरी वेदना का भाव आ गया। माथे पर आया हुआ पसीना रूमाल से पोंछ लिया और तब महेन्द्र की ओर देख, ऐसी दीन तथा याचनापूर्ण वाणी में कहा कि मानो उनके अंदर वही दुःख था और वही पीड़ाओं का केन्द्र। उन्होंने कहा—'भाई महेन्द्र ! जीवन तो सभी को मिलता है। किंतु जैसा जीवन इन बेचारे मजदूरों को मिला है, भगवान न करे वह किसी और को मिले। हाय! उनके जीवन में कैसी उदासीनता है। मौलिकता और उल्लास की भावना तो है ही कहां, बल्कि यह कहो, इन मजदूरों की नारियों को रात-दिन रोना और पेट को मसोसे रहना, मानो मानव-जीवन के साथ विरासत में मिलता है। उन बेचारियों के मुँह पर कभी हँसी नहीं

आती। जीवन का सुख क्या है, ऐसी कल्पना भी उनके मन में नहीं उठती। वह तो बस, दूसरों को देखती हैं और साँसभर कर रह जाती हैं!'

महेन्द्र लिखने में लगा था। वह कलम हाथ में लिए हुए बर-बस रुक गया और किसी अनजानी और बिना देखी हुई एक अंधकारपूर्ण उपत्यका में गिर गया।

उसी समय अभयबाबू ने कहा—'जिस समय मैंने यह काम आरंभ किया था, निश्चय ही, मेरे अंतर में अधिक उत्साह नहीं दीख पड़ता था। किंतु जैसे-जैसे मैं इन मजदूरों के जीवन में घुसता गया, इनकी परिस्थिति का परिचय पाता गया, त्यों-त्यों ही, मेरी आत्मा में एक कोलाहल उठता गया। वह मुझे अशांत, उद्विग्न और विषम बनाने में काफी सहायक हुआ। आज सोचता हूँ मैं, जब यह जीवन पाया है, अपने अंतर में मानव की भाव-नाओं को उठता हुआ देखा है, तो मैं इस कार्य को करता जाऊँ। मैं इससे दूर न जाऊँ।'

महेन्द्र मौन था। उसके सामने जितने पत्र थे, उन्हें लिख चुका था। अभयबाबू कितने भावनामय बन रहे थे, उसी को लक्ष करके वह स्वयं किसी और दिशा में पहुंचता जा रहा था।

उसी समय अभयबाबू कह रहे थे—'और महेन्द्रबाबू,—उन्होंने कहना आरंभ किया—'तुम्हारी बहिन रानी ने इस दिशा में बढ़ने के लिये मुझे कितना प्रोत्साहित किया, सचमुच, इस जीवन का अन्त होने के बाद भी, मैं उस प्रेरणा को अपने साथ लिये जाऊँगा। जाने किस जन्म के मेरे अपूर्व कर्मों का यह फल मुझे मिला कि पत्नी रूप में रानी सरीखी अलभ्य नारी का सहयोग पा लिया। आज भी मैं उसी की प्रेरणा से भरा हूं। देखता हूं

वह दुःखी है, फिर भी मैं उसे चिन्तित नहीं पाता। सदा हँसती और मुसकराती ही पाता हूं।'

यह सुन कर महेन्द्र जरा मुसकराया। उसकी आँखों में हर्ष भी उठ आया।

अभयबाबू ने कहा—'यह उसके माता-पिता की देन है। उन्हीं का प्रताप है।'

उसी समय देर से रुकी हुई और मन में उठती हुई बात को लेकर महेन्द्र ने कहा—'अब मैं भी आपको अधिक समय दूँगा। मैं इस क्षेत्र में लगूँगा।'

सुन कर अभयबाबू ने कहा—'तुमसे नहीं कहूँगा। जितना करते हो, मैं उसी को पाकर धन्यवाद दूँगा।'

महेन्द्र ने कहा—'न, अभय बाबू! आप मुझसे भी कहिये जीजी के समान आपका भी मुझ पर अधिकार है। मुझसे कुछ भी कहा जा सकता है।'

सुन कर अभय बाबू ने किंचित हँसा। उन्होंने कहा—'भाई, मेरा तुम्हारा नाता है। कल को तुम्हें कुछ हुआ, जेल जाना पड़ा, तो तुम्हारे माता-पिता कहेंगे, अभयबाबू स्वयं तो भिखारी बने ही, हमारा लड़का भी गुमराह कर दिया। अभी तुम्हें विवाह करना है....सामाजिक व्यक्ति बनना है...अपने माता-पिता का सेवक रहना है।'

महेन्द्र ने आतुर बन कर कहा—'न, जी! मैं स्वयं जो कुछ सोचूँगा, वही करूँगा। यह ठीक है कि यहाँ आने से पूर्व मुझे इन्हीं दो कार्यों में लगना दिखता था, परंतु आज मेरे सामने बात यह है कि शायद विवाह मेरा होगा नहीं, माता-पिता की सेवा के लिये चाहिये रुपया, सो, वह मैं इस जीवन में कमा नहीं सकूँगा। जिस भावना पर मैंने अपना जीवन टिकाया है,

वह पैसा नहीं देती। पैसा आता है, चतुर और धूर्त कार्यों के द्वारा-ऐसा भला अब मैं क्या बनूँगा! न, मैं नहीं बन सकूँगा!'

'और विवाह क्यों नहीं करोगे?'

'यह भी एक समस्या है। इसके लिये समाज जिस नियम और व्यवस्था का पालन चाहता है, वह मुझसे नहीं होगा—शायद!'

अभयबाबू ने अपना काम भी बंद कर दिया। हाथ से कलम रख दी। वह अब तक गम्भीर थे। लेकिन विवाह के प्रसंग पर, उनके मुँह पर हास्य का भाव आ गया। उन्होंने कुछ हँसा। कहा—'मैं समझा! शायद—हां

महेन्द्र ने पूछा—'क्या?

उन्होंने जल्दी से कहा—'यह मैं नहीं बताऊँगा। चाहो तो अपनी जीजी से पूछ लेना।'

महेन्द्र ने हास्य के भाव में कहा—'आप जानते हैं, वह मेरी जीजी हैं,-बहिन; उससे इस प्रकारकी बातें करना न मुझे जँचता है और न उसी का भला लग सकता है।'

अभयबाबू ने कहा—'तो क्या हुआ,—क्या! प्रसंग अच्छा है। भला, इसमें कौनसी अश्लीलता या आपत्ति का विषय आ गया है। न, तुम दोनों भाई-बहिन को इस विषय में सोचना है।' तब उन्होंने कहा—'रानी तो कहती थी, जेबुन्निसा का मन तुम्हारे पास अटका है,—उसे तुम्हारे साथ ही विवाह करना भाता है—उसे यही पसंद है!'

महेन्द्र ने कहा—'शायद,—हां!'

अभयबाबू ने जोर देकर कहा—'नहीं, ठीक! जेबुन्निसा ने स्वयं ही रानी से कहा है।'

महेन्द्र ने चंचल बन कर कहा—'नहीं, झूठ! जीजी ने स्वयं ही अपना मन बना लिया होगा।'

'अच्छा, बताओ असलियत क्या है? क्या जेबुन्निसा से तुम्हें अरुचि है। वह मुसलमान तो है, पर क्या तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है? मेरा मत है, उससे अधिक उपयुक्त पत्नी मिलना तुम्हारे लिए असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।'

यह सुन कर महेन्द्र हँसा नहीं, वह गंभीर बन गया और मौन रह गया।

उसी समय अचानक रानी के साथ जेबुन्निसा ने कमरे में प्रवेश किया। उन दोनों को बैठे देख कर रानी ने कहा—'लीजिये, आप यहाँ बैठे हैं, स्कूल जाने का समय हो गया, महेन्द्र भैया! चलिये!'

महेन्द्र ने कहा—'जीजी, आज नहीं। मैं थक गया। यहाँ बैठ गया।'

अभय बाबू ने कहा—'इन्होंने आज मेरा भी काम करवाया है।'

'लेकिन पढ़ने वाले आयेंगे तो लौट न जायँगे।

यह सुन कर महेन्द्र ने आलसभरी आँखों से जेबुन्निसा की ओर देखा। उस समय वह काले रंग की साड़ी पहने हुए थी। वह उसके गोरे बदन पर खूब फब रही थी। उसी ओर देख कर महेन्द्र देखता रह गया। बरबस उसने कहा—'सच, मैं थक गया!'

जेबुन्निसा ने कहा—'रहने दीजिये, आपकी क्लास में पढ़ा दूँगी।'

'हाँ, हाँ, यह ठीक रहेगा। अभयबाबू ने कहा।

रानी ने कहा—'नहीं, यह गलत रहेगा! अपना काम आप ही करना पड़ेगा।'

महेन्द्र ने कहा—'अच्छा, मैं चलूँगा। चलो।' कहते हुये वह खड़ा हो गया।

जेबुन्निसा की ओर देख कर रानी ने कहा—क्यों, तुम्हारा क्या मत है जेबुन, अपना काम तो खुद ही करना ठीक होगा। आज

थकने का बहाना है, कल को बीमारी का !' —उसने कहा—'यह काम तो इच्छा पर टिका हुआ है। करो तो अच्छा, न करो तो अच्छा !'

अभयबाबू ने कहा—'महेन्द्रबाबू तो अब और अधिक इस काम को करेंगे। अभी-अभी मुझसे यही कहा।'

रानी ने कहा—'क्यों भैया—महेन्द्र !'

महेन्द्र ने कहा—'हाँ, जीजी ! मैं और अधिक समय दूँगा।'

रानी ने कहा—अभी-अभी जेबुन्निसा ने भी यही कहा है। इसने भी आधा दिन इस काम के लिए देना स्वीकार कर लिया है।'

अभयबाबू ने हँस कर कहा—'तो यह कहो आत्मा ने आत्मा की वाणी को सुना है—धन्यवाद !'

इतना सुनते ही रानी ने स्वयं ही हँस दिया। तदंतर ही उसने महेन्द्र और जेबुन्निसा की ओर देखा। उसने कुछ कहना भी चाहा, परंतु लगा कि रानी ने बरबस अपने-आपको रोक लिया।

दसवाँ अध्याय

किंतु अभयबाबू ने जो रास्ता स्वीकार किया, वह जीवन का एक ऐसा मोड़ था कि जहाँ उन्हें यह स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा कि या तो वह आगे का रास्ता पकड़ें, अथवा पीछे लौट जायँ। जिस प्रकार आगे बढ़ने के लिए जीवन विषम, कठिन और दुसाध्य दिखाई देता था, उसी प्रकार, पीछे मुड़ना भी उनकी स्वयं की दृष्टि में हीन था। वह आत्मा को स्वीकार नहीं था। यही कारण था कि वह चिंचित थे और उलझे हुए थे। कार्य और कारण के जिस संगम पर वह खड़े हुए थे, वह देखते कि जीवन यह है...मनुष्य की देन यह! लेकिन उस देन को पाना आसान नहीं था। उसके लिए तो जीवन की इच्छाएँ, अरमान सभी का खून करना था। 'त्याग' जिस वस्तु को कहते हैं, उसे अब तक सुना था अपने मुँह से भी हजारों बार कहा था, परंतु उस मोड़ पर आते-आते ही वह त्याग उनकी ओर देख रहा था। अभयबाबू ने स्वयं भी उसे लक्ष किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब घर में आमदनी नहीं रही तो उन्हें अपना खर्च भी घटा देना पड़ा। पहिले कई रुपये महीने धोबी को जाते थे, वह बंद हो गये। अभयबाबू ने कोट और पतलून पहनने भी छोड़ दिये। खद्दर का कुर्ता, धोती और पाजामा पहनने लगे। उन्हें नित्य ही अपने हाथ से धोने लगे। घर का नौकर जग्गू पहिले खुराक, कपड़ा के साथ दस रुपये भी लेता था। लेकिन जब उसको भी पृथक करने का प्रश्न खड़ा हुआ, तो स्वयं जग्गू ने ही कहा कि वह केवल रोटियाँ खायेगा, वेतन नहीं लेगा। यद्यपि अभयबाबू ने उससे कहा कि वह अपना जीवन न बिगाड़े। बः

कहीं अन्यत्र जाकर नौकरी कर ले, किंतु जग्गू अपनी धुन का निकला, अभय बाबू की बात सुनकर वह रुआंसा हो गया और कहने लगा, दिखता है, आप मुझे अपना नहीं समझते...अपना दास नहीं मानते । मैं कहता हूँ, मैं आपकी झूठनों पर पड़ा रहूंगा। मेरा कोई अपना नहीं है । आपके बीच में रहकर मैं भी आदमी बन जाऊँगा, बाबूजी ! निदान, यह सुनकर अभयबाबू ने उसे पृथक नहीं किया । मकान अधिक किराये का था, उसे छोड़ दिया और सस्ते किराये का ले लिया । घर में पहिले सभी घी-दूध पीते-खाते थे, अब वह बन्द हो गया । केवल विनोद के लिए थोड़ा-सा दूध आता रहा । घी के स्थान पर तेल काम में लाया जाने लगा। अभयबाबू पहिले एक रुपये की सिगरेट दिन भर में फूँक देते थे, एक दिन उन्हें भी छोड़ दिया । इस प्रकार घर में जहाँ भी बचत हो सकती थी, उसे व्यवहारिक रूप दिया गया । अभयबाबू मजदूर-संघ के निर्माता तो बने ही, उन्होंने कांग्रेस का काम भी आरम्भ कर दिया ।

किंतु उनके मित्र विवशता देखकर कहते–'यह तुमने क्या किया, अभयबाबू ! तुमने इतना संकुचित जीवन बनाया, अपनी पत्नी रानी देवी का भी ध्यान नहीं किया !'

यह सुनकर अभयबाबू कह देते—'भाई, मैंने स्वयं कुछ नहीं किया । जो कुछ किया, रानी के आदेश से किया ।'

तब वे मित्र,–अभयबाबू के सहयोगी,–सचमुच ही, उनके भाग्य पर ईर्ष्या करते। वह कहते–'तुम भाग्यशाली हो, बाबू ! रानी जैसी देवी के पति बन सके हो ।'

किंतु इस भाग्य की बात को सुनकर तो अभयबाबू ने स्वयं भी बहुत बार अपने-आपको सराहा था । अब तो प्रश्न यह था कि

जिस प्रकार उन्हें रानी द्वारा सहयोग मिल रहा था और बाहर का वातावरण भी अनुकूल बन रहा था, तो उस सबको पाकर क्या उन्हें उसी जीवन में चले चलना पड़ेगा ? जन-सेवा ही उनका लक्ष्य रहेगा ? जनता-जनार्दन की सेवा में ही उनका जीवन बीतेगा ? आदि मन में उठते हुए प्रश्नों के साथ, भले ही वह यह देखते कि जीवन यही है,—मानव की अविराम गति भी यही;—परन्तु आखिर कमजोरियाँ उनमें भी थीं,—कुछ अपनी इच्छाएं भी थीं, जब-तब उनका खून होता हुआ दिखाई पड़ता, तो उनका मन उलझता। पैर आगे बढ़ने से रुकता। आँखों में संसार का सौन्दर्य एकाएक समा जाने की चेष्टा करता। पिछले दिनों जब उनका लड़का विनोद बीमार हुआ, तो बरबस ही, पैसे की कमी के कारण उसका अच्छे डाक्टर द्वारा इलाज नहीं कराया गया, तो तब भी उन्होंने रानी से कहा था—यह पथ जटिल है...मुझे यह करना था, तो गृहस्थी नहीं बनाना था !

रानी ने पतिकी इस मनोदशा की कल्पना कर तनिक मुस्कराया। उसने कहा—'बस, यही हैं तुम्हारे अरमान । अभी तो इससे अधिक विपत्ति आ सकती है । जीवन यहीं तो खत्म नहीं है, आगे बढ़ने पर हृदय पर और भी चोटें लग सकती हैं । 'वह बोली—'हम जिस समाज में रहते हैं, उसमें ऐसे अधिक हैं कि जिनके बच्चे बिना पथ्य और औषध के काल के ग्रास बन जाते हैं।' रानी कहने लगी—उपदेश देना और है, उस परिस्थिति का सामना करना और ! एक दिन तुम्हींने कहा था कि कार्ल मार्क्स जो दुनिया का इतना महान विचारक बन गया, जब उसकी बच्ची मरी, तो उसके ऊपर डालने के लिए कफन भी उसके पास नहीं था। पैसे होते तो कफन आता। वह पैसे से खाली था।' उसने बताया—भैया महेन्द्र कह रहे थे, कार्ल मार्क्स की पत्नी बड़े घर

की बेटी थी, किंतु वह अपनी रुचि से मार्क्स के साथ विवाह-बन्धन में बँधी थी। वह महान व्यक्ति विश्व के एक बड़े समाज का नेता बना। यह काम उसकी पत्नी का ही था। पति के साथ वह भी भूखी रहती थी ,पर स्वयं हँसती और पति को भी हंसाती थी। वह महान नारी थी !'

रानी से इस प्रकार की सांत्वना अभयबाबू कई बार पा चुके थे। जब-जब वह धीरज खोने के लिए बाध्य हुए, तो तभी-तब रानी की मधुर मुसकान और अमर बोली को सुनकर वह अपने प्राणों में प्रेरणा और गति पाते थे।

नजीर मुहम्मद पहिले जमानत पर रिहा हुआ, फिर मुकद्दमे से बरी हो गया। मिल के झगड़े में जितने मजदूर गिरफ्तार किए गये, उनमें से अधिकांश को छुड़ा लिया गया। केवल पांच रह गये, उन्हें भी एक-एक मास का कारावास दण्ड मिला। उस मुकद्दमे में अभयबाबू ने सचमुच ही बहुत परिश्रम किया। जिन अधिकारियों से उन्हें मिलना अरुचिकर लगता था, उनसे भी मिला गया। लगभग पाँच हजार रुपया संघ का खर्च हुआ। किंतु उससे जो अधिक लाभ उन्हें प्राप्त हुआ, वह यह था कि जनता में मजदूर-संघ का मान बढ़ गया। मजदूरों में विश्वास हो गया। मिल अधिकारियों में उनकी गति और शक्ति को देखकर आतंक छा गया। अधिकारी स्पष्ट रूप से तो पूँजीपतियों के साथ थे, परन्तु उनका हृदय मजदूरों के साथ था। वह जानते थे कि आदमियों की इस बड़ी जमात को मशीनों के साथ खड़ा करके निचोड़ दिया है . इन्हें पतित कर दिया है।

उन्हीं दिनों मजदूर-संघ ने अधिकारियों से एक साप्ताहिक पत्र की अनुमति प्राप्त की। उसका संपादन कार्य महेन्द्र को सौंप दिया गया। जिस पत्र में महेन्द्र काम करते थे, वहां डेढ़ सौ

रुपया पाते थे, परंतु अपनी इच्छा से ही, उन्होंने जीविका मात्र के लिए संघ से पचास रुपया मांग लिया। अभयबाबू के साथ अन्य सदस्यों ने यह स्वीकार कर लिया।

जेल से लौट कर और मुकद्दमे से बरी होकर नजीर मुहम्मद का काम और बढ़ गया। एक दिन दफ्तर में नजीर मुहम्मद और अभयबाबू अकेले बैठे हुए थे, तो तभी उन्होंने उससे कहा—'सुनो भाई, मैं बार-बार सोचता हूँ कि तुम्हारा जीवन अभी ठीक से बड़ा भी नहीं हुआ है। चाहो तो यह काम छोड़ दो। यहाँ पैसा तो है नहीं, संसार की प्रगति का मार्ग भी यह नहीं। तुम किसी मिल में फिर चले जाओ। अपने घर वालों की इच्छाओं को यों मत कुचलो। यह तो सूखा जीवन है, नितांत ऊजड़!

बात सुनते हुए नजीर मुहम्मद गंभीर बन गया। उसने कहा—'भाई जी, आप ऐसा मत कहिये। तब मैं जिस रास्ते पर चल पड़ा हूँ, उससे दूर होने की सलाह मत दीजिये। मैंने वलिद साहब को समझा दिया है। अम्मी से भी कह दिया है। आप विश्वास कीजिये, इस मुकद्दमे से उन्होंने भी कुछ समझा है। इंसानियत और गैर-इन्सानियत की जिस लड़ाई में हम पड़े हैं, उन्होंने भी उसे देख लिया है।'

'तो तुम नहीं हटोगे? रहोगे मेरे साथ?'

'हाँ, भाई साहब! खुदा मुझे ताकत दे।'

'प्यारे नजीर! तुम लोग मेरे साथ रहे, तो जम कर यह काम आगे बढ़ सकता है। मुझे तुम्हारे खयालातों का पता है। आज से क्या, मैंने बहुत दिन पहिले ही तुम्हें अपना समझा। परंतु बार-बार सोचता हूँ, मैं तुम लोगों की जिंदगी से खिलवाड़ न करूँ—उसे बरबाद होते न देख पाऊँ!' उत्साह भाव में अभयबाबू ने कहा।

नज़ीर ने हँस कर कहा—'तो यह जिंदगी की बर्बादी है, क्या !'

'न, भाई ! बर्बादी तो नहीं, पर इन्सान जिस जिंदगी में आकर पैसा कमाता है, घर की तरक्की करता है, उससे छूट कर भले ही वह इन्सानियत को पाये और रूहानियत को बढ़ाये, लेकिन इस अहमियत का जज्बा हरेक इँसान की समझ में कैसे आ सकता है ! हर आदमी योगी और सूफी नहीं बन सकता। जो बनता है, वह बड़ा आदमी कहलाता है। वह पूजा जाता है...संसार उसके चरणों में गिरता है, नज़ीर भाई !'

नज़ीर ने कहा—'भाई साहब, मैं सूफी बनने की इच्छा नहीं करता। उसकी अहमियत भी नहीं पहचानता। परंतु यह विचार अब मेरे दिल में घूम रहा है कि पैसा पाकर ऐशपरस्ती में डूबना, पैसे के लिये ही जिंदगी को झिंझोड़ना, कुछ अच्छा नहीं लगता। यह भाव मन में नहीं बैठता।

अभयबाबू ने कहा—'कल यही मैंने महेन्द्र से कहा है। वह स्वयं ही इस रास्ते पर आया है। किंतु मैं चाहता हूँ कि वह अपने दूसरे जीवन में जाय,—दूसरी दुनिया के जीवन में ! लेकिन तुम तो देखते हो, वह पहिले ही घिसा-मंजा है। उसका अध्ययन भी हम-सबसे बड़ा है।'

नज़ीर ने कहा—'जरूर !भाई महेन्द्र के अंदर जितनी आग है, उतनी हम किसी में नहीं। जब बोलते हैं, तो लगता है कि एक-एक लफ्ज से शोला फूट रहा है। अखबार में वह जो-कुछ लिखते हैं, मजदूरों और जनता में उसका एक-एक शब्द पढ़ा जाता है।' वह बोला—'महेन्द्र बाबू के आने से हमें बल मिला है... एक नया जोश प्राप्त हुआ है !'

लेकिन भाई, उसके पिता कहेंगे कि तुमने मेरा घर उजाड़ दिया ! मैं क्या जवाब दूँगा ? उदास भाव में अभयबाबू ने कहा।

'महेन्द्रबाबू बच्चे नहीं हैं। वह अपना भला-बुरा समझते हैं।' नजीर ने कहा—'बड़ी मुसीबत तो यह कि मा-बाप पैसा कमाने के लिये बच्चे पैदा करते हैं! सन्तानें जिंदगी भर कोल्हू के बैल की तरह पिलें और पैसे लायें, मा-बाप यही चाहते हैं!'

अभय बाबू ने कहा—'यह उनका दोष नहीं, समय की बात है। घर में जितने व्यक्ति कमाते हैं, उनसे भी संतोष नहीं होता।'

नजीर बोला—'बेहद खर्चे बढ़ा लिये हैं, लोगों ने! पैसे पर जीवन डाल दिया है...इन्सानियत को भुला दिया है...जिंदगी का उसूल खो गया है!'

यह सुन कर अभयबाबू ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने बाहर हरे आसमान की ओर अपनी आँखों को लगा दिया। उसी ओर देखते हुये मन में कहा—यह ठीक है...इन्सानियत को भुला दिया है, हमने! पैसा ही जीवन बना लिया...अपनी आवश्यकताओं का भोग श्रेष्ठतर मान लिया है, इस इन्सान ने!...

ग्यारहवाँ अध्याय

एकाएक जीवन के जिस मोड़ पर आकर महेन्द्रकुमार रुक गया, वहाँ उसे एक साथ ही, दो परिस्थितियों का सामना करना पड़ा ; एक थी, मजदूर-संघ में काम करने की प्रवृत्ति और दूसरी जेबुन्निसा; जिसके प्रति वह दिन-दिन आकर्षित हो रहा था। एक दिन स्वतः ही जेबुन्निसा ने उससे कहा—'मैंने अब तक जीवन नहीं समझा...इसका अवसान भी नहीं देखा। उसे अब समझा है। तुम्हें देख कर, तुम्हें समझ कर मेरे मानस में जिस भावना का जन्म हुआ है, उसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। किंतु दिखता है कि उस भावना ने मुझे पकड़ लिया है और झुका दिया है।'

किंतु महेंद्र जब-जब एकांत में होता, तो वह सोचता, यह भी जीवन हो तो हो, परंतु एक विचारक और जीवन के दरिया में बहने वाला व्यक्ति इसी एक टेक पर नहीं टिक सकता ..उसके लिये यही प्राप्य नहीं है। यह वासना है...नारी तूफान है! नारी रूपी तूफान मनुष्य के जीवन में आता है और झाड़-झँखाड़ का कूड़ा छोड़ कर लौट जाता है। निदान, वह कभी-कभी विचार-भ्रष्ट बन जाता। उत्तेजित हो जाता। लगता कि जीवन की सच्ची गति को न समझ पाकर, अपने-आप में ही डूब जाता।

अपने पिताजी के अनेक पत्रों के उत्तर में उसने जब अपना अन्तिम पत्र लिखा, उसमें स्पष्ट कर दिया कि वह मजदूर-संघ को नहीं छोड़ेगा। वह जीवन में पैसा भी नहीं कमा सकेगा। अब वह पैसे के पीछे भाग कर अपने विचारों की हत्या नहीं करेगा...

आप अपने पुत्र से पैसा न पाकर भी यदि इसके जीवन से जन-सेवा पा सके, तो यह एक पिता के जीवन का सबसे बड़ा और आकर्षक प्रसाद होगा।...आप मुझे ऐसा ही आशीष दीजिये। आपका महेन्द्र जीवन को समझे, जीवन की सच्ची और अभूतपूर्व धारा में बह कर दरिद्र नारायण की सेवा में अर्पित हो सके,—यही मेरे और आपके जीवन का पवित्र समन्वय होगा, पिताजी !'

लेकिन उसने पिताजी को तो लिख दिया, परंतु माता को समझाना जैसे शक्ति से बाहर था। मा का विचार शीघ्र ही उसका विवाह कर देने का था। कदाचित इसीलिये उसे बार-बार घर बुलाया जा रहा था। संभवतः उसकी मां ने कोई संबंध भी पक्का कर लिया था। बस, महेन्द्र लड़की को देख ले, इसी पर मामला रुक रहा था।

कदाचित् इसी बात को लिये, अपनी चाची का पत्र पाकर, एक दिन रानी ने महेन्द्र के कमरे में पहुँच कर कहा—'भैया, तुमने पढ़ा चाची का पत्र !'—वह बोली—'देख तो, मुझे व्यर्थ ही फट-कार दिया। अब बताओ, मुझे क्या लिखना है।'—उसने कहा—'यह तो लिखूँगी ही, कि मेरा कोई दोष नहीं। भैया अपने ही मन से सब-कुछ कर रहा है।'

रानी की बात सुन कर एकाएक महेन्द्र ने कुछ नहीं कहा। वह मौन और गंभीर ही बना रहा।

रानी ने फिर कहा—'यह बात ऊपर से जितनी सरल दीखती है, अन्दर से नहीं। इसमें काफी भारीपन है। जरूर, चाची ने कोई लड़की देख ली है और तुमने...'

उसी समय महेन्द्र ने रानी की ओर देखा। बरबस उसने कहा—'जीजी...'

किंतु जीजी ने कहा—'और मैं कहती हूँ, तू यहाँ क्या आया, अपना जीवन ही बदल बैठा...यह मजदूर संघ...जेबुन्निसा...'

महेन्द्र ने संयत होकर कहा—'जेबुन्निसा मुसलमान की लड़की है, इतना सोचकर तो उससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता, जीजी ! वह सचमुच ही भावुक, सरल और सुबोध है।'

सुन कर रानी हँसी नहीं, अपितु, वह महेन्द्र के समान ही गंभीर और चिंतित मुद्रा में बोली—'भैया, इतना भी देखती हूँ। मैं तो सोचती हूँ, चाचा और चाची चिराग लेकर भी ढूँढ़ें तो जेबुन्निसा सरीखी लड़की पायेंगे, क्या !'

महेन्द्र ने कहा—'लेकिन जैसी आशंका में तुम हो, मुझे वह नहीं सूझती। मुझे स्वीकार नहीं।'

यह सुन कर रानी हँसी। वह बोली—'यह भी तुम्हारी भावुकता की बात है ! कल को जब यह बात उठेगी, जेबुन्निसा स्वतः ही कहेगी, तो बताओ, तब तुम्हारे पास क्या उत्तर होगा।'

उसी समय महेन्द्र चंचल बन गया। जेबुन्निसा उससे विवाह के लिये कहेगी, ऐसा भी उसे नहीं सूझ पड़ा। किंतु समय-समय पर जेबुन्निसा से वह क्या-कुछ सुन चुका, उसकी उन सलोनी और मधुर आँखों में कैसा उद्वेग और भावनाओं का समूह देख सका, निश्चय ही, उसी का एकत्र और साकार रूप उसके सामने आ गया। लगा कि उसका एक-एक शब्द, एक-एक भाव और उसकी दृष्टि का एक-एक बिमल लक्ष्य इसी अर्थ का द्योतक था। सच, जेबुन्निसा ने यही उससे कहा था। यही कारण था कि वह रानी की बात सुनकर चकित नहीं हुआ। वह नितांत, उद्विग्न और कातर अवस्था को लेकर बोला—'तो मैं क्या करूँ, जीजी ! सच, जेबुन्निसा सरल है, भावनामयी है, वह !'

सुनते ही, अपूर्व सदय भाव से रानी बोली—'भैया, वह बड़ी सुहावनी है। हृदय की उदार है! एक दिन कहती थी, महेन्द्रबाबू को पाकर मुझे लगा है कि जैसे जीवन मिल गया...मैंने अपना ही एक अनोखा साथी पा लिया।'

उसी समय महेन्द्र ने चंचल बन कर कहा—'यही मुझसे कहा है, जीजी!'—वह बोला—'मैं सोचता हूँ, क्या करूँ...क्या कहूँ!'

रानी ने अपने होठों पर मुसकराहट लाकर महेन्द्र की ओर देखा। उसे लगा कि वह भोला और सरल महेन्द्र जैसे निश्चय ही, जेबुन्निसा की ओट में छिप गया है। उस क्षेत्र से बाहर भी नहीं आना चाहता है। महेन्द्र को उसी में सुख और आत्म-त्याग का भाव दीखता है। तभी उसने कहा—'भैया, मैं क्या कहूँ! बात तुम्हारी है, तुम्हारे मन की है। हां, चाची और चाचा अप्रसन्न न हों, यह मेरी भी आकांक्षा है।'

महेन्द्र ने कहा—'मैं उन्हें समझा लूँगा। मैं तुम्हारी अनुमति चाहूँगा। अभयबाबू का अनुमोदन।'

रानी ने कहा—'उनकी तो राय है कि तुम जेबुन्निसा से विवाह कर लो। जेबुन्निसा को पाकर तुम आगे बढ़ोगे, उनका यही भरोसा है।'

महेन्द्र फिर मौन बन गया। उसने कहना चाहा कि तुमने और अभयबाबू ने जो कुछ सोचा है, वह कठिन है और विषम है। जेबुन्निसा ने भी जो अपने मन में धारण किया है, वह भी अपूर्ण है और निस्सार है। इसी से, उसने बड़ी उदास और मलिन दृष्टि के साथ रानी की ओर देखा। उसी अवस्था में उसने कुछ कहना भी चाहा। परंतु जो कुछ भी उसके मन में था, वह मुँह तक आकर भी व्यक्त नहीं हो पाया, वह गले में ही

अटका रह गया। इसीसे, वह अपने-आप में कठोर और कठिन बन गया। लगा कि जैसे उसकी आत्मा में कहीं से, किसी ने बलात छुरा घोंप दिया, जिससे वह तिलमिला गया। वह कुछ कहता, तो निश्चय ही, हल्का बन जाता। लेकिन अपने-आप में ही मौन रह कर उसका मानसिक धरातल विक्षुब्ध बन गया। लगा कि मानव जल रहा है। स्वयं उसका अपना शरीर भी उसी भट्टी में गिर पड़ा है, और चट-चट चटख रहा है...मर रहा है, उसका मानव !

माथे पर पसीना आ गया। रानी का मुँह बाहर की ओर था और उसके मन में भी जो-कुछ था, वह महेन्द्र की अवस्था और चिंता से अधिक दूर का विषय नहीं था। इसीसे, जब महेन्द्र ने एकाएक सांस खींचने की अवस्था का अनुभव कर जोर से स्वांस भरा, तो बलात् रानी ने उसकी ओर देख कर कहा—'कैसी दीनता है—हाय ! यह कैसी अवशता है इस मानव की, कि यह एक नहीं...पास रह कर भी और एक ही समस्या में उलझा हुआ भी, यह मन, जीवन और समाज के नियमों में एक सूत्र से बँधा हुआ नहीं...यह अभागा-मानव !'

उसी समय महेन्द्र ने अपने माथे का पसीना पोंछा और सिर के बालों में हाथ की उँगलियाँ देकर बोला—जोजी, यह भी एक समस्या है कि यह मानव कभी एक नहीं रहा...एकात्म नहीं बन सका।'

'मैं सोचती हूँ, इस दशा में जेबुन्निसा का क्या हाल होगा ! निश्चय ही, वह मर जायगी...वह तुम्हारी नहीं बन सकी, तुम्हारे जीवन से संबंध नहीं रख सकी, तो वह इस जीवन से छूट जायगी...मिट जायगी, जेबुन्निसा !'

ो ही, महेन्द्र ने आहत व्यक्ति की तरह पीड़ित स्वर में कहा 'न, जीजी ! तुम उसे समझाना। कहना, प्रेम तथा भावना और है वासना का नशा और ! उसके माता-पिता जहाँ उसे भेजना चाहें वह वहीं जाये...वहीं रहे, जेबुन्निसा। मैं भी उससे यही कहूंगा। वह इतना स्वीकार करे, मैं इसके लिये कोई भी उचित त्याग कर सकूँगा।'

रानी ने अपने होंठों पर एकाएक ईर्षापन की मुसकराहट लाकर महेन्द्र की ओर देखा। जैसे उसने अपने भैया की आँखों में घुस जाना चाहा। और जो कुछ भी उसके मन में आया उसे वरबस आँखों द्वारा ही, उसकी आँखों में उँडेल देने का प्रयत्न किया। फिर भी उसने कहा—'भैया, तुम उसकी अवस्था में होते, तो समझते नारी के मन का मोल ! उसकी भावना का मोल ! नारी भावना पर जीती है। मेरा मत है, जेबुन्निसा वासना की अंधी नहीं, वह भावना की भूखी है। उसने जो कुछ तुम्हारे पास देखा, वह उसी को पाना चाहती है। इतना तो वह भी जानती है कि तुम्हारे पास ऐसा रूप नहीं कि जो उसे अन्यत्र न मिल सके। धन भी तुम्हारे पास नहीं। वह जिस वस्तु को तुम्हारे अन्तस में देख सकी है, वह कदाचित अन्यत्र नहीं देख पायी। बस, यही उसकी धारणा है। यही उसे पाना है। अब तुम हिंदू हो या मुसलमान, यह तो अभी उस बेचारी ने समझा नहीं ! लगता है कि उसकी आत्मा ने यह स्वीकार भी नहीं किया। मजहब और खुदपरस्ती को उसने अपने उज्वल हृदय में स्थान नहीं दिया।'

महेन्द्र ने कहा—यह सच है। जेबुन्निसा ने मुझसे भी यही कहा है। उसका मत है, हम सभी एक खुदा के बंदे हैं। जाति और धर्म कुछ व्यक्तियों के बनाये हुए हैं, जिससे समय-समय पर वह अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।'

उसी समय वहां आ गये अभयबाबू । साथ में नजीर मुहम्मद । नजीर को देखते ही, रानी ने एकाएक प्रश्न किया—'बताओ, अगर कोई मुस्लिम लड़की हिंदू से विवाह करे, तो यह ठीक होगा, तुम्हारी नजरों में ?'

सुनते ही, एक बार तो नजीर मुहम्मद चकित हुआ। वह उस अप्रत्याशित प्रश्न को सुन कर तनिक मौन भी रह गया। परंतु तदनंतर ही, उसने अभयबाबू की ओर देख कर कहा—'तो इसमें ताज्जुब क्या भाभी !...अचरज कैसा !'—वह बोला—'यह हो सकता है। होना भी यही चाहिये।' उसने कहा—हिंदू और मुसलमानों को एक होना है, एक जमीन पर बस कर शांति और सुख से रहना है, तो इन्हें विवाह-संबंध भी आपस में करने पड़ेंगे।' कहते हुए उसने रानी की ओर देखा और कहा—'भाभी, कल जैसा जमाना आयगा; उसमें यही होगा। वहाँ पर मुल्ला-पंडितों की आवाज को कोई नहीं सुनेगा। जमाना बदल रहा है; देखना, हिंदू और मुसलमान का भेद मिट जायगा।'

रानी ने कहा—'मैं भी यही मानती हूँ। यही होगा।'

नजीर मुहम्मद ने एकाएक लाल होकर फिर कहा—'जरूर, इस जहालत का एक दिन नाश हो जायगा। हम को जीना है; तो यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। हमें मसजिद और मंदिर नहीं चाहिए, मुल्ला-पंडितों के उपदेश नहीं; हमें तो रोटियां चाहिये। जिसके लिये आज से भी अधिक लड़ना पड़ेगा। लाखों और करोड़ों व्यक्तियों को इस पेट की आग में झोंक देना पड़ेगा... पूंजीवाद से लड़ना होगा।...तब देखना तुम, यह पेट के पीछे भागता हुआ व्यक्ति, जाति और धर्म नहीं देखेगा। वह मानव खेदेगा। उसी को अपना भाई और साथी स्वीकार करेगा।

मानव, मानव का खून देख कर ही अपना त्याग और बलिदान दे सकेगा। । जाति और धर्म को देख कर नहीं चलेगा।'

कठोर और कठिन बने हुए महेन्द्र ने अपने हाथों की मुट्ठियां बांध लीं, वे मेज पर पटक दीं और रानी की ओर देख कर कहा—'सच है जीजी! यह जाति नहीं रहेगी। धर्म भी नहीं! यहां मनुष्य रहेगा,—जीवन से लड़ने और मानव के जीवन के लिये मरने वाला मनुष्य।

अभयबाबू हँस दिये—वह दिन विश्व के लिये भाग्यवान और शुभ दिवस होगा। महान भी होगा।'

रानी ने साँस भर कर कहा—'देखें,—शायद!' और उसने बरबस आसमान की ओर अपना मुँह उठा दिया।

ग्यारहवाँ अध्याय

जब से महेन्द्र और जेबुन्निसा में परिचय हुआ और दोनों ने एक दूसरे के विचारों को समझ पाया; तब से, स्पष्टतः जेबुन्निसा की वेषभूषा में अंतर आ गया था। पहिले वह प्रायः सूती और रेशमी साड़ी पहनती थी, परंतु अब खद्दर की धोती को छोड़कर और कुछ नहीं पहनती थी। वह किस दिशा में थी; क्या चाहती थी, भले ही उसके माता-पिता को इसका पता न हो, परंतु रानी को मालूम था कि जेबुन्निसा के मन में क्या चल-फिर रहा था। जेबुन्निसा के मन की अवस्था का नजीर मुहम्मद भी पूर्ण समर्थक था। किंतु उसने इस बात का उल्लेख किसी दिन भी नहीं किया। वह इतना आवश्यक भी नहीं मानता था। बल्कि जब उसने यह देखा कि जेबुन्निसा ने पहिले की तरह से अपना शृङ्गार करना छोड़कर सुन्दर और विदेशी कपड़ों को पहनना त्याग दिया, तो उसके मन को यह भला लगता था। वह सुहावनी और सुन्दर जेबुन्निसा लगती थी कि जैसे कोई देवी का रूप हो,—पूजा के योग्य हो!

उन्हीं दिनों दो बातें एक साथ घटित हुईं। जेबुन्निसा के पिता ने अपनी पुत्री के लिए एक लड़का देखा, विलायत से लौटा हुआ, बैरिस्टरी पास। उन्हें शीघ्र ही अपनी लड़की का विवाह करना अभीष्ट था। बुढ़ापे के दिन थे, अपना मरना जैसे अपनी दृष्टि से दीखने लगा था। जेबुन्निसा की मां का भी यही तकाजा था। लड़की सयानी थी; आयु बीस के ऊपर पहुंचने लगी थी। इसलिये उनके अंदर जो एक अभाव था; उसका पुरना जल्दी ही आवश्यक दिखाई दिया। उन्होंने जेबुन्निसा पर भी यह प्रगट कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अपने रास्ते पर चलती हुई और कल्पनाओं की दुनिया में लीन हुई जेबुन्निसा का वह सुन्दर दुर्ग डगमगा गया,—वह गिरने लगा। उसने किसी पर व्यक्त तो नहीं किया, किंतु उसे इतनी वेदना मिलेगी, पीड़ाओं का इतना बोझ भी उसे उठाना होगा, ऐसी संभावना से उसका परिचय नहीं था। निदान वह बेचैन थी और अपनी ही दृष्टि में हीन। दूसरी बात थी—महेन्द्र के पिता का आना, उन्होंने इसी आशय का उसे पत्र लिख दिया था। वह आने वाले थे, महेन्द्र चिंतित था। लेकिन जेबुन्निसा को देख कर रानी पूछती—क्या बात है, जेबुन! तुम सुस्त हो। बताओ, कोई बात लिए हो क्या?

—तो, उस समय जेबुन्निसा कड़वा सा मुसकरा देती। लगता कि वह कठिनाई से अपने मन की बात को टाल देने का भी प्रयत्न करती।

किंतु रानी फिर कहती—जरूर कोई बात है...मुँह उतर रहा है।

उस समय जेबुन्निसा चाहती कि रानी से सब बातें कहे और वह इस कार्य में उसकी क्या मदद कर सकती है, यह भी पूछे। परंतु उसके मन में तो था कि वह किसी से नहीं कहेगी। वह

जो कुछ सुन रही है, उसे स्वयं अपने-आप ही अपनी छाती के नीचे दबाये रहेगी।

निदान, इसी मसले को लेकर एक दिन महेन्द्र ने पूछा—'जेबुन, दिखता है, तुम अवश्य खिन्न हो ! जरूर कोई समस्या है, जिसे तुम अपने-आप सुलझा रही हो। और तुम अभी तक असफल रही हो—क्यों ?'

लेकिन यह सुनकर भी, जेबुन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने हल्का-सा मुसकरा दिया।

महेन्द्र ने फिर कहा—'जेबुन्निसा, मैं नहीं जानता कि तुम जीवन को क्या मानती हो...मेरी सुनो, लहर ही तो है; यह जीवन ! पानी की एक हल्की तरंग। अवसर पाते ही, आपस में मिलती है,—जगत के प्राणियों के साथ। फिर दूर होती है, मिटती है,—आगे मिलने के लिये। बस, यही तो है, हमारा जीवन—मृत्यु का खेल। यही खेल हम सब को खेलना है। कोई समस्या हो, चिंता हो, तो उस पर उलझना भला कहां की बुद्धिमत्ता है। न, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। हँसना और प्रसन्न रहना ही तुम्हें फबता है।'

लेकिन इतना सुनकर तो जेबुन्निसा ने मुसकराया भी नहीं, न उसने हँसा। अपितु, नितांत गंभीर होकर अपनी उन सुंदर आँखों को बरबस ही, महेन्द्र की आँखों में बैठा दिया। उसमें जितनी वेदना थी, पीड़ा थी उसमें, मानो उसे भी अर्पण कर देना पसंद किया। किंतु तदंतर ही, उसने आतुर बन कर—अपनी उन आँखों को फेर लिया। उसने उन्हें आसमान की ओर उठा दिया।

महेन्द्र ने फिर अनुनय के साथ कहा—बताओगी नहीं,—बताओ !

इतना सुन कर जेबुन्निसा जैसे आहत बन गई। निढाल भी हो गयी।

एकाएक वह चंचल और उद्विग्न भी हो गयी। मानो जो कुछ उसे कहना था, उसे आँखों में लेकर फिर महेन्द्र के सामने प्रस्तुत दिखायी दी।

महेन्द्र ने उन्हीं भावनामयी आँखों को देखकर कहा—'बताओ, —सच !,—वह बोला, 'जानता तो हूँ, कोई-न-कोई समस्या सभी के पास है,—तुम्हारी तरह मेरे भी पास।'

'वह क्या ?—तुम बताओ।'

महेन्द्र ने मेज से एक कार्ड उठाकर कहा—'यह आया है, मेरे पिता जी का पत्र। पहिले भी उनके कई पत्र आये। वह मुझे यहाँ से हटाना चाहते हैं। मेरा विवाह करना चाहते हैं वे। अभी आठ दिन हुए मैंने उन्हें पत्र लिख दिया कि मैं यह काम नहीं छोड़ूँगा। मैं विवाह भी नहीं करूँगा।'

कठिनाई से जेबुन्निसा ने पूछा—'आप विवाह नहीं करेंगे,—क्यों ?

'यह बड़ा प्रश्न है, जेबुन्निसा। कहूँ कि नितांत गूढ़। पहिले मैं इसे नहीं समझता था। अब समझा हूँ,—तुम्हें देखकर। जब तुम्हें सामने देखता हूं, तो मैं अपनी भावनाओं को साकार और मूर्तिमान पाता हूं। मैं अपने-आपको तुम्हारी दिशा में ही भूला और खोया-खोया देखता हूँ।'

निःसन्देह, उस समय यदि कोई चित्रकार जेबुन्निसा का चित्र बना पाता, तो जो कुछ भी उसके हृदय में था, उसके मुख पर भी व्यक्त हुआ पाता। आज तक उसने स्वयं ही महेन्द्र से अपनी बात कही, उसने सुना कुछ नहीं। किंतु आज उसने जितना सुना, उसका एक-एक शब्द मानों उसके प्राणों में जाकर समा गया,—वह उन्हीं में बैठ गया। इसी से, जब महेन्द्र अपनी बात कह रहा था, तो बरबस, उसने अपनी आँखों को बन्द कर लिया।

उसने अपने शरीर का कम्पन भी अनुभव किया। इधर वह कई दिन से खिन्न थी। अपने से लड़ रही थी और उस संघर्ष में सफल हो जाने की चेष्टा में निरत थी। लेकिन जब उसने महेन्द्र से वह सभी कुछ सुना कि जिसकी वह कल्पना करती थी, तो तब, उसका मन जैसे नये बल और नवीन साहस से परिपूर्ण होगया। जब महेन्द्र ने अपनी बात समाप्त की, तो उसने आँख खोली और कहा—तो पिता जी आ रहे हैं आपके ? कब ?

महेन्द्र ने कहा—'शायद आज, या कल।'

'तो आप अपना निश्चय ही अटल रखेंगे ?'

महेन्द्र ने संयत होकर कहा—'निश्चय ही ! जब मेरा जीवन है, तो विचार भी अटल है, जेबुन्निसा ! यह अमिट है।'

जेबुन्निसा ने साँस भरी और छोड़ दी। उसी अवस्था में उसने एकाएक अस्फुट स्वर में कहा—'आह, तुम...'

महेंद्र ने इतना सुना और मुसकरा दिया—'जीवन एक तमाशा है। लोग कहते हैं कि जीवन एक समस्या है, पर मेरा अपना यह भी मत है कि एक खेल का नाम ही जीवन है, जिसे मानव नित-नित खेलता है और खेले जाता है।'

जेबुन्निसा ने अपनी उसी अप्रत्यक्ष भावना में कह दिया—'हां, जीवन एक तमाशा है, ..सच !' और उसने बलात् अपने मोती-जैसे सफेद दांतों से हँस दिया। उसने जीभ फेर कर सूखे होठों को हरा करने का भी प्रयत्न किया।

महेंद्र ने फिर कहा—'माता-पिता के साथ मेरा सामाजिक सम्बंध होनेके साथ सांस्कृतिक संबंध भी है, मैं उसे कभी भूल नहीं सकता। किंतु इस नाते को लेकर यदि उनकी मेरे प्रति कोई और

भी इच्छा हो, वह उन्हें पूरी करनी हो, तो उसके सामने मुझे अपने जीवन की परिस्थिति को भी देखना आवश्यक लगता है, जेबुन्निसा ! मैं आँख मूँद कर उनकी बात नहीं मान सकता। जीवन एक सौदा भी है, इसे भी स्वीकार किये बगैर नहीं रहा जा सकता।

जेबुन्निसा मौन रह गयी और गंभीर बन गयी।

महेंद्र ने फिर कहा—'मैं पिता जी को समझा लूँगा।' वे कुछ नाराज होंगे ही, उन्हें बाद में मना लूँगा।'

उस समय जेबुन्निसा ने चाहा कि कहे, मैं क्या करूँ। मैं कैसे अपने वालिद को समझाऊँ। किंतु उसने यह भी नहीं कहा। महेंद्र बाबू चिंतित होंगे, वह अपनी समस्या को सुलझाने के साथ, उसकी बात में भी उलझेंगे, अतएव उसने स्वीकार नहीं किया।

उसी समय महेंद्र कह रहा था—'जिस जीवन को हम आंख मूँद कर बिताते हैं, वह हमें धोखा दे देता है। वैसे जानता हूं कि हमें जो कुछ मिलता है, वह अनायास नहीं। हमें अपने कर्मों का ही फल मिलता है। हम सोचते कुछ हैं, होता कुछ है। सभी का अपना अपना अधिकार है। माता-पिता का सोचना भी इसी भावना पर टिका है। लेकिन कमजोरियां तो उनके पास भी हैं। भूल वह भी कर सकते हैं। धोखे और अधिकार में वह भी डूब सकते हैं, जेबुन्निसा।

जेबुन्निसा ने कहा—'शायद, जी हाँ !'

महेंद्र ने जोर देकर कहा—'नहीं, जरूर !'

यह सुनकर, बरबस ही, जेबुन्निसा ने मुस्करा दिया। उसने बहुत देर बाद अपनी आंखों से हँस भी दिया।

उसी समय रानी के साथ आये नज़ीर मुहम्मद । रानी ने जेबुन्निसा की ओर देखकर कहा—'कहो जेबुन, आज दिखायी दी हो कई दिन में। पढ़ाने भी नहीं गयीं ?'

जेबुन्निसा ने कहा—'हां, भाभी ! आ न सकी। शायद आज भी नहीं ।'

'क्यों, कोई बात हुई क्या ? तबीयत तो ठीक है ? मुँह उतर रहा है ।'

जेबुन्निसा ने कठिनाई से अपनी स्थिति के विपरीत बनकर कहा—-तबियत तो ठीक है।

'अच्छा, तो सुनाओ अपनी अम्मी की बात ! परसों मुझे मिली थीं। तुम्हारे विवाह की बात कर रही थीं । वह तो किसी नये बैरिस्टर से तुम्हारा सम्बंध पक्का कर देने की बात लिए थीं।'

उस समय एकाएक जेबुन्निसा के मन में आया कि वह वहां से भाग जाय। भाभी की बात को सुनकर महेन्द्र के मन में क्या आया, उसके मुँह को देखकर भी, वह उसकी पहचान करना चाहती थी। परंतु इतनी शक्ति उसमें नहीं थी । वह उस ओर नहीं देख पायी,—नहीं देख सकती थी।

रानी ने कहा—संबंध अच्छा ही होगा । तुम्हारी अम्मी ने घर अच्छा ही देखा होगा,—वर भी।

उसी समय पीड़ा से भरकर जेबुन ने भाभी की ओर देखा और कहा—भाभी !—'उसका स्वर अवरुद्ध हो गया । मानों उसे जो कुछ कहना था, उससे नहीं कहा गया।

यह देख, बरबस ही, नज़ीर ने रानी की ओर देखकर कहा—'भाभी, यह विषय पेचीदा है। अब मत उठाओ । जेबुन्निसा से अकेले में ही बात करो। वैसे जो कुछ इनके मन में है, उसका

सबको पता है। कहते हुए वह गम्भीर हो गया। उसी समय जेबुन्निसा की ओर देखकर बोला—'बहिन, मैं तुम्हारा भाई हूँ। अगर मैं तुम्हारे काम आ सकता हूं, तो बताना। नजीर पीछे नहीं रहेगा। तुम्हारे लिए वह अपने समाज से लड़ेगा।'

जीवन में पहले-पहल जेबुन्निसा ने अपनी विनीत हुई आंखों से नजीर की तरफ देखा। उसने कुछ कहना भी चाहा, पर कहा नहीं गया। उसी समय वह उठ खड़ी हुई और रानी से बोली—अच्छा, भाभी! कल आऊँगी। सच, मैं दुःखी हूं। कहते हुए वह तुरन्त ही बाहर चली गयी।

उसके पीछे ही नजीर ने कहा—'देखता हूँ, इस जाति के सवाल ने इंसान को निकम्मा और जाहिल बना दिया है। यह इंसान जितना फलना और फूलना चाहिये, उतना ही इसे दबा दिया और भींच दिया गया है...इस समाज ने...कौम परस्ती ने निकम्मा बना दिया है।'

रानी ने कहा—'आज के युग की यह भी एक बड़ी समस्या है!'

नजीरने कहा—'इसको मिटा कर ही, इन्सान जीवित रहेगा। नहीं तो मर जायगा, यह इंसान! ऐसा रहा, तो यह सदा गुलाम और दूसरों का मोहताज बना रहेगा।'

उस समय महेन्द्र अपने-आप में जितना कठोर और भारी बना हुआ था, इसका स्पष्ट रूप यह था कि उसने अपने दोनों हाथों को सिर के बालों में दे लिया था और आँखों को दूर आसमान की ओर उठा दिया था। उसके माथे में बल पड़े हुए थे। वह चिंतित था और विषम बन चुका था।

बारहवाँ अध्याय

जेबुन्निसा ने अपने माता-पिता से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह अभी विवाह नहीं करेगी—उन बैरिस्टर साहब से नहीं। घर की लाड़ली और एकमात्र संतान से ऐसी असम्भावित और अप्रत्याशित बात सुनकर माता-पिता को अचरज हुआ। फलस्वरूप, जेबुन्निसा को समझाने का भी प्रयत्न किया गया। किन्तु उसने बार-बार यही कहा कि विवाह जरूरी नहीं,—अभी नहीं। वह कहती, आप सब अपनी बेटी के लिए जिस सुख की और इसके जिस जीवन की बात सोचते हैं, इसे वह मान्य नहीं,— अभी जरूरी भी नहीं।

निदान, विवाह तो स्थगित हो ही गया, परंतु साथ ही, उसके माता-पिता के सामने यह प्रश्न एक समस्या का रूप बन गया। वह सोचते कि आखिर जेबुन्निसा के मन में क्या है। इसे क्या करना है। स्वभावतः ही उनका मन डूब जाता। जेबुन्निसा किस हवा में बह रही है, यह भी उन्हें दीख पड़ता। परिणामस्वरूप वे व्याकुल थे और शनैः शनैः विषम होते जा रहे थे।

जेबुन्निसा को पता था कि उसका विवाह स्थगित कराने में नजीर मुहम्मद ने जितना प्रयत्न किया, वह सचमुच ही, उसकी आशा से दूर था। यद्यपि, नजीर मुहम्मद पहिले से ही उस घर का एक परिचित व्यक्ति था, आता-जाता था, परंतु इस घटना के बाद वह स्पष्ट रूप से जेबुन्निसा का आत्मीय भाई बन गया था।

एक दिन अवसर पाकर जेबुन्निसा ने मजदूर-संघ के दफ्तर में जब नजीर मुहम्मद को अकेला पाया, तो उसके पास बैठकर कहा—'नजीर भाई तुमने मुझे बचा लिया...मैं जिस उलझन में पड़ गई थी, तुम्हारी कोशिश ने फिलहाल मुझे उससे छुड़ा दिया।'

नजीर मुहम्मद जितना हँसमुख था, उतना ही गंभीर था। जेबुन्निसा की बात सुनकर, वह हँसता हुआ एकाएक गंभीर बन गया। उसने कहा—'बहिन, देखने में यह बात जितनी सीधी है, टेढ़ी भी कम नहीं। हम मुसलमान हैं और अपनी मुसलिम दुनिया को छोड़कर न कहीं और देखते हैं, न किसी की सुनते हैं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे मन में क्या है। यकीन रखो, मैंने उस भावना को सदा इज्जत की निगाह से देखा है। मेरा तो ख्याल है कि मुसलमान अपनी दुनिया से बाहर भी देखें और दूसरों को समझें। तुमने यही किया है। निश्चय ही तुम गुमराह नहीं बनोगी। इश्क के दरिया में नहीं बहोगी। वह बड़ा छोटा रास्ता है। गन्दा भी है। और जवानी का तूफान तो जिस तेजी से आता है, उसी तरह उतर जाता है। फिर आता है बुढ़ापा; जिंदगी का पहरेदार, वह हमारे यौवन की सौगात पाकर ही गौरव मनाता है। और इतना मैं भी जानता हूँ कि महेन्द्र बाबू हीरा हैं एक,—होनहार—आग से बने हुए देश के एक युवक! तुम उनकी बनो, उनके साथ चलो, मेरे मन को यह भाता है। किसी को भी पसंद आ सकता है। जाति और मजहब की दीवार तोड़कर आगे बढ़ना, विश्व का प्रकाश पाना, आज जरूरी बन गया है।'

नजीर मुहम्मद की बात सुनते हुए, वह पहिला दिन था कि जेबुन्निसा ने अपने-आपको उससे छोटा समझा और हीन पाया। बलात् लज्जा से उसका सिर झुक गया और उसके गोरे-गोरे गालों पर लाली का समूह आकर एकत्र हो गया।

नजीर मुहम्मद ने फिर कहा—'इस जिंदगी का मोल हर कोई नहीं समझता...कोई मानता भी नहीं।'

जेबुन्निसा ने कहा—'मुझे विवाह करना है, यह भी अभी तय नहीं, नजीर भैया !'

यह सुनकर भी नजीर मुहम्मद नहीं हँसा। उसने कहा—'असलियत से दूर होना भी, इन्सान को गुमराह बनाता है, जेबुन्निसा !'—वह बोला—'भले ही तुम विवाह न करो, लेकिन नारी को एक पुरुष की दरकार है, और पुरुष को नारी की,—बताओ, इस सचाई से तुम्हारा छुटकारा कैसे हो सकता है। मेरा खयाल है नहीं हो सकता। सुनता हूं विवाह करना समाज के साथ समझौता है। एक व्यवस्था।' और उसने हँसकर कहा—'विवाह करके इन्सान खूँटे से बँध जाता है।'

किंतु जेबुन्निसा मौन और गम्भीर थी। उस समय वह नजीर मुहम्मद की ओर से मुँह मोड़कर बाहर की ओर देखने लगी थी! सचमुच, उसे लगा कि जैसे नजीर द्वारा कही गयी बात उसके अन्तर में घुस रही थी। वह नारी बनकर अकेली नहीं रह सकती। अतएव, वह अपने हृदय पर एक पत्थर-सा रखा देख रही थी। वह पत्थर इतना भारी, इतना संदिग्ध है कि उसका जीवन, मानो एक ही बार में पिस जायगा और दब जायगा,—हाय! उसके अन्तस से यह पुकार उठ रही थी—हां, जेबुन्निसाँ! तू अकेली है,—निराश्रित, तुझे भी साथी की आवश्यकता है, किसी आश्रय की, कदाचित् महेन्द्र बाबू की !

किंतु इतना सोचकर तो उसका मन काँप गया। मस्तिष्क में एक के बाद दूसरे विचारों का तांता लग गया। नजीर मुहम्मद अपनी बात कहने के बाद ही, सामने रखे हुए अखबार पर झुक गया

और उसकी एक खबर पढ़ने में लग गया। उसी समय, उसने फिर सिर ऊपर उठाया। जेबुन्निसा की ओर देखा। उसने कहा–'हाँ, जेबुन्निसाँ, बता न, बात क्या......?'

सुनते ही, मानो चौंक कर, जेबुन्निसाँ ने उसकी ओर देखा। उस समय उसकी आँखों में कितना कातर, दीन और याचना का भाव निहित था, उसे बरबस ही, नजीर मुहम्मद ने समझ लिया। इसी से, उसने तनिक हँसकर कहा—'हां, तुम्हारे मन में क्या बात है—विवाह की,—महेन्द्रबाबू का साथ देने की?' वह बोला—'मेरी सलाह है, अभी जल्दी मत करो। महेंद्रबाबू से पूछ लो। इस पहेली को इतनी भारी मत बना दो।'

'लेकिन मैं अपने घर वालों से क्या कहूंगी, नजीर भाई...महेंद्र-बाबू से।'

सुनकर, एकाएक नजीर मुहम्मद मौन रह गया। मानो बात भारी थी, इसलिये वह बलात् कुछ नहीं कह पाया।

जेबुन्निसा ने कहा—'मुझे महेन्द्रबाबू से कुछ नहीं कहना,–सच!'

'मैं कहूँ!—हां, कहो तो, मैं तुम्हारे लिए उनसे भी कहूँ, बहिन!'

'न, भैया! तुम नहीं। तुमने बहुत कहा। मेरा यह विवाह ही तुमने रुकवा दिया, यही मेरे साथ क्या कम एहसान किया।'

'लेकिन बात तो फिर भी उठ सकती है। एक बैरिस्टर को छोड़ किसी दूसरे साहब से बात चल सकती है।'

यह बात सुनते ही, जेबुन्निसा ने अपना सिर पकड़ लिया। मानो, उस बात को सुन कर उसे दुःख हुआ। बलात् उसका सिर झुक गया। कदाचित् उसके मन पर पत्थर रखा गया।

उसी समय रानी वहां आई। जेबुन्निसा को देखते ही, उसने बंधे स्वरमें कहा—'तुमने यह कौनसा ढंग अख्तियार किया है, जेबुन्निसा! नहीं पढ़ा पातीं तो स्कूल छोड़ दो। रोज बच्चे आते हैं और लौट जाते हैं।'—वह फिर बोली—'और देखो जेबुन,—अब उसके स्वर में कुछ सौहार्द आया—'महेन्द्र के पिताजी आये और चले गये। वह जाते समय मेरे मुँह पर कह गये कि महेन्द्र तुमने छुड़ाया है, मेरे हाथ से! सो, मैं तुमसे पूछती हूँ, भला इसमें मैंने क्या किया... कुछ नहीं। मैंने महेन्द्र से कह दिया कि वह घर जाये,—लौट जाये, यहां से!' वह नजीर मुहम्मद की ओर देख कर बोली—'भला बात भी कुछ! मुझे व्यर्थ में घसीट लिया गया। जवान लड़के पर जब बस नहीं चला, तो दोष मुझ पर डाल दिया।'

नजीर मुहम्मद ने हँस कर कहा—'यही होता है, इसमें बुरा क्या है, भाभी!'

रानी ने फिर उपेक्षित भाव में कहा—'न, भाई! मैं बाज आई इस बला से! मुझे जो-कुछ करना है। किसी दूसरे से नहीं कहना।'

'लेकिन महेन्द्र बाबू क्या कहते हैं,—यह बताओ!' नजीर ने फिर हँस कर पूछा।

रानी ने कहा—'कुछ नहीं कहता वह,—खाक भी नहीं!'

पिताजी से भी कुछ नहीं कहा। सब मुझ पर डाल दिया जब बहुत पूछा, तो कह दिया, मैं अभी कुछ नहीं कहता—कुछ नहीं करना चाहता मैं!'

नजीर ने मेज पर हाथ मार कर कहा—'तो और क्या कहते!' वह बोला—'तुम सोचती हो, वह पिताजी को फटकार देते। कह देते, मैं तुम्हारा नहीं हूँ—तुम्हारा पुत्र नहीं! भाभी जी, बात जब

उठती है तो धीरे-धीरे दबायी जाती है,—ऐसे टाल भी दी जाती है।'

उसी समय रानी ने जेबुन्निसा की ओर देख कर कहा—'लेकिन मैं कहती हूँ सेवा के क्षेत्र में जिस भावना का तुम दोनों ने प्रदर्शन किया है, वह बुरा है। समाज के सिर और मजदूर-संघ के नाम पर भी एक कलंक है। सात्विक बनना,—अपनी इच्छाओं का दमन करना, सेवा के मार्ग की पहिली सीढ़ी है, जेबुन्निसा!' इतना कहने के साथ रानी एकाएक लाल हो गई। वह जिस अप्रत्याशित रूप में उस समय दिखायी दी, निश्चय ही, उससे पहले नहीं दीख पड़ी। जेबुन्निसा मौन थी और सिर झुकाये हुए थी। नजीर आँख उठाये हुये रानी की ओर देख रहा था और बिना अचरज के होठों से मुसकरा रहा था। अंत में उसने मुसकराना भी बंद कर दिया था।

रानी ने फिर कहा—'मैं जानती हूँ, यौवन की स्वाभाविक इच्छाएं हैं। वह नर और नारी दोनों को उद्वेलित करती हैं। किंतु मैं कहती हूँ, जिस रास्ते पर तुम हो, महेन्द्र है, उस दिशा के लिये वह शोभनीय नहीं,–यह पाप है!'

एकाएक जेबुन्निसा ने कहा—'भाभी......'

'हां, जेबुन्निसा! निःसंदेह, तुम मेरी बहिन हो। तुम ममतामयी और स्नेहमयी हो। मेरा कहना है, तुम इस पथ से हट जाओ। तुम जहां से चली थीं, वहीं लौट जाओ। तुम्हारा यह क्षेत्र नहीं है। यहां वासना और भोग के लिए स्थान नहीं। तुम कोमल हो, रूपवती हो, किसी भले घर की रानी बनो। जिन बैरिस्टर से तुम्हारे विवाह की बात चली, तुम उसे स्वीकार कर लो।'—उसने कहा—देखती हो, महेन्द्र अपने बाप का अकेला है।

वह घर का रहे या बाहर का—किंतु मनुष्य रहे,—आत्मवान रहे—एक बहिन की स्वाभाविक इच्छा के साथ, अपने इस भाई को मेरी भी केवल मनुष्य देखने की इच्छा है। सच, मैंने बुरा किया कि तुम्हें पहिले नहीं रोक दिया। यह अन्याय, जो तुम दोनों एक-दूसरे के साथ करने चले हो, पहिले ही रोका जाता, तो ठीक था।'—वह बोली—'नारी मैं भी हूँ, जेबुन्निसा! तुम्हारी आवश्यकता समझती हूँ। किंतु मेरी तो इच्छा है कि महेन्द्र देश के लिये फाँसी पर झूल जाये...वह मिट जाये! भले ही, वह अपने मा-बाप का न बने, परंतु वह देश का अवश्य बने, यह मेरी भी इच्छा है। तुम्हें पाकर वह कुछ नहीं करेगा,—वह सब भूल जायगा—जितना पथ उसने पार किया है, उससे लौट जायगा।'

उसी समय, जेबुन्निसा का रोना सुन, रानी ने उसका सिर उठाया और नितांत मृदुस्वर को लेकर कहा—'आह, जेबुन!'

जेबुन्निसा ने कहा—'न, भाभी! सच, मैं पतित हूँ। जलील हूँ। मैं यौन-तृप्ति की बात सोचती हूँ!'

किंतु रानी को इतना सुनकर संतोष नहीं हुआ। उसे जेबुन्निसा सरीखी मधुर और यौवनमयी युवती से इतना स्पष्ट सुनकर खेद हुआ। तभी आहत स्वर में उसने कहा—'क्या कहती हो, जेबुन! मुझसे ही कहती हो।'

'हां, तुमने भी यही समझा, भाभी! मानो तड़ित बनकर जेबुन्निसा ने फिर कह दिया।

लेकिन रानी ने एकाएक रोषपूर्ण होकर कहा—'झूठ! तुमने नहीं समझा—नहीं सुन पायी, मेरी बात!'—उसने नजीर मुहम्मद की ओर देख कर कहा—'बताओ, कल को लोग सुनेंगे और

हम-सब पर तानेकशी करेंगे, तो क्या होगा...क्या कहा जायगा, ऐसे।

नजीर मुहम्मद गंभीर था, उसका सिर भी झुका हुआ था। जेबुन्निसा ने अपने आँखों को पोंछ लिया। उसने वहाँ से उठकर धीरे-धीरे अपने पैर बढ़ाते हुए वह दफ्तर का कमरा छोड़ दिया। तभी रानी ने चाहा कि उसे रोके, किंतु उसने नहीं रोका,—नहीं। मानो उसे यही कहना था और करना था। यही उसे सत्य और शिव दिखाई दिया था।

चौदहवाँ अध्याय

रानी को जैसी संभावना थी, उसके अनुरूप ही, उसने देखा कि जेबुन्निसा ने मजदूर-बच्चों को पढ़ाने का काम छोड़ दिया। वह न रानी से मिलने आई और न महेन्द्र के पास ही उसका आना हुआ। कुछ दिन तक रानी ने इसे उचित समझा। किंतु बाद में उसे यह अभाव अच्छा नहीं लगा। जेबुन्निसा का हँसोड़ और चंचल स्वभाव उसे याद आने लगा। जब जेबुन उसके पास आकर बैठती और उसे 'भाभी' शब्द से संबोधित करके नाना प्रकार की बातें करती, विनोद से खेलती, तो उस सुन्दर और भोली युवती को देख, रानी में एक अपूर्व भाव का सामंजस्य उपस्थित होता था। अब विनोद भी बार-बार उसके विषय में पूछता। महेन्द्र अधिक समय अपने कार्य में ही देता। जब से उसके पिता लौट कर गये और उसने नजीर द्वारा यह सुना कि रानी ने जेबुन्निसा को बहुत कुछ कहा, तो वह घर पर कम आता, अपने दफ्तर में ही बैठा रहता। मजदूर-संघ के जिस अखबार का उसने संपादन-कार्य आरंभ किया, तो उसमें दिये हुए संपादकीय लेख भी अपेक्षाकृत जोशीले और एक नयी विचारधारा को व्यक्त करने वाले होते। उन लेखों में जीवन के प्रति विरक्ति नहीं थी। मजदूरवाद तथा पूँजीवाद के बीच जिस पथरीली दीवार की ओर वह संकेत करता था, तो उस पर भी एक बड़ा प्रहार करने का उन लेखों में प्रयत्न किया जाता।

उन लेखों को पढ़ कर अभयबाबू सोचते और उन्होंने रानी से कहा कि दिखता है महेन्द्र बाबू ने जेल जाने का विचार कर

लिया है। आज कल, जिस प्रकार के लेख लिखे जा रहे हैं, उनसे जेल जाने का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

रानी इस प्रकार की बात सुनती और मौन रह जाती। वे लेख उसने भी पढ़े थे। जिस शंका को उसके पति ने व्यक्त किया, उसके प्रति, पहिले ही, रानी का विचार बन गया था। किंतु उसने किसी से व्यक्त नहीं किया था। जब पति ने वही बात उसके सामने रखी, तो फिर, उसके अंदर का वह दबा हुआ मनःस्ताप प्रस्फुटित हो आया। मानों वह उसके कलेजे से उछल कर आँखों के द्वार तक भी आ गया। दरअसल, उस भाव ने रानी को उद्विग्न बना दिया। उसके अंदर जो एक चोर छिपा हुआ था, वह बोलने के लिए प्रस्तुत हो गया।

बात यह थी, जब से महेन्द्र के पिता आये और रानी से अपनी विवशता तथा घर की व्यवस्था का वर्णन कर गये, तो, तभी से, स्वतः रानी में भी यह अनुराग पैदा हुआ कि वह अपने पितृ-कुल की रक्षा के लिये अवश्य ही, महेन्द्र भैया को घर के काम-काज का व्यक्ति बनने दे—उसे ऐसा करने के लिये कहे। क्योंकि स्वयं उसकी माँ के तो कोई पुत्र हुआ नहीं, बस, चाचा का लड़का यही—महेन्द्र था, उसी के ऊपर परिवार की प्रतिष्ठा और भविष्य की आशाओं का समूह केन्द्रित था। इसलिये उसने जेठुजिसा से भी कहा और महेन्द्र से कब, किस रूप में कहे, ऐसा निश्चय तो उसने अभी तक नहीं किया था, परंतु कहना तो अवश्य था। किंतु कदाचित् महेन्द्र से कहने के लिये उसमें साहस भी नहीं। था, कहने को वह उसकी जीजी थी,—बड़ी बहिन, परंतु, महेन्द्र का पूर्णरूप से सम्मान करना ही, उसे पसंद था। भैया अधिक योग्य है, ऐसा विचार भी उसके मन में सन्निहित था।

लेकिन उसकी यह भी कैसी विवशता थी कि जिस जेबुन्निसा को फटकार दिया...उसे एक छोटा-सा भाषण देकर लज्जित कर दिया, अब उसी का ध्यान आते भी रानी को अच्छा नहीं लगता। वह सोचती, भैया महेन्द्र को पता लगा होगा, तो जरूर उसे अच्छा नहीं लगा होगा। इसी से उसका, एकाएक महेन्द्र के सामने जाने का साहस भी नहीं हुआ। वह घर में आता, तो जग्गू नौकर ही, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता। और अब लिखने लगा है कटु और प्रहारात्मक लेख की जिसका परिणाम यह हो सकता था कि वह जेल जाये उस से दूर हो जाये, वर्ष, दो वर्ष के लिए बंद हो जाये।

निदान भाभी सोचती, ऐसा क्यों लिखता है भैया ? क्या मेरी बात पर ? अथवा पिताजी की बात पर ? 'वह, कहती,—जरूर भैया ने हम-सब से दूर होने के लिए ही ऐसा किया है। शायद प्रायश्चित करना चाहता है। जेबुन से भी अलग होना चाहता है। शायद जीवन का कठोर और भीषण संकल्प उसके मन में उतर आया है।'

दोपहर के समय रानी घर में उदास बैठी हुई इन्हीं विचारों में उलझी थी। वह ऐसी लग रही थी कि जैसे उसका कुछ छिन गया था,—उसका कोई आत्मीय उससे दूर होता जा रहा था। पल-पल पर महेन्द्र के पकड़े जाने की आशंका थी। किस समय कैसी खबर मिले, रानी के इसी अशांत प्रतीक्षा की भावना पैदा हो गयी थी। बाहर ऐसी चर्चाएँ भी चल पड़ी थीं। जिस दिन रानी के मन की ऐसी अवस्था थी, उस दिन निश्चय ही, किसी न किसी घटना के होने की पूर्ण आशंका थी।

कि एकाएक उसने देखा, दौड़ता और हाँफता हुआ दफ्तर का चपरासी आया। वह रानी को देखते ही बोला—महेन्द्र बाबू

पकड़ लिए। पुलिस ने उनकी तलाशी ली और उन्हें ले गयी। वह अखबार की छपी हुई प्रतियाँ भी उठा ले गयी।

रानी ने बात सुन ली। वह उसके पेट में भी उतर गयी। आश्चर्य कि उसने उत्तर में अथवा अपनी ओर से ही, एक भी बात नहीं कही।

चपरासी लड़के ने कहा—'महेन्द्र बाबू हँस रहे थे और पुलिस से कह रहे थे-'मैं आपकी प्रतीक्षा में था—'

उसी समय रानी ने एकाएक उत्तेजित होकर कहा—'और विनोद के बाबू—'

लड़के ने बताया—'वह दफ्तर में हैं। आपको खबर देने उन्हीं ने भेजा है।'

रानी ने कहा—'और—'उसने लड़के से कहा- हाँ, तुम जाओ।'

लड़का चला गया। उसी समय, लड़के के सामने रानी को यह ध्यान आया कि वह लड़के से पूछे कि जेबुन्निसा को भी पता चला। किंतु उस समय सचमुच ही, उसे वह विषय बिल्कुल ही अटपटा और हीन दिखाई दिया। हालांकि, वह महेन्द्र को जेल जाता हुआ देखने के लिए उत्सुक नहीं थी...वह तो उसे घर लौटा देने की ही बात सोच रही थी। पर वह क्या करे। कैसे करे। उसने तो अपने आप ही जैसे जेल जाने का रास्ता प्रशस्त कर दिया। वह कह रही थी—'भैया पूँजीवाद को मार कर उसकी चिता की राख से मजदूरों का महल खड़ा करना चाहते हैं...सच, जैसे अनजान हैं, भैया।'

उसी समय, जग्गू को बुलाया। कहा-'मैं बाहर जा रही हूँ। विनोद सो रहा है।'—फिर कहा उसने-'जग्गू महेन्द्र भैया को

पुलिस ले गयी,–पकड़े गये, वह ! यह कहना था कि बरबस, जैसे अनजान में, रानी के मन के अन्दर जो एकाएक हाहाकार पैदा हुआ, मानो वह मचल गया और फूट कर उसकी आँखों के द्वार पर आ लगा। जग्गू से बोलते हुये उसका स्वर अवरुद्ध हो गया। 'गले की नसें फूल गयीं और आँखों से अश्रु-जल का स्रोत फूट कर गालों पर बह आया। किंतु उसने जग्गू पर अपनी अवस्था को प्रदर्शित नहीं किया। जल्दी से कमरे में जाकर उसने फूट-फूट कर रोना आरम्भ कर दिया। उसके सुबकने और रोने की आवाज जब बाहर बैठे हुए जग्गू के कान में पहुंची, तो वह चौंक गया। तुरन्त अन्दर आया और रानी के समीप खड़ा होकर बोला—'बीबीजी—'

सुनते ही, रानी ने अपनी रोती हुई लाल-लाल आँखें उसकी ओर उठा दीं–'अरे मैं चाचा जी को कैसे मुँह दिखाऊँगी, जग्गू। चाची सुनेगी, तो रोयेगी। वह–'

उसी समय बाहर जेबुन्निसाँ का स्वर सुन पड़ा, तदनन्तर ही उसने अव्यवस्थित रूप में, कमरे के द्वार पर चंचल स्वर में कहा–'भाभी, महेन्द्र बाबू–'

रानी ने बलात, अपनी उन्हीं रोती हुई आँखों से जेबुन्निसाँ की ओर देखा। उसने जेबून को पकड़ कर कहा—'महेन्द्र भैया ने मेरे मुँह पर तमाचा मार दिया...वह जेल क्या गया, चाचा और चाची के सामने मुझे शर्मिन्दा कर गया।'—वह बोली–'जेबुन्निसा, जानती है तू, मैंने अपने इस भैया के लिए न सिर्फ तुम्हें ही शर्मिन्दा किया, बल्कि ईश्वर साक्षी है, मैंने यही चाहा कि वह विचलित न हो...मनुष्य हो, राक्षस या पशु न हो।'

जेबुन्निसा बैठ गयी। हाथ की हथेली पर ठोढ़ी रख ली। वह

मौन बनी रही। रानी ने पूछा—'तुमने कैसे सुना ? अभी सुना ?

जेबुन्निसा ने साँस भर कर कहा—नजीर मुहम्मद ने बताया। वह अभी अभी आया और कह गया।

'यहाँ नहीं आये नजीर मुहम्मद।'

'वे सब थाने गए हैं। महेन्द्र बाबू को जमानत पर छुड़ाना चाहते हैं।'

रानी ने खड़े होकर कहा—चलो हम भी चलें। चलोगी ?

जेबुन्निसा ने रानी की ओर देखकर कहा—'हां, चलूँगी—चलो।

किंतु जब वह दोनों थाने पहुँची, तो पता चला, पुलिस महेंद्र बाबू को जेल ले गयी है। वह भी वहीं चलीं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पुलिस के पहरे में महेन्द्र बाबू बैठे हुये हैं। अभय बाबू उन्हें समझा रहे हैं और कह रहे हैं कि जमानत पर छूट जाना अच्छा है। मुकदमा भी अच्छी प्रकार लड़ा जा सकता है। किंतु महेन्द्र इसे स्वीकार नहीं कर रहा था। लेकिन जब जेबुन्निसा और रानी को वहाँ देखा, तो तभी, अभय बाबू ने उन दोनों की ओर देखकर कहा—'लो, तुम आई हो, समझाओ इन्हें। कहते हैं मैं जमानत पर नहीं छूटूँगा। मुकदमा भी नहीं लड़ूँगा।'

रानी ने एक बार महेन्द्र की ओर देखा और सिर झुका लिया। उसने मत नहीं दिया। उसके मन का उद्वेग जैसे आँखों में छलछला आया।

अभय बाबू ने रानी से कहा—'बोलो, कहो कुछ इन्हें समझाओ।'

रानी ने उनकी ओर देखा और आशा के विपरीत कठोर और संयत स्वर में कहा—'भैया ठीक कहते हैं।'

'खाक ठीक कहते हैं !—पागल ।' उन्होंने फिर जेबुन्निसा की ओर देखा और कहा—'तुम्हीं समझाओ,—कुछ कहो ।'

उत्तर में जेबुन्निसा ने बरबस ही, अपना झुका हुआ मुँह ऊपर उठाया। उसकी आंखें भरी थीं, उन्हीं को अभयबाबू और महेन्द्र की ओर फेरकर बहा दिया। उसने अपना मत नहीं दिया,—कदाचित् उससे नहीं दिया गया।

पन्द्रहवाँ अध्याय

महेन्द्र पर मुकदमा चला और चूँकि उस पर जो आरोप लगाया गया, वह स्वतः ही स्वीकार कर लिया, इसलिए पहिले दिन ही उसे दो वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया। अदालत के कमरे से निकल कर जब महेन्द्र जेल जाने लगा, तो वह रानी, जेबुन्निसा, अभय बाबू, नजीर मुहम्मद आदि प्रभृतियों के द्वारा लाई गई फूल-मालाओं को पहन कर मुस्करा दिया। उसने अपने भांजे विनोद को गोद में उठा लिया और उसका मुँह चूम लिया। उसी समय विनोद ने कहा—'मामा, तुम जा रहे हो, मैं भी जाऊँगा,—तुम्हारे साथ।'

सुनकर महेन्द्र हँस दिया। उसी समय उसने देखा कि सबकी तरह जेबुन्निसा भी फूलों की माला लाई है, लेकिन वह अभी तक उसके गले में नहीं डाल सकी है। जैसे वह भूल गयी...अपने-आप में खो गई है।

विनोद को गोद से उतार कर महेन्द्र उस ओर गया। जेबुन्निसा के पास जाकर बोला—'अच्छा, सलाम जेबुन्निसा। फिर मिलेंगे।'

जेबुन्निसा ने अपनी आँखों को उठाया और जाने कैसे मन के साथ महेन्द्र की ओर देखकर विह्वल स्वर में कहा—'मैं याद करूँगी।...तुम्हारी इन्तजार करूँगी, महेन्द्र बाबू! 'और उसने अपना हाथ उठा कर फूल माला को महेन्द्र के गले में डाल दिया।

महेन्द्र ने कहा—'याद करना,—इंतजार न करना, जेबुन्निसा! तुम कोमल हो, अधीर न बनना,—वह बोला—'विश्वास

करो, यह महेन्द्र तुम्हें जेल में भी नहीं भूलेगा। तुम्हारी मधुर स्मृति को साथ लिये, यह अपने दो वर्षों को दो महीने समझ कर काट देगा। तुम विवाह कर लेना। जीवन में उठी हुई भावनाओं को छोड़ना तो मत, परंतु उनसे खेल मत जाना... उनके हाथों में मत पड़ जाना, जेबुन्निसा। तुम परतंत्र हो अपने समाज से बंधी हो...अपने माता-पिता की इच्छाओं को मानना।'

उसी समय सिपाही ने चलने का संकेत किया।

महेन्द्र चलने लगा। उसने कहा—अच्छा, सलाम! खुदा तुम्हारी मदद करेगा, जेबुन्निसा!'

जेबुन्निसा ने कहा—साथियों के समान मुझे खुदा पर भी भरोसा है।

रानी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'भैया, स्वास्थ्य पर ध्यान रखना। पत्र देते रहना।'

और हँसता हुआ जब महेन्द्र चलने लगा तब रानी से कहा—'जीजी, जेबुन्निसा का ध्यान रखना। इसे समझाना। जेबुन के मन में कुछ है,—भावनाओं का द्वंद्व है—उसे भुलाने का भी प्रयत्न करना।'

यह सुन रानी ने एकाएक कहा—'जो सत्य है, शिव है, उसमें क्या, कोई भी इस जेबुन्निसा से नहीं छीन पायगा, भैया।'

महेन्द्र ने इसका उत्तर नहीं दिया। वह सब को हाथ जोड़ कर चला गया। मोटर तैयार थी, वह उसमें जाकर बैठ गया। क्षण भर में अदृश्य हो गया। जब वह चला गया, तो अपने आप में डूबी हुई और खोई हुई जेबुन्निसा के पास जाकर रानी ने कहा—'आओ जेबुन्निसा, अब चलें। घर चलें।'

सुनकर जेबुन्निसा चौंक गयी। मानो वह सहम भी गयी। उन्हीं आँखों से जब उसने रानी की ओर देखा, तो बलात रानी ने मुसकरा दिया—'सच, तू बड़ी भावनामयी है, जेबुन्निसा बड़ी प्रेममयी!'

सबके साथ आकर जेबुन्निसा ने घर पर रानी के पास बैठते हुए कहा—'भाभी, मैं कल से स्कूल आऊँगी—रोज हाजरी दूँगी।

रानी ने कह दिया—'अच्छा'

जेबुन्निसा ने फिर कहा—'मैं अब अपना सभी वक्त इसी काम में दूँगी भाभी!'

रानी ने उसकी ओर देख कर कहा—'अच्छा, अच्छा!

अब घर जाऊँगी। अम्मी इंतजार में होगी। खाना लिये बैठी होगी।'—जेबुन्निसा बोली—'जब मैं खा लेती हूँ, तो अम्मी खाती है। वह मेरे लिये जाने कितने दुःख उठाती है, भाभी! अम्मी मेरी सभी बातें मानती है।'

रानी ने इसका जवाब न देकर जेबुन्निसा की ओर देखा, बड़े स्नेह और ममता के साथ उसे लक्ष किया।

जेबुन्निसा ने कहा—'और भाभी, एक तुम हो,—जैसे मेरी सगी बहिन;—मेरी बड़ी जीजी,—तुम्हारे पास बैठ कर भी मेरा मन लगता है। तुम कुछ कहती हो, तो भी अच्छा लगता है,—सच, भाभी!'

रानी ने इतना सुना और मुसकरा दिया।

उसी समय अभय बाबू ने वहां आकर कहा—'क्यों जेबुन, तुम्हें संपादक बना दें, अखबार का। महेन्द्र बाबू तो गये, उनकी जगह तुम्हीं काम करो, तो कैसा है। तुम लिखती भी हो इस काम से रूचि भी रखती हो, कल तक मुझे बताना कि तुम्हारा

इस विषय में क्या मत है ? अपने वालिद साहब से भी पूछना,-- जरूर !'

रानी ने कहा--'हां, उनसे जरूर !'

अभय बाबू ने कहा--'यह काम जिम्मेदारी और खतरे का है !' वे बोले 'महेन्द्र बाबू के मस्तिष्क ने जरा ही करवट ली कि दो वर्ष का जेलखाना मिल गया !'

जेबुन्निसा ने कहा--मैं आपको कल बता दूँगी । वैसे आप यकीन रखें कि मैं काम अवश्य करूँगी ।'

रानी ने मुसकराकर कहा--'एडीटर जेबुन्निसा ।' वह बोली -- 'किसी अखबार का एडीटर बनना भी, जनता का नेता बनना है । देखा न, महेन्द्र भैया को देखने के लिये अदालत में जनता इतनी गयी कि जज के कमरे में पैर रखने को स्थान नहीं था। भैया फूल-मालाओं से लद गया था ।'

अभयबाबू ने कहा—'निःसन्देह, सम्पादक नेता है,--जनता के विचारों का प्रचारक और जन्मदाता । वह ऐसा सेनापति है कि जो फौज के आगे चलता है और दुश्मन की गोली का निशाना पहिले उसकी छाती पर लगता है । सम्पादक जनता का मार्ग-दर्शक है...अन्धकार को प्रकाश देने वाला...

उसी समय अभय बाबू ने फिर कहा—'पत्र प्रसिद्धि पा चुका है । महेन्द्र बाबू ने आशा से अधिक पत्र को आगे बढ़ा दिया । दस हजार छपने लगा है ।'

रानी ने कहा—'किंतु अखबार हिंदी में है । जेबुन्निसा से कैसे काम चलेगा ?

अभयबाबू ने कहा—'उदय' उर्दू में भी निकलेगा । जेबुन कुछ हिंदी जानती है, सहायक भी मिल जायगा ।'—उन्होंने कहा—'पत्र

की भाषा अब अधिक कठोर नहीं होगी। जनता का पत्र है, इसलिये सरकार बन्द कर देने की बात न सोचे, इसलिए भाषा पर अधिक संयम से काम लिया जायगा।'

जेबुन्निसा ने कहा—'मैं आपकी सहायता अवश्य लूँगी। मैं हिंदी में ही लिखा करूँगी।'

सुनकर रानी ने कहा—'शाबाश।'

जेबुन्निसा ने कहा—'मदद तुमसे लूँगी, भाभी।'

उसी समय अभय बाबू ने बताया कि पत्र की आय आशा से अधिक बढ़ रही है। विज्ञापन भी आ रहे हैं। प्रतिमास कई हजार रुपये पत्र दे रहा है। महेन्द्रबाबू पचास रुपए मासिक पर काम करने लगे थे, लेकिन आजकल 'उदय' उन्हें डेढ़ सौ रुपया दे रहा है। इतना ही मुझे। विज्ञापन लाने और उसके प्रबन्ध का काम मैंने अपने ऊपर ले लिया है। नजीर मुहम्मद का भी सौ रुपया कर दिया गया है। वह बोले–'इस मास से यह निश्चय किया गया है कि मजदूर-पाठशालाओं में पढ़ाने वाले अध्यापक और अध्यापिका भी वेतन पायेंगे। पचास रुपया रानी को मिलेंगे अन्य को बीस। रानी को अब चार घंटे की जगह छः घंटे पाठशालाओं के लिए देना पड़ेंगे। अब पढ़ाने का काम नहीं होगा, निरीक्षण और प्रबन्ध ही करना पड़ेगा।'

उन्होंने जेबुन्निसा की ओर देखकर कहा—'इस समय पांच हजार रुपये मासिक की आय 'उदय' और सोसाइटी के कार्य से हो रही है। डेढ़ हजार का वेतन और दो हजार रुपये स्कूलों के लिये किताबें और मजदूरों के लिए सफाई आदि की वस्तुओं पर खर्च हो रहा है।' वे बोले–'सेठ रामनाथ से हमें इसी सप्ताह दस हजार रुपया मिला है। उन्होंने आगे भी देने का वचन दिया है। हमारे कोष में इस समय पचास हजार रुपया जमा है। सोसायटी,

पत्र और मजदूर-संघ की देख-रेख के लिए मैंने एक नयी और पांच व्यक्तियों की समिति बनाई है । सेठ रामनाथ उसके सभापति हैं ।'

यह सुनकर, एकाएक जेबुन्निसा ने उद्विग्न होकर कहा—'भाई साहब, आपने भी अमीरों का आश्रय लिया....उन्हीं का...'

अभयबाबू ने जल्दी से कहा–'हां, कहोगी कि हमने उनका आधिपत्य स्वीकार किया है,—क्यों न, जेबुन ! इसमें न्याय का पक्ष लिया गया है । यह ठीक है कि यह काम मैंने आरम्भ किया, परन्तु अब यह रुपया देने लगा और इसी अनुपात से हमारा काम भी बढ़ने लगा, तो ऐसी दशा में यह भी हो सकता है कि मैं बेई-मान बन जाऊँ और सभा के नाम पर सारा पैसा अपने पास रख लूँ । संघ का काम बन्द कर दूँ । इसलिए मैं भले ही संघ का मंत्री रहूँ, परंतु रुपया खर्च करने का अधिकार मुझ अकेले को ही न रहे, बैंक से रुपया मेरे और सेठ रामनाथ के हस्ताक्षरों से निकलेगा यद्यपि, उनकी यह इच्छा नहीं थी, परन्तु मेरे अनुरोध पर उन्होंने यह स्वीकार कर लिया है । हमारी प्रगति से प्रभावित होकर ही, उन्होंने मुझे स्वयं बुलाया और दस हजार रुपया दिया । वह निकट समय में ही हमें जमीन देंगे और बिल्डिंग बनाने के लिये रुपया । निश्चय ही, वह रुपया दो-तीन लाख से कम न होगा । सम्भवतः अधिक भी ।

आपने बहुत कुछ किया,...इतना ! हर्षित स्वर में जेबुन ने कहा ।

अभयबाबू ने हँस कर कहा—'तुमने तो इधर आना भी बन्द कर दिया । चलीं थीं पहाड़ खोदने और एक पत्थर भी नहीं तोड़ा गया । कल बताना तुम्हें डेढ़ सौ रुपया मिलेगा । महेन्द्र बाबू का वेतन भी जमा होता रहेगा । सेठ रामनाथ तथा अन्य व्यक्तियों की इच्छा है कि मैं पांच सौ रुपया लूँ, महेन्द्रबाबू को भी अधिक

दूँ, परंतु मुझे अभी यह स्वीकार नहीं,—हां, महेन्द्रबाबू का ढाई सौ के हिसाब से जमा किया जायेगा।'

जेबुन्निसा ने कहा—'मैं काम करूँगी। वेतन नहीं लूँगी। आप कहेंगे तो वह रुपया महेन्द्रबाबू के हिसाब में जमा करा दीजियेगा।

यह सुनकर अभय बाबू हँस दिये—मेरी बात का यह अर्थ नहीं कि हमने रुपया कमाने का एक ढंग निकाल लिया है।'–उन्होंने कहा—'महेन्द्र बाबू रुपये के चाहक नहीं...मुझे संदेह है कि वह जमा हुए रुपए को भी नहीं स्वीकार करेंगे। यह वेतन का रुपया जितना लोगों को दिया जा रहा है, वह इसलिए कि जब काम संघ में करें, तो भोजन कहां से खायेगा। भूखा व्यक्ति सेवा नहीं कर सकेगा। 'उदय' प्रत्येक भाषा में निकलेगा,—प्रांतवार और भाषा-वार। मेरा प्रोग्राम बड़ा है। जीवित रहा तो देखना संघ आदर्श-रूप में समाज का नेतृत्व करेगा। इसकी चहुँमुखी प्रगति होगी। समाज सुधार, धर्म और राजनीति भी इसके कार्य का क्षेत्र बनेंगे। मजदूर-समाज तभी ऊपर उठ सकेगा। समाज उदार बने, तो मज-दूर स्वतः ही ऊपर उठ सकेगा।'

एकाएक अधीर होकर जेबुन्निसा ने कहा—'जीवन आपका है,–सफल है।'

अभय बाबू ने कहा—'तुम भी आओ,–इस क्षेत्र में। रानी के साथ जुट जाओ। जीवन की जो और इच्छायें हैं, उन्हें प्रमुखता मत दो। उन्हें गौण बनाओ। तुम आगे बढ़ो, समाज आगे बढ़े, इस पुण्य को तुम इस सुन्दर, सलोने और अनुपम जीवन में जी भर कर पाओ, जेबुन्निसा! देखो तो, समाज हीन है, मानव पतित है। दम्भ, ठगी और बर्बरता हमारे जीवन का अभिशाप हो गयी है। आओ, हम-सब उससे लड़ें–उसे अपने जीवन में सीख लें। पीछे जो हमारी सन्तानें आयेंगी, उन्हें चलने के लिए मार्ग प्रशस्त कर दें।'

जेबुन्निसा ने देखा कि उस समय अभयबाबू के मुँह पर जितना तेज था, उतना, उसने पहिले नहीं देखा। उस समय रानी ने भी एकटक उसी ओर देखा। उसका हृदय अभिमान और एक अनुपम अनुभूति से भर गया। बरबस, उसने अपना सिर भी झुका लिया।

अभयबाबू ने कहा—'जेबुन्निसा, इस रानी को देखती हो, आयु इसकी अधिक नहीं, किंतु जिस चिंता में इसने अपने को लगाया, उसी ने, इसे असमय में ही बूढ़ी बना दिया है। रानी से मैंने जितनी प्रेरणा पाई है, लगता है कि इसी से मैंने जीवन पाया...' एक अनुपम और सुहावना जीवन-पथ !'

जेबुन्निसा ने उस समय श्रद्धा के साथ रानी की ओर देखा, किंतु रानी का सिर झुका था, इसलिए उसने भी उसी ओर देखते हुए अपना सिर झुका दिया और कहा—'भाभी मैंने जो कुछ देखा और पाया है, वह पहले नहीं पाया...नहीं देखा...सच, जैसे कुछ एक महान अद्भुत ही मैंने देख लिया...'

सोलहवाँ अध्याय

महेन्द्र के जेल जाने के बाद ही, अभयबाबू ने साथियों और सहायकों की सम्मति पाकर मजदूर-संघ का नाम बदल दिया और प्रजा-संघ रख दिया। जेल से महेन्द्र ने भी यही लिखा। फलस्वरूप, प्रजा-संघ में सभी विचारों का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया। जनता की सेवा करना उसका प्रधान उद्देश्य रखा गया। प्रजा-संघ में किसान की सेवा करना भी लक्ष बनाया गया। मजदूर अथवा किसान की आर्थिक स्थिति के स्तर को ऊँचा उठाने और उसे बौद्धिक-बल देने की चेष्टा में क्या किया जाय, यही जन-संघ का प्रधान उद्देश्य था। लेकिन अभयबाबू के कार्य-क्रम की रूपरेखा सिद्धांततः ठीक होते हुए भी व्यवहारिक नहीं थी। प्रजा-संघ में सहायकों का भी अभाव था। इसका एक कारण यह भी हुआ कि उन्हीं दिनों देश में सांप्रदायिक झगड़ों का सिलसिला चल पड़ा। उससे जन-समाज विचलित हो गया। सामाजिक व्यवस्था बिगड़ गयी। संतुलन नहीं रहा। देश का विभाजन हो गया। लाखों की संख्या में लोग उखड़ गए। यहां से वहां गए, वहाँ से यहाँ। फलस्वरूप, शिशु अवस्था में ही जन-संघ तिलमिला गया। उसका भविष्य अंधकार में जाने लगा। लोगों ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि यह प्रजा-संघ कुछ व्यक्तियों का एक स्वार्थ है,—रुपया अर्जित करने की एक दुकानदारी! निःसंदेह, ऐसी विचारधारा फैलाने के लिए कुछ-एक सरमायेदार और मिल-मालिकों का सहयोग भी प्राप्त था। प्रजा-संघ की बढ़ती हुई प्रगति को देखकर मिल-मालिकों और जमींदारों ने देश की उस आंतरिक दुर्व्य-

वस्था से काम लिया। उन्होंने संघ में वर्ग-भेद और जाति-भेद का जहरीला कीड़ा भी छोड़ दिया। फलस्वरूप, जो एक बँधा हुआ और संघटित कार्य चल रहा था, वह अव्यवस्थित हो गया। कितनी अजीब और दयनीय स्थिति थी वह कि राजनीति और सांप्रदायिकता का शिकार बना हुआ विशाल देश लुटेरों और भेड़ियों का क्षेत्र बन गया। मानव के सांस्कृतिक संबंध टूट गये। आर्थिक दासता ने देश को जंगली पशु और पाशविक बना दिया। धनिक निर्धन और गृहहीन बने। निर्धन बलवान और वैभव संपन्न बन गये। सदियों से साथ रहने वाले हिंदू और मुसलमान मानो नर-पशु हो गये, जन्मजन्मांतरों के दुश्मन! हाय! कैसा दृश्य था वह कि बहिनों की लाज गयी, माताओं का मातृत्व गया! संस्कृति बदल गयी, इतिहास बदल गया।

उसी अवसर में जेबुन्निसा के पिता पर भी इस बात के लिए जोर दिया गया कि वह अपनी पुत्री को प्रजा-संघ से हटा लें। उसे 'उदय' का संपादन करने से रोक दें। क्योंकि उन लोगों का मत था कि एक मुसलमान लड़की को संपादिका बनाने का अर्थ ही यह था कि अभयबाबू और उनके साथी किसी बड़े षड्यंत्र की पूर्ति करना चाहते हैं। वह जेबुन्निसा को हिंदू भी बनाना चाहते हैं!

लेकिन जेबुन्निसा के पिता उन व्यक्तियों में से नहीं थे कि दुनिया को और अपनी पुत्री को दूसरों की आँखों से देखते। वह एक पुराने खानदान के व्यक्ति थे। शीक्षित थे। पुराने नवाब खानदान के अवशेष थे। निदान, जब लोगों ने कहा, तो उन्होंने टाल दिया। किंतु एक प्रश्न उनके भी पास था और वह यह कि जेबुन्निसा अपने विवाह की बात को जिस प्रकार बराबर टाल रही है, तो क्यों? इसका कारण उनकी भी समझ में नहीं आ रहा था। यही उनकी चिंता का विषय था। धीरे-धीरे यह विचार पनप

रहा था कि वह जल्दी ही इस बात का निर्णय करें और जेबुन्निसा से साफतौर पर कह दें कि अब वह नहीं रुकेंगे, उसे अब विवाह करना पड़ेगा। किंतु उस पुरुष में, जाने वह दुर्बल भावना कैसे प्रविष्ट हुई कि जब-जब उन्होंने अपनी पुत्री से कुछ कहने का निश्चय किया, तो तभी, मानो यह कहना उनकी आत्मा और अपनी संतान के अनुकूल नहीं था। निदान, उनसे नहीं कहा जाता था। जेबुन्निसा की ओर देख, उनके विचारों का, किला ढह जाता। पुत्री का वह भोला, सलोना मुँह देख कर ही, उनकी छाती के नीचे भरा ममता का दरिया उछालें मारने लगता।

प्रजा-संघ में उस साम्प्रदायिकता की आँधी को आता हुआ देख कर अभयबाबू के सामने एक विषम परिस्थिति आ गयी थी। उन्होंने अब तक जिस विषैले वातावरण की कल्पना नहीं की, वही, उमरूर में उपस्थित था। मजदूर ही, मजदूर को मारता! किसान, किसान को! व्यक्ति, व्यक्ति को! जो व्यक्ति दिन भर पास-पास बैठ कर काम करते, जीवन की समस्या को एक-दूसरे से संबंधित होकर सुलझाते, वही जब मिल से बाहर होकर अपने-अपने संप्रदाय में जा मिलते, तो पीछे छूट आये संबंध को भूल जाते। वह अपने से पृथक जाति और मजहब के व्यक्ति के दुश्मन बन जाते और उसका अंत कर देना चाहते!

यह देख कर, सचमुच में, अभयबाबू का उत्साह गिर गया। उन्हें लगा कि वह जिस मानव को उठाना चाहते हैं और उसके जीवन का स्तर ऊँचा करना चाहते हैं, वह स्वयं ही, अपने-आप में पतित है...हीन है और कायर है! उसका मानसिक धरातल गिर चुका है। अब तक उस व्यक्ति-समूह को सरमायेदारों ने ही नष्ट किया, अब साम्प्रदायवादियों ने भी अपना असर डाल दिया। उन्हें दीखा कि यह संप्रदाय, यह

सरमायेदारी, दुनिया में कुछ व्यक्तियों की ऐसी दो शृंखलायें हैं कि जब तक इन दोनों को काट नहीं दिया जाता, तब तक व्यक्ति, –व्यक्ति-समाज–से शांति और सुख का अनुभव नहीं कर सकता। क्योंकि उन्होंने देखा कि सृष्टि के आदि से जितने भी साम्राज्यवाद विजयी हुए हैं उनकी एक ही नीति रही कि धर्म का झंडा दिखाओ और शक्ति संचय कर, उस झंडे के पीछे लटकती हुई तलवार से विपक्षी का सिर उड़ा दो। ऐसी विजयों में धर्म और मजहब को ढाल बनाया गया है। हालांकि, वे धर्म का झंडा उठाने वाले लोग किसी एक दिन भी धर्म और जाति के पोषक नहीं रहे। वे 'जीयो और जीने दो' वाले उस परम आदर्श की आड़ में दम्भी और क्रूर बने रहे! शासक और शासन की कठोर प्रवृत्ति के पोषक बनकर वे संसार की आँखों पर पट्टी बाँधने का भी असफल प्रयत्न करते रहे!...वे साम्राज्य...निकम्मे और बुजदिल। वे अपनी जाति और अपने धर्मावलम्बियों का भी भला नहीं कर सके। उन्हें भी ठगते और मूर्ख बनाते रहे। निदान, अभयबाबू को यह साफ दिखाई दिया कि पूँजीवाद का यह भी एक शस्त्र है–अचूक! कठोर! उनके द्वारा समाज को कभी भी जाति और धर्म का जहर पिलाकर पागल बनाया जा सकता है और उसका नग्न-ताण्डव दृष्टि के सामने लाया जा सकता है!

यह देख कर, सचमुच ही, अभयबाबू की आत्मा में एक बड़ा कोलाहल उठ आया। रोष से मन तड़प गया। मनमें बार-बार आता कि हाय! मुट्ठी भर पूँजीवादी और सांप्रदायवादियों ने देश का नाश कर दिया! पैसा, रोटी के लिए लोगों को लड़ा दिया। देखने में वह सांप्रदायिक और मजहबी युद्ध था, परंतु वह तो नितांत आर्थिक युद्ध लड़ा गया था। कुछ लोगों ने दुनिया को दास बना दिया,—तन से और मन से हीन कर दिया! अभयबाबू ने अनु-

भव किया कि जब-जब जनता ने इस पाषाण को भेदने का प्रयत्न किया और इसके विरुद्ध जन-जन और कोटि-कोटि मानवों ने क्रांति-दूत बनकर एक अपूर्व वाणी को प्रचारित किया, तो तभी-तब, सरमायेदारों ने मजहब और संप्रदायवाद की दुहाई देकर उस संगठित गिरोह को तोड़ दिया, उन्होंने उसे विनष्ट करने का सफल प्रयत्न किया...

लेकिन इस रोग का निदान क्या ? इसका उपचार क्या कि विनष्ट होने से बचा रहे, मानव । ऐसे रहेगा तो विश्व संगठित नहीं रहेगा । मातृत्व मिट जायगा । विश्व युद्ध-क्षेत्र ही बना रहेगा । अनुभूतिपूर्ण, भगवान का उपासक मानव जानवर रहेगा । जिन हाथों से धर्म और उसकी व्यवस्था का निर्माण किया, उन्हीं हाथों से उसे तोड़ा जायगा । क्योंकि अभयबाबू देखते कि जिस धर्म की समाज में पूजा की जाती है, उसे कोई स्वीकार नहीं करता । जिस सरमायेदारी के द्वारा उसका परिष्कार किया गया है, समाज उसे नहीं मानता । पूँजीवाद केवल दिखावा करता है, ढोंग करता है ! मध्यम और निम्न-वर्ग को चूस कर, उसे ठग कर, वह जिस पाप-पुण्य की पथरीली दीवार का निर्माण करता है, ईश्वर को नाना रूपों में सजाता है,—मन्दिर, मसजिद और गिरजे बनवाता है,—सचाई यह है कि इस प्रकार वह अपने मन की दुर्बल भावनाओं का पोषण करता है और रुपये के द्वारा अपनी उस भूख को शांत करने का असफल प्रयत्न करता है। वह देखते कि जो व्यक्ति मन्दिर, मस्जिद अथवा गिरजे में जाकर भगवान का अभिवादन करता है, तो उस ईश्वर की पूजा करने का अर्थ ही यह है कि मानव, मानव का कष्ट भी देखता जाये । किंतु इसके विपरीत होता यह है कि भगवान की प्रतिमा से दूर होते ही, वह

साधक, धन प्राप्ति की कल्पना करता है। जिसका अर्थ होता है, मानव को चूसने, ठगने और उसका सर्वस्व छीन लेने की कल्पना करना! ऐसे अवसर पर वह व्यक्ति, भगवान की वाणी को भूल जाता है...उसका स्वार्थ बोलता है और उसी अमर्यादित धारणा को पाने का प्रयत्न करने लगता है। अभयबाबू सोचते कि समस्या उसकी भी है। जिन व्यक्तियों को वह लूटता है, उनसे मुक्त रहने की चिंता वह भी करता है। कदाचित इसीसे, उसने धर्म का आश्रय लिया, उसका परिष्कार किया। पैसा देकर अपने अनुरूप उसने मानव के संस्कारों का नियोजन कराया! धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य की मीमांसा के ऊपर उसने मोटे-मोटे ग्रंथों का आविष्कार किया। किंतु हाय! आखिर मानव, मानव था! भूख उसे भी थी! चोट उसके हृदय पर भी लगती थी। निदान, उसने खून, चोरी और डाकों का सिलसिला आरंभ कर दिया। सरमायेदारी की दृष्टि में वह मानव असंस्कृत, अदूरदर्शी और अविवेकी बन गया...समाज का गुण्डा! जिस व्यक्ति को चूसा गया और भूखा मारा गया वह जब मांगने पर कुछ नहीं पा सका और पशु-पक्षी की हत्या करने पर उतारू होगया तो वह पतित समझा जाने लगा। निदान, पुलिस, फौज, जेल और अदालतों का निर्माण किया गया। धर्म और समाज का नियमन फेल हो गया, तो वह कार्य 'राजा' के हाथों सौंप दिया गया,—सरमायेदारी के एजेंट राजा ने शस्त्र-बल और सैन्यबल का आश्रय लिया!...हाँ, मानव फाँसी पर चढ़ाया जाने लगा। लंबी सजा देकर वह जेलों में ठूँसा जाने लगा!

बेचारा दीन और हीन मानव!

इस प्रकार देश का और विशेषतः अपने नगर का वातावरण विक्षुब्ध देखकर अभयबाबू के मन में अनेक प्रकार के विचारों

का तांता लगा रहता। प्रजा-संघ में प्रमुख कार्यकर्ता होने के कारण अब उनका नगर में काफी सम्मान था। वे जब किसी सभा में जाकर बोलते, तो वहाँ का समाज उनकी वाणी के एक-एक शब्द को किसी भी वेद-वाक्य की तरह सुनता था।

एक दिन शहर में अधिक झगड़ा बढ़ा, तो अभयबाबू ने अपने कार्यालय में बैठे हुए नितांत खिन्न और उद्वेगपूर्ण अवस्था में साथियों की तरफ देखा। वहां रानी थी, जेबुन्निसा थी, नजीर मुहम्मद के अतिरिक्त नगर के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे हुए इसी विचार में लीन थे कि झगड़ा किस प्रकार शांत किया जाये। किंतु उसी समय, जब एक बाजार में आग लगने और दोनों पार्टियों में परस्पर टक्कर होने का समाचार एक आदमी ने वहाँ आकर दिया, तो सुनते ही, अभयबाबू ने खड़े होकर चीखते हुए कहा—'यह दोनों मर जायँगे,...गुलाम और निःशक्त बने रहेंगे, ये इस देश के लोग! 'उन्होंने चप्पल पहन ली और तेजी से बाहर की ओर चल पड़े।

पीछे से नजीर मुहम्मद ने पुकारा—भाई जी—

अभयबाबू ने नितांत रोषमय होकर कहा—'मैं उन भेड़ियों के पास जाऊँगा...उन्हें आदमी को खाने की भूख है, तो मैं अपने-आपको उनके मुँह में डाल दूँगा...'

किंतु नजीर मुहम्मद कुछ कहता, शायद न जाने की बात कहता कि तेजी से अभयबाबू ने दफ्तर छोड़ दिया। उन्होंने फिर किसी की ओर दृष्टि-लक्ष नहीं किया।

उसी समय नजीर मोहम्मद खड़ा हो गया और तेजी के स्वरसे बोला 'मैं भी जाऊँगा—अभीजाऊँगा!'
रानी ने खची कर कहा नजीर—

नजीर ने जाते-जाते कहा—भाभी—और वह चला गया।

अभी मुश्किल से पन्द्रह मिनट हुए थे कि दफ्तर में बैठे हुए सभी व्यक्तियों के पास समाचार आया—'अभयबाबू के चोट लग गयी...सिर फट गया...उन्हें जलते हुए मकान में फेंक दिया गया...

फिर—फिर—'मानो एकाएक ही रानी के अंतर में आगन्तुक से मौन भाव में चीखते हुए प्रश्न किया। वह खड़ी हो गयी और चल पड़ी। उसके पीछे जेबुन्निसा और अन्य व्यक्तियों ने भी अपने-आपको नहीं रोका।

रानी अपने आगे तेजी से जा रही थी। पीछे सब लोग। रास्ते में ही उन्हें समाचार मिला कि अभयबाबू घर पहुंचाये गये हैं...डाक्टर...

सभी ने घर जाकर देखा कि अपार जन-समूह दरवाजे के बाहर एकत्र था। अभयबाबू अंदर थे और डाक्टर उनकी चोट का उपचार कर रहा था। उस समय, बाहर जो अपार हानि हो रही थी, उस महानिशान का कोलाहल भी वहां तक आ रहा था।

अभयबाबू के जख्मी होने का समाचार बिजली की तरह शहर में फैल गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि जो समाज मिट रहा था, फूँक रहा था, उसमें जोश आ गया। मुर्दा दिलों ने भी अपने घरों को त्याग दिया और जो भी दूसरी जाति का विरोधी उन्हें मिलता वह मार दिया जाता, अथवा जलते हुए मकानों में जीवित ही फेंक दिया जाता! फलस्वरूप, शहर में हा हाकार मच गया। पुलिस और फौज के नियन्त्रण में भी वह पागल मानव नहीं आ रहा था!

बहुत देर बाद, जब अभयबाबू को होश आया, तो उन्होंने अपने पास बैठे हुए अनेक शहर के प्रतिष्ठित आगंतुकों को देख कर फिर नजीर मुहम्मद के पास बैठे हुए एक खाँ साहब और

जेबुन्निसा के पिता को लक्ष्य करके कहा—'अच्छा, होता, मैं मर जाता...मैं इस समाज के बीच से चला जाता...

वह फिर बोले—'सदियों पूर्व इस हिंदू-समाज के पुरखों ने जो पाप किया, वह आज भोगना पड़ा है! मुझे दिखता है कि वह पाप इस देश में आदि-युग से ही चला आया है।' कठिनाई से साँस खींचकर अभयबाबू ने क्षीण स्वर में कहा—'हिंदू-धर्म के मानने वालों ने अपने को सदा ही ऊँचा समझा और दूसरों को नीचा ...दुर्भाग्य से पैसा भी ऐसे ही व्यक्तियों के पास रहा! उन्होंने दूसरों को भी ठगा और अपनों का भी शोषण किया!' वह बोले—'जिन व्यक्तियों ने जीवन से निराश होकर दूसरे धर्म का आश्रय लिया—इस्लाम-धर्म अपनाया—आज उन्हीं के खून में मिली हुई प्रतिक्रिया की आग से हिंदू समाज जल रहा है...'

जेबुन्निसा के पिता ने कहा--आप को तकलीफ होती है, बोलिये नहीं।

'हाँ, मैं अकेला क्या बोलूँगा, खाँ साहब! अकेला चना कहाँ तक भाड़ फोड़ेगा! परंतु मैं इस मानव के लिए अपने को लुटा दूँगा! हिंदू-मुलमान का वर्ग-भेद मिटाने के लिए, मैं अपना जीवन दे दूँगा!'

'आपके इस प्रकार चोट लगी हमें दिली अफसोस है, अभ-बाबू! शहर भर को दुःख है!' जेबुन्निसा के पिता ने फिर कहा।

जेबुन्निसा उस समय अभयबाबू के सिरहाने खड़ी थी। वह सिर झुकाये हुई थी। रानी उससे कुछ फासले पर थी।

अभयबाबू ने कहा—'सरमायेदारी ने इंसान का सभी-कुछ ठग लिया...जानवर बना दिया, इंसान! 'अब देखता हूं, ईमान के साथ धर्म भी ले लिया,—विवेकहीन बना दिया, यह इंसान!'

सतरहवाँ अध्याय

निःसंदेह, उस समय लगता था कि शहर में मनुष्य नहीं बसते, भेड़िये अथवा अन्य हिंसक पशुओं ने आकर अपना बसेरा डाल लिया था। मनुष्य, मनुष्यता का किस प्रकार दुश्मन हो सकता है, वह किस प्रकार अपने ही हाथों सजाये हुए मानव की क्रूरता, हृदयहीनता और अमानुषिकता के साथ हत्या कर सकता है, उस समय इसी का आँखों से न देखने योग्य बीभत्स दृश्य देखने को मिल रहा था! मानव संशक था, भयभीत था! जीवन और मृत्यु की दलदल में पड़ा हुआ आतुर था,—जैसे दीन! जो धनवान थे, महल-दुमहले वाले थे, उनकी आँखों के सामने ही, सभी-कुछ जल रहा था...उनका परिवार गाजर-मूली की तरह काटा जा रहा था,—जलाया जा रहा था! निहत्थे और अबोध बालक तथा स्त्रियों को धर्म-भ्रष्ट किया जा रहा था! माताओं के सामने उनके बच्चों को नष्ट किया जा रहा था!

इस बर्बरता, क्रूरता और नृशंसता का शायद मानव के इतिहास में कोई और दूसरा उदाहरण नहीं था। सभ्यता के इस युग में, मनुष्य इतना अविवेकी और हृदयहीन बन गया,—ऐसा तो असभ्य जातियों के इतिहासों में भी नहीं देखा जाता। किंतु यह हो रहा था! मनुष्य, मनुष्यता के स्तर से उतर कर भयानक और विषम बन गया था!

यह क्यों था? किसलिए? क्या यह हिंदू-मुसलमानों के ही बीच का एक प्रश्न था कि जो उन्हें उस रूप में सुलझाना आवश्यक बन गया था? कदाचित, सत्यता और वस्तुस्थिति को

मानने वाला समाज इसे स्वीकार नहीं करेगा। उन दो जातियों के बीच में जो एक पथरीली चट्टान थी, उसी के गर्भ में यह षड्-यंत्र रचा जा रहा था। देश के ऊपर विदेशी सत्ता का शासन होने के कारण, उसी का एजेंट शतरंज के नये-मोहरे चला रहा था। अपने प्रभाव को स्थायित्व देने के लिये, उसने देश को कंगाल और भूखा तो बनाया ही, साथ ही, अब आपस में लड़ा-कर असंगठित और अव्यवस्थित भी बना देना चाहता था!

नहीं कहा जा सकता कि विश्व के रंग-मंच पर खेल खेलने वाले ये साम्राज्यवादी लोग, अपने स्वार्थ के लिए अपनी स्वेच्छा और अहमन्यता का पेट भरने के लिये शेष विश्व को गाजर-मूली से अधिक कभी समझ पायेंगे भी या नहीं! जो हो, यह निश्चय है, उनका स्वार्थ इसी प्रकार फलता है। उनके हाथों में जादू का डंडा है, उससे इसी प्रकार काम लिया जाता है!

देश में ऐसे नारकीय और दम्भपूर्ण कृत्य भले ही विदेशी सत्ता के इशारे पर संपादित हुए, परंतु विश्व के इतिहास में, मानव-जाति के चरित्र में, जब भी जातियों अथवा वर्गों का उल्लेख होगा, तो मुस्लिम और हिंदू जाति के इन काले कारनामों को नहीं दबाया जा सकेगा। एक दिन विश्व के रंग-मंच पर आकर विश्व की महान विभूति मोहम्मद साहब ने जहाँ इसलाम-धर्म का संगठन किया, वहाँ हिंदू धर्म में राम-कृष्ण और महात्मा बुद्ध ने मानव को परम और पवित्र बनाने का प्रयत्न किया। ऐसे ही पालित और पोषित महात्माओं द्वारा जन-समाज इतना विषैला बन गया, इतना क्रूर, यह सचमुच ही दुर्भाग्य का विषय रहा! सृजन ही संहारक बन गया! यह जहाँ हिन्दू इतिहास का कलंक रहा, इसलाम के उज्ज्वल इतिहास को भी खून और मानव की

लाशों से पाट दिया गया ! जिस हिन्दू-समाज ने मानवता का प्रचार किया, पुरुखों ने अहिंसा का उपदेश दिया, उसी की सन्तान जब स्वार्थ और दम्भ की उपासक बनी, तो उसी के अनुरूप इस्लाम भी अपने धार्मिक झण्डे की ओट में तलवार चलाते हुए मानव की दया, प्रेम और सहानुभूति को भूल गया। इसलाम ने भी एक ही लक्ष्य बना लिया—'खाओ, पीयो और मौज उड़ाओ।' इस धारणा को लेकर इस्लाम के पुजारियों ने हिन्दुओं के समान ही कैसे-कैसे कुकृत्य किये! कितने नरसंहार सम्पादित किये ! वह क्या इतिहास के पन्नों से मिट सकेगा ! साम्राज्यवादी इस्लाम भी सदा पैसा, शराब और स्त्री का भूखा बना ! तलवार के बल पर न सिर्फ साम्राज्य बना सका, अपितु अपना धर्म भी फैला सका। जिस प्रकार हिन्दू अपनी संस्कृति का पाठ भूल गये उसी प्रकार मुसलमान भी अपने महान नेता मुहम्मद साहब के उस गुरु-मन्त्र को भुला बैठा कि 'जीयो और जीने दो।' कर्बला की घाटी में प्यास से तड़पता हुआ, भूखा और पीड़ित वह महात्मा हुसैन क्या आज भी भुलाया जा सकता है ! वह समस्त विश्व के लिए पूजनीय है। अपने बलिदान से उसने वह उदाहरण रखा कि मानव का स्वत्व पाने के लिए किस प्रकार त्याग किया जा सकता है। यही कारण है कि आज सैंकड़ों वर्ष बीतने के बाद भी, महात्मा मुहम्मद, महात्मा हुसैन केवल इसलाम के ही नहीं, बल्कि विश्व की समस्त मानव-जाति के श्रद्धा भाजन दिखाई पड़ते हैं। उनके नाम पर विश्व का कोई भी व्यक्ति अपना सिर झुका सकता है। कृष्ण और राम के समान जरूर, उनकी आत्मा आज भी रोती होगी। गुरु गोविन्दसिंह के मासूम बच्चों तथा हकीकत बालक को जब इसलाम के अन्धे पुजारियों ने जीवित ही

दीवार में चिनवा दिया और तेल के खौलते हुये कड़ाहे में भुनवा दिया, तो तभी उन महात्माओं की आत्मा चीख उठी होगी ! उन्होंने जनता जनार्दन के लिये अपना जीवन दिया, अपना सर्वस्व दिया, उसी जनता के इस्लामी पुजारियों द्वारा बच्चों का जीवित आज भी आग में झोंकना, उनके पेट में छुरा भोंकना, स्त्रियों के साथ बलात्कार करना और उन्हें धर्म-भ्रष्ट करना देख कर जरूर. उन महात्माओं की आँखें, जहाँ भी वह होंगे, शर्म से झुक गयी होंगी ! उनकी आत्मा में वेदना होगी, तड़प और टीस भरी होगी !

सोचते अभयबाबू हाय ! हाय ! हिन्दू-समाज की विशालता, सहृदयता व्यर्थ गयी ! जिस जाति को विश्व का गुरु बनना था, जिसकी संस्कृति विश्व भर की माता बनने का अधिकार रखती थी, स्वयं उन हिन्दुओं ने ही, उसे भुला दिया । मा शक्ति का अस्तित्व एक दिन भी नहीं समझ पाया । वह कहते, इस संहार का उत्तरदायित्व हिन्दू पर है...हिन्दू का स्वार्थ इस झगड़े की पृष्ट भूमि में पड़ा हुआ सिसक रहा है...!

अभयबाबू के मन में यह बात भी थी कि विदेशी सत्ताने शतरंज के मोहरे चला कर दोनों जातियों को लड़ाया और पृथक कर दिया,–तो क्यों ? किस लिए ? वह सोचते कि क्या अंग्रेजों का मुसलमानों से कोई स्वार्थ था ? हिन्दू समाज से कोई बैर था ? अनेक वार इस विचार पर आकर ही, अभयबाबू ने निश्चय किया कि हो न हो, यह बात जरूर होगी कि अँग्रेज इसघर से जाकर भी मोह नहीं छोड़ सके । वह दोनों जातियों को उलझाये रखना चाहते हैं !

अभयबाबू को देख कर यह भी अचरज का विषय लगा कि मुसलमानों ने जिस मुसलिम राज्य की मांग की, तो उसके लिए

मुसलमान सरमायेदार, नवाब और जागीरदार मुक्तहस्त से पैसा खर्च कर रहे थे। देश भर के मुसलमान गुण्डे और मध्यम-वर्ग के लोग इस लालसा में अँधे बना दिये गये थे! जाति और धर्म के नाम पर जो नशा उन्हें पिलाया गया, वह काफी तेज था! किंतु हाय! वही वर्ग पीड़ित था! वह दूसरों को मारने के साथ, मर भी रहा था। उसका घर भी धांय-धांय करके जल रहा था! जो उच्च-वर्ग था, वह हाथ में डोर पकड़े हुए निश्चिन्त था। उसकी प्रगति में, जीवन-क्रम में, कोई अन्तर नहीं आया था। भले ही, आन्तरिक जीवन में वह धर्म और जाति को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं,—उसे यह स्वीकार्य भी नहीं—परन्तु उसी धर्म और जाति का नाम लेकर, वह अपने पुराने साम्राज्यवादियों की तरह, छल और प्रपंच का राग अलाप रहा था! वह धर्म तथा जाति का नशा पिला कर निम्न और मध्यम-वर्ग के मुसलमानों को मरवा रहा था,—मूर्ख और कायर उस सरमायेदारी वर्ग के साथ, हिन्दू-समाज का पुराना पाप भी जैसे फल-फूल कर फैल चुका था!

अभयबाबू अभी बिस्तर पर पड़े थे। दुर्बल थे। वह शहर में घटते हुए एक-एक समाचार को अपने पास आने वाले व्यक्तियों से सुन रहे थे। उन समाचारों को सुनकर, उनके मानस में कितना कोलाहल उठता,—कितना चीत्कार; सचमुच उससे उन्हें अपार कष्ट मिलता था!

एक दिन रानी ने अधिक व्यग्र बन कर कहा—'अब क्या होगा...कैसे! दिखता है, जीवन कठिन है...अब बचना दूभर है! इस मानव के प्राण क्या रहेंगे! ये सिसकेंगे और तड़पेंगे!' वह बोली—'सुना नहीं जाता, यह दृश्य देखा भी नहीं जाता कि किस प्रकार हिंसक बन गया है, यह मानव!'

अभयबाबू ने इतना सुना और रूखे दाँतों से मुसकरा दिया। मानो, उस समय पत्नी से जितना सुना, वह उनकी आत्मा को तड़पाने के लिए काफी था। बेचैनी की उसी अवस्था में उन्होंने रानी की ओर करवट ली और अपनी वाणी में नितांत पीड़ा का स्वर भर कर कहा—'रानी, आह! तुम इस रहस्य को नहीं समझ पायीं!'—वह बोले—'आखिर, आदमी भी जंगली है, एक जानवर है...यह सदा ही, समय-समय पर अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय देता रहा है। 'अधिकार' के नाम पर कुछ व्यक्तियों के द्वारा आज क्या, सदा से, मानव को मानव की कोटि से नीचे उतारा गया है और ठगा गया है...मनुष्य को मनुष्य से लड़ाया गया है! आखिर दो साम्राज्यों में युद्ध होते हैं तो उनका क्या अर्थ है! युद्ध-क्षेत्र में जिन अपरिमित सैनिकों को कटा दिया जाता है, उन बेचारों को क्या मिलता है! स्वार्थ राजा का होता है, मरना जन-साधारण को पड़ता है। कहा जाता है, जनता संपन्न होगी, महान होगी, वह विजयी बन कर संसार के लिये आदर्श सिद्ध होगी,—ऐसा एक शब्दों का जाल रच कर जनता को विवश किया जाता है। साम्राज्यवादी पथरीली दीवारों से सदा आदर्श और त्याग का उद्घोष किया जाता है...भूखा और नग्न मानव उसी ध्वनि को पाकर भेड़ बकरियों की तरह कट जाता है...'

उन्होंने कहा—'यही बात समाज और मजहब के दीवानों की है! स्वार्थ वहाँ भी ऊँचा है। राजा और सरमायेदारी के द्वारा वहाँ भी शतरंज के मोहरों को सजाया जाता है। दुर्भाग्य से हमारा देश देर से परतन्त्र रहा है। इस दासता को अक्षुण्ण रखने के लिये समय-समय पर इन झगड़ों का बीज बोया जाता है। चूँकि देश क्रांति के द्वार पर खड़ा है, मानव सजग और तेजपूर्ण बन कर अपना अधिकार माँग रहा है..स्वतन्त्र होने जा रहा है,

देश ! अभी-अभी सन् सत्तावन के विद्रोह की पुनरावृत्ति कर चुका है...शासक निरुत्तर और निस्तेज बन गया है,—हाय ! वह यह भी कर सकता था,—इतना हीन और जघन्य बना सकता था, हमको ! भला इसका क्या पता था। इस प्रकाश के नीचे यह भी होना था !

रानी ने साँस भर कर कहा—'लेकिन इसका उपचार क्या है।'

'वह होगा। अपने-आप होगा, रानी !' अभयबाबू ने कहा—'मैं इसको भी एक रोग मानता हूँ ! देश की काया का पाप मानता हूँ। यही है, मनुष्य की पाशविक-वृत्तियों का पतन !'—उन्होंने कहा—'देखती हो, आज सब डर रहे हैं। जनता मौत से काँप रही है ! मैं कहता हूँ, दुर्बल-जनता की इस हीनता को मिटाने के लिए ही यह सब-कुछ हुआ दीखता है। देश ने करवट ली है, तो गुलामी में पड़ा हुआ मानव कराह उठा है...काँप उठा है ! यह युद्ध आर्थिक और रोटी के प्रश्न को लेकर लड़ा जा रहा है। देश की आबादी बढ़ गयी है, आय घट गई है। लेकिन मैं कहता हूँ सूरज उदय हो रहा है,—सुप्रभात निकल रहा है। मानव का जो अँग सड़ रहा है, वह कट रहा है। स्वार्थपूर्ण विचारों का अंत हो रहा है...पूर्णाहुति का समय आ गया है।

रानी ने कहा—'मुझे संदेह है कि यह देश स्वतन्त्र होगा, एक समूह रहेगा, इस देश का !'

अभयबाबू ने यह सुना और नितांत मौन बन कर जैसे अपने-आप में ही डूबना चाहा। उनके माथे में बल पड़ गये। हाथ की मुट्ठियां बँध गयी और माथे की नसें उभर आईं।

रानी ने कहा—'इस देश का मानव छला जायगा...छिन्न-भिन्न कर दिया जायगा, यह मानव !'

उसी समय अभयबाबू ने नितांत दीन और कातर दृष्टि के साथ रानी की ओर देखा। एकाएक उन्होंने कहा तो कुछ नहीं, परन्तु जो कुछ भी उनके मन में था, वह बरबस ही, उनकी आँखों में उतर आया।

रानी कह रही थी—'यह समाज...यह देश...।'

'हाँ, रानी! यह देश टुकड़ों में बँट जायगा...बँधा हुआ समाज बिखर जायगा।'—अभयबाबू ने कहा—'आज जिस एक-इकाई पर टिका हुआ यह देश दिखाई देता है, आज से पूर्व भी, सचमुच ही, यह ऐसा नहीं रहा...यह अखंड नहीं रहा। हिंदू-समाज ने अपने जीवन में जो एक गुरुतर पाप एकबारगी अपने-आप प्रतिष्ठापित कर लिया, वह अब समाज के शरीर को सड़ा रहा है...वह पाप उदय हो रहा है, रानी! संसार की सभी जातियां भाग्यशाली हैं, किन्तु यह एक दुर्भाग हिन्दू-समाज का है कि इसका प्रत्येक व्यक्ति अकेला है—एक है,—वह एक बड़े समाज से सम्बन्धित होकर भी एकाकी बना हुआ है! हिन्दू विवश है, अशक्त है! धर्म, जाति-भेद और संस्कारों का कुप्रभाव उसे ऊँचा उठने से रोक रहा है। लेकिन जो अन्य जातियां हैं, और जो उनके मजहब हैं, वे उन्हें जीवन देते हैं, संगठित होने को प्रेरणा देते हैं। वे चिल्ला कर कहते हैं—'तुम अकेले नहीं! हम सब तुम्हारे साथ हैं,—तुम्हारे जीवन-साथी!'

एकाएक कुण्ठित होकर रानी ने कहा—'स्वार्थी वह भी हैं—अँधे और क्रूर हैं!'

'ओह! यह तो समूचे विश्व की एक समस्या है, रानी! आज की विषम बात है।'—अभयबाबू ने कहा—'लेकिन, मैं कहता हूं, वह अपने तईं सजग हैं। जब वह दूसरों के सामने जाते हैं, तो और

बनते हैं। स्वार्थ उनसे भी टकराते हैं। वैसे, जो पैसे वाले हैं, वह भी अपने भाइयों का खून चूसते हैं!'

'तब? हाँ—?'—एकाएक रानी ने फिर व्यग्रता के साथ पूछा।

अभयबाबू बोले—'मेरा मत है कि आर्थिक स्वतन्त्रता और आर्थिक दासता मजहब और जाति पर भी विजय पा सकती है। देश स्वतन्त्र हो, तो इन विचारों को भी दबाया जा सकता है। आज जो जातिय दूर-दूर हैं, उनमें वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किया जा सकता है, रानी!'—उसी समय अभयबाबू ने कठोर स्वर में कहा—'मेरा मत है कि ये मन्दिर, मसजिद और गिरजे गिरा दिये जायें। मजहब और धर्म का एक विशाल सूत्र इन्हीं स्थानों से चलता है। मनुष्य इन्हीं पथरीली दीवारों के अन्दर जाकर ठगा जाता है। ईश्वर क्या है, उसको पाने की विधि क्या है,—सचमुच आज का मानव अपने धर्म-स्थानों में जाकर यह जानना तो दूर; और अधिक छद्मवेशी बन जाता है! वहां पर मानव मूर्ख बनता है, हीन बनता है और अकर्मण्य दिखाई देता है! वह एकबारगी सब-कुछ ईश्वर पर छोड़ देता है। ईश्वर महान है,—भाग्य और जीवन उसी के आधीन है—यही एक मन्त्र वहां से लेकर यह मानव लौटता है!—कुछ ठहर कर उन्होंने फिर कहा—'लेकिन देखती हो, इस प्रकार नित-नित ही यह मानव ठगा गया है...आज भी ठगा जाता है...'

रानी ने कहा—'मनुष्य है, तो धर्म है। यह नहीं मिटेगा। इसकी आवश्यकता भी है। इस मानव-जीवन को जिस महान वस्तु की जरूरत है, उसे धर्म और ईश्वर की शरण में जाकर ही पाया जा सकेगा।'

'ओह! ओह!—एकाएक अभयबाबू ने कठोर और विषम

बन कर कहा—'यह तो ठीक ही है! निःसन्देह!'—वे बोले—'लेकिन रानी, ऐसा आज तक क्या पाया है, इस मानव ने!'

'हां, पाया है! मनुष्य जब अधिक पागल बना है, अधिक अशांत और उद्विग्न हुआ है, तो इसने धर्म-स्थान में जाकर ही उस जन-जन के निर्माता, जन-जन की वाणी का निर्माण करने वाले ईश्वर को याद किया है और वहीं पर अपनी आत्मा की आवाज को सुना है। बुद्ध ने यही कहा। अशोक ने इसी वाणी को सुना। महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंच-वध को देख कर ही कविता का निर्माण किया, तो क्यों?'—रानी ने कहा—'हां, यह ठीक है कि जब से इस मनुष्य ने पैसे का आविष्कार किया और उसकी उपयोगिता को समझा, तो तब से भले ही, संसार सुसज्जित होगया, अधिकपूर्ण हो गया, परन्तु धर्म भ्रष्ट हो गया! मनुष्य पतित बन गया! हीरे-जवाहरातों की कल्पना करने वाला व्यक्ति अवश्य ही अविवेकी बनेगा। अदूरदर्शी भी दिखाई देगा। वह अपने स्वार्थों के लिए जन-जन का ह्रास करना भी पाप नहीं मानेगा। झोपड़ियों में पालित-पोषित धर्म और समाज के सूत्र जब महलों में प्रविष्ट हुए, वहाँ की चकाचौंध से प्रभावित हुए तो वे अपनी वास्तविकता भूल गये—सचमुच!'

अभयबाबू ने कहा—'रानी, यह सभी स्वाभाविक है। कोई वस्तु, चाहे कितनी उपादेय हो, एक दिन अवश्य ही विकृत बनती है। विशाल हिन्दू-धर्म में जो अघट-घटनाएँ घटी हैं, वही इसे मारती हैं और आगे जीवन देने के लिए शक्ति का काम करती हैं। आज भी जो-कुछ हो रहा है, वह इसी का सूचक है। वैसे यह एक समस्या है कि जिसका निरूपण अपने-आप होना है। जिनको जीवन पाना है, उन्हें अवश्य ही आगे देख कर चलना है।'

यह सुनकर रानी ने साँस भरी और छोड़ दी। उसने अपनी दृष्टि अभयबाबू की ओर से हटा कर कमरे के एक चित्र पर लगा दी। वह चित्र भगवान बुद्ध का था। कितना सरल और सौम्य! मानो रानी देखा कि बुद्ध-काल की वह नारी,—वह रूप की परी—अपने यौवन में झूमती हुई जाने कितने अमीर-उमराओं को उँगली पर नचाती और उनका विशाल धन अपने घर में भरती। उन्हीं दिनों उसने भगवान बुद्ध की कीर्ति सुनी। वह विमल-गाथा उसके हृदय से भी आकर छू गयी। उसमें प्रेरणा उदय हुई और भगवान बुद्ध के पास भिक्षा निमित्त आमन्त्रण भेजने के लिये तैयार हुई। उस सुन्दरी के निमन्त्रण को पाकर भगवान बुद्ध उपेक्षित नहीं हुए। वह सहमत हो गये। समाज की नर्तकी उस आम्रपाली के द्वार पर जो धनिक-वर्ग रूप की ओर उसके प्रेम की भीख मांगने जाता और हीरे मानिक भरे थाल उसके द्वार पर ढरका आता, उसके विपरीत, भगवान बुद्ध केवल मुट्ठी भर चावल की भिक्षा लेने के लिये सहमत हुए। बार-बार उस सुन्दरी का निमन्त्रण आता और वह उसे स्वीकार करके आने के लिए कह देते। वह इन्कार नहीं करते, स्वीकार करते। किन्तु एकाएक बुद्ध ने सुना कि उस सुन्दरी के घर डाका पड़ गया। उसका भरा हुआ घर उजड़ गया। उसके शरीर में कोढ़ फूट गया। अब उसके पास कोई नहीं जाता। जो समाज उसके शरीर के एक-एक अँग पर लालच भरी दृष्टि रखता, उसे पाना चाहता, वही मानव अब उसकी ओर मुँह नहीं करता। कोई पास नहीं आता। नौकर भाग गये। आम्रपाली के पास भोजन का भी आधार नहीं रह गया। वह सड़ रही है...एकाकी बनी हुई ईश्वर से मृत्यु की भिक्षा मांग रही है, वह नर्त्तकी!

लेकिन भगवान बुद्ध ने यह सुना, तो उनका मन तड़प गया।

उन्हें उस नर्त्तकी के निमन्त्रण का भी ध्यान आ गया। एक दिन भिक्षा के लिये उठे और उसके द्वार पर जा पहुंचे। किन्तु उस वेश्या ने जैसे ही उन्हें देखा, तो एकाएक रोकर, अपने सिर में हाथ मार कर कहा—'आह, आर्य! अब आये हैं आप,—इस हत-भागिनी के पास! अब जाइये। अब भिक्षा किसी और द्वार से पाइये, महाराज!'

सुनकर बुद्ध ने मुसकराया। उन्होंने कहा—'माता, मुझे आज ही अवसर मिला। आज यहां आना भी आवश्यक लगा।'

'लेकिन मैं क्या दूँ, आर्य! मैं स्वयं भूखी हूं। मैं आज गलित कुष्ठ में पड़ी हुई समाज से उपेक्षित और घृणा की पात्र बन रही हूँ!'

बुद्ध ने कहा—'हाँ, मैं इसीलिये आया हूं, माता! मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। तुम्हारे जिस शरीर को देख कर समाज डरता है, मैं उसका उपचार करूँगा।'

'आह, आर्य!'

उसी समय, रानी ने एकाएक चौंक कर, अभयबाबू की ओर देखा। मानो उसने अपार ममता और दया के साथ उनकी आँखों में अपनी आँखों को समाविष्ट कर देना चाहा।

यह देख, अभयबाबू ने मुसकरा दिया—'क्या है...क्या!'

रानी ने अपार उल्लासपूर्ण स्वर में कहा—'सोचती हूँ, इस हिन्दू-समाज ने जो आज भी अपने जीवन को सुरक्षित रखा है, तो इसका भी एक कारण है, एक महान ध्येय! वह हमें पाना है!'

'क्या...?'

'सेवा और त्याग। देखते हो, भगवान बुद्ध की ओर!'

बलात् उस चित्र की ओर देख, अभयबाबू ने रानी का हाथ पकड़ कर कहा—यह तो सच है,—'शिव और सुन्दर है!'

मैं कहती हूँ, हिन्दू-समाज अब भी उठेगा। यह विश्व-कल्याण और विश्व-बन्धुत्व का पाठ आगे भी संसार को देगा।'

अभयबाबू ने कहा—'शायद,—हाँ।'

रानी ने स्वर पर जोर देकर कहा—'नहीं, जरूर!'

यह सुनकर अभयबाबू ने मुसकरा दिया—'तुम्हारा विश्वास है, तो जरूर देगा। हिन्दू-समाज भावना और आदर्श पर टिका है, तो फिर जीवन भी पायेगा और दूसरों को देगा। वसुधैव कुटुम्बकं का अमर पाठ रहेगा।' उन्होंने फिर रानी का हाथ पकड़ कर कहा—'यदि इस्लाम ने भी पीछे की ओर देखा, तो वह भी जीवन पायेगा। उसमें दोष है, तो गुण भी हैं। हिन्दू-समाज अब अकेला जीवित नहीं रह सकेगा।'

रानी ने इतना सुना और मत नहीं दिया। जैसे बरबस ही, पति की बात को स्वीकार कर लिया।

अठारहवाँ अध्याय

किसी समाज का प्रचार उस समाज के व्यक्ति को कितना अविवेकी और मूर्ख बना सकता है, इसका कटु अनुभव अभय-बाबू को तब हुआ कि जब नजीर मुहम्मदने प्रजा-संघ को छोड़कर मुसलिम-लीग का आश्रय ले लिया। सचमुच, यह ऐसा प्रसंग था कि जिसका आघात अनायास ही उनके मर्मस्थल पर पड़ा। उन्हें नजीर मुहम्मद से कितना भरोसा था, उस पर कितना विश्वास था, इसका सबसे बड़ा उदाहरण यही था कि संघ में उसके अति-रिक्त और किसी का विश्वास नहीं होता था। वह उनका सगा भाई सरीखा था। प्रायः उनके यहाँ खाता-पीता था। आता जाता था। वह न केवल सांसारिक दृष्टि से ही अभयबाबू का सखा था, अपितु, उनके व्यक्तिगत जीवन में भी उसका पूरा हाथ था।

यद्यपि, नजीर मुहम्मद पैसे की दृष्टि से संघ में सुखी नहीं था, वह गुजारामात्र ही कर पाता था। लेकिन प्रजा संघ की प्रगति के साथ-साथ, उसने किस प्रकार अपने जीवन की प्रगति की और नगर में प्रतिष्ठा प्राप्त की; निश्चय ही, वह किसी धनिक को अनायास प्राप्त नहीं हो सकती थी। वह नगर का एक नेता बन गया था। वहाँ के मनुष्य-समाज में उसका सम्मान किया जाता था। इसका ही यह परिणाम हुआ कि नगर के प्रतिष्ठित मुसल-मानों ने उस पर जोर डाला। उन्होंने अनुभव किया कि यदि नजीर मुहम्मद उन्हें मिल जाये, तो अपनो उद्देश्य प्राप्ति में उनको काफी सहायता मिल सकेगी। उस पर, कब से जोर डाला जा रहा था, इसका पता बाद में चला। लेकिन अभयबाब

को इससे क्या ! उनके जीवन का जो एक मिशन था, वह आगे बढ़ रहा था। नजीर मुहम्मद के चले जाने से उनका कार्यक्रम अव्यवस्थित हो गया। उनके मन को धक्का लगा। अभयबाबू को अनुभव हुआ कि देश के जिस प्रकार अन्य उपयोगी कार्य चलते हुए रुक जाते हैं, उनका भी यही कारण होता है कि साथियों का विश्वास नहीं मिलता। वे स्वार्थमय रहते हैं। उन्हें जन-सेवा प्यारी नहीं, अपना अर्थ प्यारा होता है !

मुसलिम-लीग में जाकर नजीर मुहम्मद ने, न सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकता का ही उपहास किया, बल्कि उसने हिन्दुओं के विरुद्ध अधिक विषैला वातावरण भी फैलाने का प्रयत्न किया। अभयाबाबू को मालूम हुआ कि नजीर मुहम्मद अब एक सुन्दर मोटर गाड़ी का स्वामी बन गया है और पहिले की अपेक्षा अधिक सज-धज के साथ रहने लगा है। उसको न सिर्फ धनिक मुसलमानों का सहयोग मिला, अपितु, नगर और प्रान्त के जितने मुसलमान उच्च अधिकारी थे, उनकी ओर से भी सहायता का आश्वासन प्राप्त हुआ।

अभयबाबू जानते थे कि इसमें मुसलमानों का दोष नहीं। वह सरकारी नीति का एक अँग था,—उसका प्रथम और अंतिम हथियार था ! एक विदेशी सत्ता किस प्रकार एक बड़े देश पर अपना अधिकार जमाये, उसके लिये जहाँ यह विचारणीय था, वहाँ हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े कराना भी उपयोगी दीखता था।

और राजनीति से खेलने वाले व्यक्ति देश को स्वतन्त्र करना चाहते थे। वह इसके लिए नाना प्रकार के कष्ट पा चुके थे। हजारों गोलियों से मर चुके थे। सैकड़ों जेलों की यातना पाकर जीवन से हाथ धो बैठे थे। सुहागिनों के सुहाग असमय में ही,

नष्ट हो गये थे। बच्चे अपने माता-पिताओं से छूट गये थे । जन-जन और कोटि-कोटि मानव-कण्ठों से बस एक ही पुकार उठ रही थी—हमें रोटी चाहिए...अधिकार चाहिये...हमें अपना देश चाहिए...

दिखता था कि सत्ता के अत्याचारों से पाप का प्याला लबालब भर चुका था। वह अब फूटा...अब फूटा...देश बड़ी व्यग्र और आतुर दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। तभी वह गृह-युद्ध देश व्यापी बन गया। गाँव, शहर और कस्बों पर हजारों व्यक्तियों द्वारा हमला होने लगा। स्त्रियों और बच्चों पर तो अत्याचार हुए ही, धर्म-परिवर्तन और नृशंस हत्याओं का जोर भी चारों ओर बढ़ गया !

किन्तु नजीर मुहम्मद को जाता देख कर, अभयबाबू ने उसे रोका तो नहीं, कभी कारण भी नहीं पूछा; परन्तु उनके मन में अपने काम के प्रति जो ममता थी, वह अवश्य बार-बार उन्हें उद्वेलित करती थी। यह भी अनुभव हुआ कि देश के राजनीतिज्ञों द्वारा-महात्मा गांधी द्वारा—जिन्होंने मुसलमानों को आवश्यकता से अधिक सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया, उसी का दुष्परिणाम सामने आया कि मुसलिम-समाज पहिले जितना समीप था, राज-सत्ता का इशारा पाकर कांग्रेस और देश से उतना ही दूर हो गया ! उसके मानस में जितनी भी स्वदेश के प्रति प्रेरणा देने का प्रयत्न किया गया: वह उतना ही, अपने-आप हो गया कांग्रेस और देश के प्रति उपेक्षित में। ऐसा क्यों हुआ ? किसलिए हुआ ? क्या अँग्रेजों के बहकावे में आकर हुआ ? शायद ऐसा भी नहीं था। यह तो ठीक था कि मुसलमानों ने अँग्रेजों की प्रेरणा पर ही पाकिस्तान का महत्व समझा ! परन्तु उसका नारा बुलन्द ही इसलिए हुआ कि अँग्रेजों के जाने पर उन्हें भी पृथक सत्तारूढ़ होने का अवसर मिल सकता

था। यह लालच इतना कठोर और विषम बन गया कि मुसलिम नेताओं ने बरबस ही, अपनी जनता के हृदयों में अपने प्रभाव को स्थापित कर दिया। उनमें अधिकार प्राप्ति का स्वार्थ उदय हो गया। साम्राज्य-लिप्सा के जो शेष रह गये कीड़े, उनके मानस में बिलबला रहे थे और अंदर ही अंदर विष फैला रहे थे, वही विष पाकिस्तान की कल्पना कर रहा था! कोई समाज जब अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है, तो वह निःसन्देह, अँधा बन जाता है। अतएव मुसलिम-जाति के सामने भी यह ऐसा ही अवसर आया। शिक्षित से लेकर अशिक्षित तक प्रत्येक व्यक्ति उसी रंग में रंगा हुआ दिखायी दिया। सदियों से उन्होंने जिस भारतमाता की गोद में आश्रय पाया, उसी के टुकड़े करना स्वीकार किया! आश्चर्य कि मुसलमानों ने जिस देश में जन्म लिया, जिसे अपना देश कहा, उसी के प्रति उनमें प्रायः उपेक्षा का भाव दिखायी दिया! अरब और ईरान को ही अपना देश माना! भारत देश में सदियों से बस कर भी अपनी भाषा, पोशाक और-रिवाजों का वही रूप रखा कि जो उनके पूर्वज बाहर से लेकर आये थे। मक्के-मदीने को छोड़कर, उनके द्वारा अपना धर्म-स्थान भी कहीं अन्यत्र स्वीकार नहीं किया गया!

यह एक ऐसी परिस्थिति थी कि जिसे कठोर से भी बदतर कहा जा सकता था! वह क्यों और किस कारण? एक समाज-शास्त्री की दृष्टि से देखने पर यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों की इस प्रवृत्ति को परिष्कृत करने में जितना अन्य कारणों का हाथ रहा, उनसे अधिक महान हिन्दू-जाति की विषमता, धार्मिक कठोरता और संकीर्णता का प्रभाव रहा! हिन्दू-जाति ने यह एक दिन भी नहीं सोचा कि जो कौम संघठित होकर उनके देश पर अधिपत्य जमा सकती है, उसका ध्येय क्या है! इतिहास बताता है कि हिन्दुओं

की धार्मिक संकीर्णता के कारण ही, मुसलमानों ने इस देश पर अपना राज्य स्थापित किया। हिन्दू वीर थे, राजपूत मरना जानते थे, परन्तु न राजनीतिज्ञ थे, न धर्म की महत्ता पहचानने वाले थे! धर्म क्या है, अनेक अर्थों में वह यह भी नहीं समझते थे! वे बलिदान की भोली मूर्ति थे! यदि ऐसा न होता, तो मुसलमान राज्य इस देश में स्थापित न होता। महान पृथ्वीराज चौहान न हारता! प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप का राज्य न छिनता! ओह! ऐसा भारत देश कि जिसके बच्चे और बच्चियाँ मरना जानते हों; आग में कूद कर अपनी आहुति देना जानते हों, वही देश गुलाम हुआ! वही पराजित! आह!

लेकिन वस्तुस्थिति ही यह थी। कटु सत्य था! अपनी उसी नीति के अनुसार हिन्दुओं ने जैसा भयंकर और न भूलने वाला पाप किया, वह यह कि मुसलमानों को हीन और उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अँग्रेजी राज्य में ही अन्त्यज और सताये हुये हिन्दू मुसलमान बने। कुछ स्वयं बने, कुछ बनाये गये। इस प्रकार विद्वेष का एक छोटा सा दरिया समय पाते ही बड़ा हो गया। हिन्दू-जाति ने स्वयं अपने बीच से ही दुश्मन पैदा किया। अपने-आपको बड़ा समझा, दूसरों को हीन! यही कारण था कि मुसलमान के खून में प्रतिक्रिया का स्वर गूँजने लगा। हिन्दू काफ़िर हो गया!

दुर्भाग्य से, देश के महान नेता ऋषि दयानन्द के अनुगामियों ने भी बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया। शुद्धि-आन्दोलन उसी का एक रूप था। उसने न सिर्फ आर्य समाज सरीखी महान संस्था को मौत के मुँह में झोंक दिया, अपितु, मुसलमानों में और अधिक द्वेष की भावना को जन्म दिया। दो मुसलमान अगर हिन्दू बनाये गये, तो दस हिन्दू मुसलमान बने! इसके अतिरिक्त

जो अधिक खेद का विषय रहा, वह यह कि हिन्दू उन शुद्ध किये हुए जनों को भी अपने में नहीं मिला सके ! निदान, वे भी शनैः शनैः लौट गये । बल्कि अपने साथ और हिन्दू लेते गये ।

लेकिन उन्हीं दिनों अभयबाबू के लिये जो सबसे कटु और नितान्त हीन बात अनुभव हुई वह यह कि नजीर मुहम्मद ने जेबुन्निसा के पिता के सामने वह प्रसंग भी रख दिया कि जिसके कारण उनकी लड़की विवाह नहीं करना चाहती थी । नजीर मुहम्मद स्वयं ही उससे विवाह करने के लिए इच्छुक हुआ। भले ही, इसका किसी को पता नहीं चला, लेकिन, जेबुन्निसा के पिता पर जो प्रभाव पड़ा, वह यह था कि उन्होंने एक दिन अपनी लाड़ली बेटी से यह साफ कह दिया कि भले ही वह विवाह करे, या न करे; किन्तु अब उसे 'उदय' को छोड़ देना पड़ेगा। निदान, जेबुन्निसा ने यह स्वीकार कर लिया। उसने सोचा, इस समय समाज अँधा है, अविवेकी बन गया है, इसलिए तर्क से काम नहीं चलेगा। उल्टे काम बिगड़ जायगा । उसने अभयबाबू के नाम एक लम्बा पत्र लिखा और कह दिया कि वह 'उदय' पर से उसका नाम हटा दें। चूँकि इस समय परिस्थिति विपरीत है, इसलिये कुछ समय के लिए उसे क्षमा करें । उसने अपने पत्र में यह भी स्पष्ट लिखा कि नजीर मुहम्मद भले ही मुसलमान हो, परन्तु वह भी इंसान है,—दिमाग से काम लेने वाला पुरुष, इसका मुझे अब भरोसा नहीं रहा । मेरा मत है, ऐसे व्यक्ति ही इसलाम का मुँह काला कर रहे हैं !

उसी पत्र में, उसने रानी के नाम भी एक पत्र रख दिया था । जिसमें लिखा था, मेरे पिता अब फिर विवाह की बात चलाने लगे हैं। परन्तु मैं इन्हें कैसे समझाऊँ कि मेरा विवाह तो हो

गया है...नजीर मुहम्मद ने उनसे कह दिया है कि मैं महेन्द्रबाबू से विवाह करना चाहती हूँ ।...बेचारेने इतना कह कर समाज की संकलों से मुझे बँधवाना चाहा है,—मूर्ख! शायद उसे अब भी नहीं पता कि जेबुन्निसा बच्चों की गुड़िया नहीं, जिसे किसी ओर से भी नचाया-घुमाया जा सकता है...आज मैंने महेन्द्र बाबू को भी पत्र लिखा है । यहाँ की जो परिस्थिति है, उसे विस्तार के साथ बता दिया है ।...हाँ, तुम आशीष दो भाभी, कि मुसलिम समाज बुद्धि से काम ले। देश को स्वतन्त्र होने दे...मनुष्य को मनुष्य बनने दे ! विनोद को प्यार !

—जेबुन्निसा ।

उसीदिन रानी ने अभयबाबू से कहा—'अब...अब क्या होगा !'

सुन कर, अभयबाबू ने अचरज के साथ रानी की ओर देखा। मानो कुछ और सुनना चाहा । किन्तु रानी तो मौन थी। वह स्वयं ही कुछ सुनने और जानने के लिये बेचैन बनी हुई थी ।

इसी से, अभयबाबू ने निरलक्ष होकर कहा—मैं समझा नहीं, क्या—?

मैं पूछती हूँ, साथी तुम्हारे जा रहे हैं। संघ का काम इस प्रकार कैसे चलेगा ?'

इतना सुनकर, अभयबाबू ने किंचित हँस दिया । उन्होंने कहा—'रानी, एक तो मैं अकेला नहीं, तुम हो । और भी हैं मेरे साथी । फिर, मैं अब पहिले-सरीखा कायर और अन्धेरे में घूमने वाला भी व्यक्ति नहीं रहा। मैं नहीं रुकूँगा। मैं चलूँगा । मैं और तीव्रता के साथ आगे बढ़ूँगा । इस देश में जो-कुछ होरहा है, वह सब स्वाभाविक है। जिस तरह शरीर में रोग पैदा होते हैं, साम्राज्यों में युद्ध होते हैं, उसी तरह जनता और जातियों में भी

यह झगड़े चलते हैं। मैं इनसे चिंतित नहीं हूं। बड़ी मछली, छोटी मछली को खाती है,--जानवर ही जानवर का भक्षण करते हैं! इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य को मारते हैं। ठीक है देश की प्रगति रुक रही है, परंतु यह मत भूलो कि देश की काया बदल रही है। अकर्मण्य और आराम की गोद में पड़े हुये व्यक्ति मिट रहे हैं, तो उनमें नव-चेतना आ रही है। अगले मास में महेन्द्र आ जायगा। वह निश्चय ही, अपने काम पर लगेगा। और--और--'

रानी ने पूछा---'और क्या ?'

'और जेबुन्निसा के प्रति मेरा यह मत है कि वह अवसर पाते ही, फिर हमें सहयोग देगी। महेन्द्र के प्रति उसके मन की जैसी गति है, मैं उसमें बाधक नहीं बनूँगा। वह दोनों सोच लेंगे। जेबुन्निसा ने इस डेढ़ वर्ष में एक भी पैसा नहीं लिया, उसने उस पैसे को महेन्द्र के हिसाब में जमा कराने के लिये कह दिया। इस प्रकार वह जमा नहीं कराया गया, परन्तु यदि इन दोनों के विवाह का अवसर आया, तो वह रुपया उसे मिल जायगा। महेन्द्र का रुपया भी उसी को दे दिया जायगा।'

रानी ने कहा—जेबुन्निसा ऊँचे परिवार की लड़की है। उसके विचार भी ऊँचे हैं। वह महेन्द्र को छोड़ कर किसी और से विवाह करेगी, इसका मुझे भरोसा नहीं।'

अभयबाबू ने कहा—'यही मेरा मत है।'

'लेकिन मैं चाहूँगी कि महेन्द्र ऐसा न करे।'

'क्यों, क्यों ?

'इसलिये कि चाचा और चाची को कष्ट होगा।'

यह सुनकर अभयबाबू ने हँस दिया। उन्होंने कहा—'तुम्हारे अब भी ऐसे विचार हैं! अब भी !'

रानी ने कहा—'हां, यह मेरी जन्मगत और स्वभावगत बात है !'

'तब तो मैं कहूँ, मुसलमान जो-कुछ करते हैं और कहते हैं, वह ठीक है। आज के हिन्दू को उन्होंने उचित ही समझा है। हिन्दू-समाज आज भी हीन और स्वेच्छाचारी है ! मुसलमानों ने भली प्रकार इसका परिचय पाया है। यही हमारा पाप है। आज वही बोल रहा है। इसी पाप के प्याले में हिन्दू-समाज डूब रहा है !'

रानी ने इसका उत्तर नहीं दिया। अवश और निःशक्त बन कर उसने अपना सिर झुका लिया।

उन्नीसवाँ अध्याय

किन्तु रानी अपने समाज की हीनता को स्वयं ही अनुभव करती। वह देखती कि हिन्दू-समाज संगठित नहीं है,—एक नहीं है ! यह तो नाना प्रकार की धाराओं में वह रहा है। लेकिन जाति, धर्म और रूढ़िगत परम्पराओं को वह इसलिये मानती कि बिखरा हुआ मानव वहाँ एकत्र होता है और आत्म-भाव देखता है। हिन्दू-समाज में जो-कुछ आज है, वह तो पूंजी-वाद और सामन्तवाद के स्वार्थ की छाया है। उसी ने इतना विभेद समाज में पैदा किया है। इसलिये जब एक दिन जेबुन्निसा रानी से मिलने आई, तो उस समय, रानी ने कहा—'कोई धर्म और मजहब विभक्त नहीं किया जा सकता। परम्परा और है। तुम महेन्द्र भैया से विवाह करोगी, तो मुझे सुख ही मिलेगा। मेरी दृष्टि में यह दो संप्रदायों का मेल भी होगा।'

जेबुन्निसा पहिले मुसकरा रही थी, फिर गम्भीर बन गयी, वह बोली—'मजहब और धर्म को मैंने आज तक भी स्वीकार नहीं किया, भाभी ! शायद अभी भी नहीं। इन्सान का जो धर्म है, वही मैंने माना है। इन्सानियत को पाना चाहा है, मैंने !'

रानी ने कहा—'परन्तु तुम्हारे संस्कार जिस रूप में बने हैं, वह तो स्वीकार करते हैं।'

जेबुन्निसा ने कहा—'संस्कार तो बनाये जाते हैं, भाभी ! बने बनाये नहीं आते।'

रानी ने एक क्षण उसकी ओर देखा। फिर कहा—'जेबुन, कुछ बने हुए भी आते हैं। कुछ यहाँ बनते हैं।'

यह सुन कर जेबुन्निसा हँसी। वह बोली—'कुछ हो, मुझे यह स्वीकार नहीं। भाभी, मेरा मन सदा ही कहता रहा है कि आदमी का, आदमी से अन्तर नहीं है। जाति बनाई जाती है।'

रानी ने मुसकरा दिया—'यह तो ठीक है।'

तदन्तर ही रानी ने पूछा—'सुनाओ, भैया का पत्र मिला ?'

जेबुन्निसा ने कहा—'हाँ, पन्द्रह दिन हुए आया था। उसी में अगले मास छूटने के लिए लिखा था।'

'और नजीर मुहम्मद ? सुना, उसने तुम्हारे पिता से भी कुछ कहा-सुना !'

यह सुन कर जेबुन्निसा के माथे में बल पड़ गये। उसने कहा—'हाँ, उन्होंने सभी-कुछ कहा ! मैं इसलाम की सच्ची पुजारिन बनूँ, इसके लिये उन्होंने अपने सभी हथियारों का इस्तेमाल किया !

'लेकिन हुआ क्या ? उन्हें मिला क्या ?'

जेबुन्निसा ने फिर भी अपनी भौंहें चढ़ा कर कहा—'खाक-पत्थर ! बेचारे ने अपने को जलील और कर लिया !'

और तुम्हारे पिता ? उन्होंने क्या कहा ?

'मेरे पिता देवता हैं, भाभी ! ऐसी ही अम्मी ! उन्होंने तो मुझसे लोक-रुचि को ध्यान में रखने के लिए कहा।'—पिता ने बताया—'आदमी भी एक जानवर है, जब यह अपने दिमाग से काम लेना छोड़ देता है, तो जानवर से बदतर बन जाता है !' —उन्होंने कहा—'आज जो लड़ रहे हैं और लड़ा रहे हैं उन्हें एक दिन पछताना पड़ेगा ! उन्हें अपने किये पर रोना पड़ेगा ! सन् सत्तावन का गदर सफल क्यों नहीं हुआ, इसका भी उन्होंने यही राज बताया !

उन्होंने कहा—'तब भी इन्सान में लालच पैदा हुआ,—गद्दी की लोभ !' जेबुन्निसा ने कहा—'पिता ने मुझे मेरी इच्छा पर

छोड़ दिया है।-उनकी तीन लाख की जायदाद है। जिसे बहुत दिन हुए, मेरे नाम लिख दिया है। वह उनकी कमाई हुई है।'

उसी समय रानी के मन में विवाह की बात चल रही थी। जेबुन्निसा से वह उसी का उत्तर माँगना चाहती थी। वह जानना चाहती थी कि इस विषय में उसने क्या निश्चय किया। इसी से, उसने पूछा—'और तुम्हारा विवाह ?'

'हां, यह भी मेरी इच्छा का प्रश्न है, भाभी! कहूँ कि महेन्द्र बाबू की रुचि का है!'—वह बोली—'लेकिन अब मुझे इसपर बल नहीं देना है। अपनी ओर से इस बात को भी नहीं उठाना है। देखती हो, समाज बदल रहा है...मनुष्य क्रांति-दूत बनकर पागल और भूखा हो गया है! देश में आग लग रही है...परिवर्तन तेजी के साथ कुछ घटा रहा है, कुछ बढ़ा रहा है!'

वह बोली—'मुझे याद है, तुम्हारी वह बात कि वासना में में जीवन नहीं...अब दिखता है कि उसमें बल नहीं। जैसे यौवन का एक क्षण! शायद स्त्री और पुरुष के जीवन का एक पहलू कि जहाँ वह अपने अंदर कोई भूख, इच्छा और द्वन्द्व का अनुभव करते हैं और उसमें खो जाते हैं...!

किंतु उस समय रानी ने एकाएक कहा—'न, जेबुन! जिन्दगी की यह भी एक माँग है। तू मां बने, सबसे पहिले मेरी यही इच्छा है।'

इतना सुनकर जेबुन्निसा चंचल बन गयी। वह उद्विग्न भी हो गयी। बोली—'स्त्री में इस इच्छा का जन्म तो आज से हजारों वर्ष पहले हो चुका, भाभी! आज भी वह वैसा बना है।'—उसने कठिन स्वर में कहा—'किंतु इस इच्छा के साथ नारी ने पाया क्या? संसार को क्या दिया?'

अब तक रानी हँस रही थी। मुसकरा रही थी। किंतु जब उसने जेबुन्निसा से नारी को चुनौती देने की बात सुनी, तो उसका मन तड़प गया। लगा कि जैसे उस यौवनमयी लड़की ने नारी के ऊपर प्रहार कर दिया...मां के ऊपर ! इसी से, उसने तुरन्त ही अपने स्थिर स्वर में कहा–'इसका उत्तर तो कोई भी नारी दे सकती है, जेबुन्निसा ! तुम्हारी अम्मी भी।'–वह बोली–'यह ठीक है कि समाज के जिस जीवन में हम वासना को देखती हैं, पतन और भ्रष्टाचार को; उसको फैलाने में नारी का भी हाथ रहा है। परन्तु, यह मत भूलो कि नारी ने जिस नर को जन्म दिया है,—सत्य, शिव और सुन्दरम् को स्वीकार किया है—उसी का प्रताप है कि मानव आज भी जिंदा है, फल-फूल रहा है, अंधकार में प्रकाश भी दिखा रहा है, मेरी रानी ! जिस उत्सर्ग की भावना को तुम अपने मानस में छिपाये हुए हो, बताओ, इसका जन्म कहाँ से हुआ ? यह प्रसाद तुम्हें कहाँ से मिला ? निश्चय ही, यह तुम्हें अपनी माँ से मिला है।'—उसने कहा–'आज एक बात कहती हूँ, उसे मानना। तुम विवाह जरूर कर लेना। किसी से करो, महेन्द्र से या किसी और से; तुम एक साथी अवश्य ही ढूँढ़ लेना, जेबुन्निसा ! यह तुम्हारे जीवन की माँग है। वही स्वभाव है, तुम्हारा। तुम नारी हो, कोमल हो ! इस एकाकी जीवन में तो तुम असमय ही सूख सकती हो।'—वह बोली—मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि तुम सन्तति उत्पादन के लिए ही साथी चुनो। वासना की पूर्ति के लिए ही तुम विवाह करो। न, यह तो मिथ्याचार है ! एक शब्द में कहूँ तो अपने समाज के जीवन के साथ यह दुराचार भी है। संयम उस जीवन में भी है। उत्सर्ग और पतन वहीं पर दिखाई देता है, जेबुन्निसा ! लगता है कि उस अवस्था में जीवन अपने-आप हमारी तरफ आता है। वह हमको

संबोधित करता है। कभी बाध्य भी करता है। हम दुनिया के हैं और दुनिया हमारी; इसका ज्ञान भी हमें उसी परंपरागत स्वभाव को स्वीकार करके होता है।"

जेबुन्निसा ने एकाएक अधीर बनकर कहा—'ओह, तुम बहुत भावना प्रिय हो, भाभी! सच, मुझसे अधिक हो!'

रानी ने तब मुसकराकर कहा—'न, जेबुन ! यह भावना की बात नहीं। सचाई है यह! यह जीवन!'

जेबुन्निसा ने कहा—'अच्छा, अच्छा, यह बताओ प्रजा-संघ की प्रगति का क्या हाल है ? सुना, काम अधिक बढ़ रहा है। झगड़े के कारण जो व्यक्ति संघ से पृथक हुए, क्या उन्होंने फिर सहयोग दिया है?'

रानी ने कहा—हां, वे आने लगे हैं। काम कर रहे हैं।'

'और तुमने यह भी सुना, नजीर मुहम्मद का एक बड़े घराने की लड़की से विवाह हो रहा है?'

अच्छा!—रानी ने हर्ष में भर कहा—यह नई बात है!

'हां, नजीर का भाग्य खुल गया। इसलाम-धर्म का पुजारी क्या बना, अपनी जिंदगी बनाने में सफल हो गया ! सुना तुमने, वह अब अपने पुराने किराये के मकान को छोड़कर सिविल लाइन्स के एक शानदार बँगले में रहने लगा है। महीने में एक-दो हजार रुपया खर्च करता है । शानदार मोटर है, नौकर हैं ! और अब हजरत का विवाह क्या होगा,—सुन्दर दुलहन के साथ दहेज में इतना सामान मिलेगा कि घर भर जायेगा! लड़की वाले के पास बड़ी जायदाद है, इसलिए नकद रुपया तो मिलेगा; ही दो-चार लाख की जायदाद पर भी अपना हक हो जायेगा!'

मानो गले का थूक सटक कर, परन्तु उत्साहित होते हुए, रानी बोली—'अच्छा है, सच, अच्छा!'

किंतु जेबुन्निसा ने चंचल बनकर कहा—'भाभी, क्या खाक अच्छा है ! धन तो ऐसे ही आता है । कमाया नहीं जाता, पाया जाता है ! कुछ लूटा भी जाता है ।' उसी समय उसने फिर कहा—'अगर आदमी की तरक्की का यही राज है, यही रास्ता है, तो मैं कहूँ कि यह धोखा है ! मनुष्य का मनुष्य के साथ छल और फरेब है । निश्चय ही, आदमी अपने मुँह पर चादर डालकर, अपने उसूलों का खून करके और इंसानियत को पैरों से कुचल कर यह रास्ता पकड़ता है । नजीर मुहम्मद भी ऐसा ही एक ढोंगी बनेगा, मुझे इसकी उम्मीद नहीं थी । लेकिन, अब सोचती हूँ उसने अपने भाइयों को तो ठगा ही, साथ ही, अपने-आपको भी छल लिया है । उसकी जिंदगी में जो एक अच्छी रवानगी पैदा हुई थी, हाय ! कम्बख्त ने रुपयों की दुनिया में जाकर उससे मुँह मोड़ लिया ! इसीसे कहती हूँ कि न इसलाम बुरा है, न हिंदू-धर्म । इनके जो प्रचारक हैं, उन्होंने इन धर्मों और मजहबों को तोड़-मरोड़ कर ऐसा कर दिया कि जैसे रस निचुड़ गया, डण्ठल रह गया,—निरर्थक और बेकार !'

इतना सुनकर रानी ने सांस भरी और छोड़ दी ।

जेबुन्निसा ने फिर कहा—'मुझे इन मजहब परस्तों से चिढ़ है। लगता है कि ये भूत हैं,—स्वार्थ के जहरीले कीड़े; यह जिसके चिपटते हैं, उसे जिंदा नहीं छोड़ते । ये उसे खा जाते हैं !'

तो अब क्या हो...कैसे हो ।' एकाएक रानी ने कहा ।

जेबुन्निसा बोली—'देखती जाओ कि आदमी बदलेगा,—मजहब भी यह रास्ता छोड़ देगा । हमें जिंदा रहना है, तो इस दलदल से पार होना पड़ेगा, भाभी !'

रानी ने कहा—मजहब नहीं बदलेगा,—धर्म भी नहीं !'

'ओह, मैं इनको नहीं कहती ! लेकिन, यह तुम देखना, मनुष्य को अगर जिंदा रहना है, तो धर्म की असलियत समझेगा,–जरूर !' जेबुन्निसा ने कहा।

रानी चुप थी। जैसे वह स्वीकार नहीं कर रही थी।

जेबुन्निसा ने फिर कहा—'अधार्मिक व्यक्ति भला कैसे जिंदा रहेगा! जरूर उसे धर्म से ही इन्सानियत का सबक मिलेगा। लेकिन ऐसा करने के लिये हमें धन को मिटा देना होगा...धन हमारे बीच में खड़ा है। वह हमारा मध्यस्थ बना हुआ है, उसकी इस परंपरा को खत्म कर देना होगा, भाभी ! इंसान का धर्म यही है कि वह जितना इंसानियत के समीप होगा, इंसान का सेवक होगा, उतना ही बड़ा पण्डित और मुल्ला कहला सकेगा।'

रानी ने फिर भी निराश और संदिग्ध आँखों से आसमान की ओर देखा। मानो, जो बात उसने सुनी, वह उतनी सरल नहीं थी, उसकी सफलता पर रानी को एकाएक भरोसा नहीं होता था।

कदाचित यही देखकर और अनुभव करके जेबुन्निसा ने फिर कहा—'भाभी, यह अवश्य होगा। इंसान को जीना है। इसे रोटी और कपड़ा चाहिये, धर्म और मजहब पीछे।— देखना, आज के बाद जो कल का इंसान पैदा होगा, वह पहिले रोटी और कपड़ा चाहेगा। वह इंसानियत को भी पहिले मानेगा,– धर्म और जाति को पीछे।'

यह सुनकर, बरबस रानी ने हँस दिया। उसने कहा—'काश, सफल हो तुम्हारी वाणी !'

जेबुन्निसा ने उठकर कहा–'सच, यही होगा। मेरा मन तो कह ही रहा है, लेकिन संसार के ऊपर जो बादल मंडरा रहे हैं, उन्हें देखकर भी कोई समझदार यही पा सकेगा,–ऐसे ही विचार और भाव !'

चलने के लिये उद्यत होकर जेबुन्निसा ने कहा—'अच्छा, सलाम !'

रानी ने कहा–'सलाम।'

जेबुन्निसा चली गयी और रानी निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखती रह गयी,—जैसे वह जाने वाली अनुपम और महान !

———

बीसवाँ अध्याय

देश पर छाये हुये गहरे और काले बादल चारों ओर मण्डरा रहे थे। वह तेजी के साथ फैलते रहे थे। समाज में पारस्परिक सन्देह, भय और एक-दूसरे को गलत समझने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गयी कि एक जाति दूसरी जाति को नफरत और घृणा की दृष्टि से देखने लगी। देश की प्रधान संस्था कांग्रेस ने जिस सद्भावना का परिचय दिया, जन-समाज के एक भाग ने उसे स्वीकार नहीं किया। मानवता का वह उपहार ठुकरा दिया गया। अंग्रेज जाति ने कांग्रेस की शुभ भावना का दुरुपयोग किया और देश की एक जाति को गलत दिशा की ओर संकेत दिया। फलस्वरूप, देश की दो बड़ी जातियों को लड़ा दिया। कहा जा रहा था कि देश स्वतन्त्र होगा। अंग्रेज चले जायेंगे और वह देश के शासन की बागडोर देशवासियों को दे जायेंगे। किन्तु मुँह में राम और बगल में छुरी की पुरानी कहावत को अंग्रेजों ने अवसर पाते ही किस प्रकार चरितार्थ किया, यह उस विक्षुब्ध वातावरण को देखकर स्पष्ट हो गया। सम्बन्ध टूट गये, पुराने लेन-देन खत्म हो गये और एक प्रान्त में बसने वाला दूसरे प्रान्त में चला गया। उसने अपना फैला हुआ कारबार भी समेट लिया और देश विभाजित हो,—यह नारा एक कोने से दूसरे कोने तक सुनाई देने लगा! जाति-भेद बढ़ गया। निश्चय ही, अंग्रेज इस अवस्था में आ गये कि वह न तो कांग्रेस की मांग ठुकरा सकते थे, न मुसलमानों के अधिकार ही दबा सकते थे। उन्होंने स्वयं भी यह पसन्द नहीं किया कि मुसलमान चुपचाप ही कांग्रेस का साथ दें और उसके द्वारा दिये गये ब्लैंक-चैक को प्राप्त कर लें। उन्होंने देखा कि

कांग्रेस केवल 'वादों' के अधिकार देकर मुसलिम जाति को अपने साथ लेना चाहती है, इसलिए उसने स्वयं ही अधिकार की बात को क्रियान्वित किया और अपने यहां मुसलमानों को अधिकाधिक सहारा देना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों को केवल इतनी-सी बात से ही सन्तोष नहीं मिला, बल्कि उन्होंने देश के विभाजन की बात उठाकर हिन्दू-मुसलमानों को इतना दूर-दूर कर दिया कि जैसे निश्चय ही, उनका पहिले कोई सम्बन्ध नहीं था। परिणामस्वरूप, देश साठ-आठ सौ वर्ष पीछे लौट गया! वह प्रतिक्रिकावादी बन गया। दिखाई देने लगा कि जैसे देश का प्रत्येक मानव अवसर-वादी बनकर इस भावना में डूब गया कि वह स्वयं खाये, स्वयं पहिने और देश में जितना धन और स्थान है, उसमें से अधिक से अधिक वह स्वयं ग्रहण कर ले। निश्चय ही, इस मनोधारा का बतलाना ऊपर से गिर रहा था! स्वार्थ और स्वेच्छा का रूप धारण करने वाला व्यक्ति-समूह और विशाल समाज इतना मदान्ध, हीन और अराजकतावादी बन गया कि अधिकार की इच्छा को छोड़ उसके सामने जीवन का और कोई अवलम्ब नहीं रह गया था! जिनके पास धन था, समाज में सम्मान था, उनके लिए यह सोचना सचमुच ही दुसाध्य बन गया कि मनुष्य और भी हैं .....निम्न स्तर पर बसने वाला मानव भी शेष है......निःसन्देह, विशेष रूप से हिन्दू-समाज का यही हाल था! यद्यपि, ऐसा विकृत रूप, एकाएक ही नहीं बना, वह सदियों से निर्मित होता आ रहा था!

हिन्दू-समाज में जो पैसे वाले थे, धर्म भी उनके हाथ में था,—समाज के संचालक का कार्य भी उनके नेतृत्व में हो रहा था। सचमुच, उन्हें यह देखना मानो अभीष्टकर नहीं लगा कि मनुष्य बनकर, मनुष्य के साथ सदाशयता का व्यवहार करना उनके लिए उचित था। लगा कि हिन्दू-समाज का प्रत्येक वर्ण, कर्म

अलग-अलग था और दूर-दूर ! दिखता कि उसका कोई सहायक नहीं, कोई भाई नहीं ! हिन्दू-समाज का व्यक्ति जिस जमीन पर बस रहा था, मानो वहां पर वह सर्वथा अकेला था। यद्यपि, समस्या रूप में, वह समाज, जाति और देश के साथ बंधा हुआ था, परन्तु अपनी आवश्यकता और अपने कष्ट का स्वयं कर्ता और स्वयं ही भोक्ता बना हुआ था,—वह हिन्दू-समाज का व्यक्ति ! यही कारण था कि हिन्दू-समाज का एक विशाल प्रवाह अनेक धाराओं में बंट कर, छोटी-छोटी धाराओं में परिवर्तित हो गया। उसका अस्तित्व था, परन्तु ऐक्य की भावना के बगैर वह बंट गया, बिखर गया और अनेक छोटे-छोटे धर्मों में परिवर्तित हो गया।

साम्प्रदायिक झगड़ों की जड़ में अधिकार-लिप्सा और विभाजन की मनोवृत्ति तो काम कर ही रही थी, साथ ही, अंग्रेजों की कुटिल-नीति उसे बढ़ावा दे रही थी ! फलस्वरूप, देश का कोई ग्राम, नगर अथवा प्रान्त ऐसा नहीं रहा कि जहां झगड़े का सूत्रपात न हुआ हो। जो मुसलिम-बहुल प्रान्त थे, वहां के हिन्दू किस प्रकार अपने धन और जन से हाथ धो बैठे, उसे याद करके आज भी कलेजा फटता है ! सचमुच, वह बड़ा ही भयानक, हृदयहीन और दिल तड़पाने वाला दृश्य उपस्थित हो गया था ! लेकिन जो हिन्दू-बहुल प्रान्त थे, वहां भी हिन्दुओं का ही अधिक नुकसान हुआ। उनकी सम्पत्ति तो नष्ट हुई ही, जन का भी नाश हुआ। मानव हा-हाकार उठा ! माताएं चीख उठीं, बच्चे रो पड़े ! और मनुष्य उस वेदना को न सह सकने के कारण हा-हा खाने लगा। जो धनपति थे, वे कंगाल बन गये ! हजारों अपने धर्म से भी भ्रष्ट कर दिये गये !

यही हाल मुसलिम जाति का हुआ। बेचारे मुसलमान घरों से निकले, लुटे-पिटे और भागे ! मानो उनका कोई घर नहीं, कोई

दूर नहीं। वे लाज की भरी मुसलिम कन्यायें गुण्डोंके हाथ पड़ीं! उनकी अस्मत लुटी। मानवता मानो सिसक उठी! समाज की लाज तार-तार हो गयी! प्रतिक्रिया की भावना बढ़ गयी। जब इन्सान की लाशों से भरी गाड़ियां भारत आईं, तो पाकिस्तान की ओर भी वैसी ही गाड़ियां जायें—ऐसी होड़ जैसे चारों ओर देख पड़ी! मुसलिम माताएं, बालाएं खुदा के नाम पर हा-हा खाती हुई दीख पड़ीं......

इस प्रकार, निश्चय ही, देश में एक के-बाद-दूसरे प्रश्न उठ रहे थे, और बैठ रहे थे। देश की आंतरिक व्यवस्था मिट गयी। जिन मुसलमानों ने भारत के लिये अपना खून दिया, सर्वस्व अर्पित किया, ऐसी सैकड़ों कहानियाँ जैसे भूठी बन गयीं और अतीत के पर्दे में छिपायी जाने लगीं। वे मुसलिम मातायें, बहिनें और मुसलिम युवक-युवतियाँ सचमुच ही, जैसे स्मृति-पट से उतर चले कि जिनके लहू से एक बार नहीं, अनेक बार, भारत माता के मस्तक पर टीका लगाया गया। उस समाज का सहयोग और आशीष भी देश की निर्बलता में सहायक रहा।

परन्तु हाय! अंग्रेजों ने दोनों जातियों की दुर्बलता का लाभ उठाया। उसने देशभक्त, बहादुर मुसलमान को खूनी बनाया और हिंदू को लुटेरा और चोर बना दिया! हिंदू-समाज कितना स्वार्थी और दम्भी है, इसका ज्वलन्त उदाहरण उसी अवसर पर मिला। मुसलिम समाज के जिस श्रमिक-वर्ग द्वारा हिंदू-समाज का वध किया जाने लगा, उसकी बहू-बेटियां भगायी जाने लगीं और संचित धन लूटा जाने लगा, तो तब भी, दिखायी यह दिया कि धनिक-वर्ग दूसरों की रक्षा तो क्या कर पाता, स्वयं अपनी भी रक्षा नहीं कर सका! कैसा दयनीय दृश्य था वह कि समाज मिट रहा था, लुट रहा था, लेकिन पड़ौसी तमाशा देख रहा था! इस

हीनता का परिणाम यह हुआ कि नीचे का समाज तो पिटा और लुटा ही; परन्तु ऊपर के समाज में रहने वाले व्यक्तियों को भी नहीं छोड़ा गया। लेकिन हिंदू-जाति की अकर्मण्यता और स्वार्थ-परता यहीं समाप्त नहीं हुई, वह और भी आगे तक चली। हिंदू-समाज इतना दूसरों ने नहीं लूटा, न पिटा, जितना कि अपनों के द्वारा पथ-भ्रष्ट किया गया और लूटा गया!

ऐसा क्यों? स्पष्ट है कि जाति-प्रेम और धर्म-प्रेम का पाठ सदियों पूर्व ही हिंदू-जाति के मन और मस्तिष्क से उतर गया। समाज भोगवाद में बह गया। अवसरवादी बन गया। चरित्र और विवेक उसकी दृष्टि से उठ गया। 'वीर-भोग्या वसुन्धरा' का अमूल्य-मन्त्र जो एक दिन विशाल हिंदू-जाति ने अपने ऋषियों के मुंह से सुना और जिस समाज के पुरुखों ने अपनी आन और शान की खातिर धर्म के नाम पर अपने बच्चों तक को जीवित ही दीवारों में चिन जाने दिया विपक्षी के सामने अपना सिर नहीं झुकाया,—हाय! वही समाज इतना भ्रष्ट हुआ, इतना पतित हुआ कि देश के विभाजन का प्रधान कारण बन गया! पालित-पोषित मुसलिम जाति का शत्रु हो गया! जिन्हें गले लगाना था, अपना भाई बनाना था, उन्हीं को क्षुद्र और कायर मानने लगा। आश्चर्य, कि जिस जाति के पुरुखों ने देश पर शासन किया, उन्हीं का अस्तित्व इतना क्षुद्र मान लिया गया! भारत माता के दो बेटे थे, हिंदू और मुसलमान; अंग्रेजों ने उनमें दुराव पैदा किया। किंतु यदि हिंदू बुद्धिमान होते, बड़े भाई बनकर मुसलमानों को गले लगाते, तो क्या उन दोनों में विद्वेष पैदा होता! हिंदू-समाज का भूखा और नंगा अंग ही तो मुसलिम प्रवाह में बह गया! उसी के खून में बोलती हुई प्रतिक्रिया ने समय पाते ही, अपना नग्न-रूप प्रदर्शित कर दिया...... जिस हिंदू-मुसलिम समस्या को देश

गंभीर दृष्टि से देखता, वास्तव में, उसमें इतना भारीपन कभी भी नहीं रहा। आवश्यकता इस बात की थी कि हिंदू सजग बनता और आत्मनिर्भर होता। किंतु वह पूर्णरूप से दास बना। अंग्रेजों के हाथ में खेला। पैसा उपार्जित किया। फलस्वरूप, ऊँचे स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति गन्दगी फैला रहा था और अपने ही घर में फूट तथा व्यभिचार की क्रीड़ास्थली प्रस्तुत कर रहा था! वह धनिक-वर्ग अंग्रेजों से भी मिलता और देश की आत्मा के साथ भी छेड़खानी करने का प्रयत्न करता। वह मूर्ख और दम्भी मानव जैसे निपट अन्धा बन गया था! वह स्वेच्छाचारी समाज निश्चय ही, देश की आत्मा को मुट्ठी में भींच कर निःशक्त बना रहा था। निदान, अभयबाबू ने इस अवस्था का पूर्णरूप से अध्ययन किया। उन्हें भरोसा था कि विभाजन स्थायी नहीं रहेगा। उसका एक दिन स्वतः ही अंत हो जायगा। लेकिन, इस अवस्था के बाद भी, देश को जीवन देने और संसार के साथ चलने के लिये उन्हें जन-क्रांति की आवश्यकता अनुभव होती थी। जीवन को देखने का दृष्टिकोण बदलना आवश्यक था। हिंदू-समाज जिस पुरातन-काल से चली आई अंध-श्रद्धा और अंध-परंपरा पर चल रह था, उनकी दृष्टि ने उसे असंगत समझा। वह ऐसे समाज का विनाश चाहते। मानो समाज-रूपी शरीर सड़ रहा है, उसका बड़ा आपरेशन चाहते। उनका कहना था कि मंदिर, मसजिद और गिरजे नष्ट कर दिये जायें। उन्हें पुस्तकालय या विचारालय बना दिया जाय। उनकी दृष्टि में मनुष्य का धर्म था—मनुष्यता; अतएव उसी को प्राप्त करना देश के प्रत्येक व्यक्ति का एकमात्र कर्तव्य होना चाहिये। उनकी दृष्टि में मजदूर और किसान-समाज की प्रगति को बदलने के लिए विचारों का बदलना आवश्यक था। यों जीवन-क्रम ही बदला जा सकता था। फलस्व-

रूप, स्वयं अभयबाबू ने अपनी गति को बदलना भी निश्चित कर लिया। वह क्या करेंगे, किस दिशा में प्रजा-संघ का कार्य करेंगे, उसकी रूप-रेखा स्पष्ट नहीं थी, परन्तु एक धुंधला चित्र अवश्य ही, उनकी दृष्टि में आ गया था। वह जिस वैज्ञानिक और व्यावहारिक व्यक्ति की कल्पना कर रहे थे, वह उसी के अन्तर्हित था। वह व्यक्ति धर्म-प्रधान नहीं था। जातिगत भी नहीं। वह व्यक्ति अपने लिये राज भी स्वीकार नहीं करता था। वह चाहता था, समता,—एक भाव—केवल मानव का भाव—जो मानव की सन्तुष्टि के अन्तर्गत अपने-आप ही अन्तर्भूत होता हुआ दीखता था। अभयबाबू के उस वैज्ञानिक मानव में प्रेरणा थी, उमंग थी, जीवन की लालसा थी। आज के मानव के समान वह पूँजीवाद के श्राप से सिसक नहीं रहा था। अपितु, उस मानव में भी तेज था, बल था। वह अपनी जाति, अथवा देश के बाहर भी विश्व के मानव को जैसे अपनी आत्मा का ही एक कोना मानता था...

एक दिन बिस्तर पर पड़े हुए और विचारों में उलझे हुए, अभयबाबू कल्पना-लोक में उड़ गये थे। तो तभी, रानी एक पत्र हाथ में लिये हुए उनके पास आई और बोली—'भैया कल आ रहे हैं,—प्रातः आठ बजे।'

उस समाचार को सुनकर, एकाएक ही, अभयबाबू का अन्तस खिल गया। महेन्द्र कल आ जायगा, इस भावना ने जैसे उनके सभी विकारों को दबा दिया।

इक्कीसवाँ अध्याय

महेन्द्र जेल से आगया। अभयबाबू और रानी के बीच में जो एक अभाव भरा व्यतिक्रम आ गया था, वह दूर हो गया। महेन्द्र दुर्बल होकर लौटा था। इसलिये रानी की इच्छा थी कि भैया अब चाचा और चाची की इच्छा के अनुकूल चले। उनकी आकांक्षाओं को ही पूरा करे। यद्यपि, उसने अपना यह विचार अभयबाबू पर कभी प्रकट नहीं किया, किन्तु, उसे विश्वास था कि उनके साथ महेन्द्र भी उसके इस अनुरोध को मान लेगा। वह यदि सदा के लिये नहीं, तो कम से-कम कुछ समय के लिए अवश्य ही, चाचा के पास जायगा। इसी अभिप्राय को लिए हुए एक दिन प्रातःकाल में, जब रानी जलपान का सामान लेकर महेन्द्र के कमरे में पहुंची, तो उसे देखते ही, महेन्द्र बोला—'जीजी, मुझे जेल से अभी नहीं आना चाहिये था। वहां शान्ति थी, एकान्त था। पढ़ रहा था, मन लग रहा था। बताओ, आज जिस रौरव में मानव पड़ा है, इससे क्या छुटकारा मिलेगा,—शायद नहीं !'

रानी ने हाथ में ली हुई तश्तरी मेज पर रख दी और उसमें जो सामान था, वह महेन्द्र से खाने के लिये कह दिया।

लेकिन महेन्द्र के मन में जो कुछ आया था, उसी को लेकर वह फिर बोला—'मुझे दीखता है, ऐसे तो देश पंगु और निस्तेज हो जायगा! कैसा अचरज है कि सम्प्रदायवाद की दलदल में पड़ कर यहां का व्यक्ति राजनैतिक अधिकारों को पाना चाहता है। ऐसे तो निश्चय ही, उन्हें नहीं पा सकेगा। अँग्रेज जायेंगे, तो अपने

जीवन भर के पापों का बोझ यहाँ छोड़ जायेंगे । वह यहाँ के मानव को जानवर से भी हीन कर जायेंगे, जीजी !'

उस समय रानी को वह विषय रुचिकर नहीं लगा । उसके मन में कुछ और था । किन्तु जब फिर महेन्द्र ने उस बात को दोहराया, तो उसने अनुभव किया कि भैया के मन में शांति नहीं है । यह तो देश की व्यवस्था को देख कर विचलित है । इसी से, जैसे उसका मन तड़प गया । छाती में धड़कन का भी अनुभव हुआ ।

महेन्द्र बोला—'मैंने सोचा था कि जेल से बाहर आकर आराम लूँगा । मैं अपना क्षेत्र भी विस्तृत कर सकूँगा । लेकिन इस स्थिति में तो कुछ भी नहीं कर पाऊँगा, जीजी !'

उसी समय रानी ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—भैया, अब तुम घर जाओ—चाची, चाचा के पास जाओ । मेरी कसम, तुम एक बार जरूर हो आओ ।'

बात सुनकर महेन्द्र बोला—'हाँ, मैं वहाँ भी जाऊँगा । मैं मा और पिताजी के दर्शन करूँगा ।'

रानी ने फिर कहा—'अच्छा तो यही, तुम वहीं पर अपना क्षेत्र बनाओ,—चाचाजी के कहे अनुसार चलो ।'

यह सुन कर महेन्द्र मुसकराया । वह बोला—'जीजी, तुम समझती हो कि ऐसा करना क्या आसान है ! महेन्द्र जिस रास्ते पर चल पड़ा है, उससे पीछे मुड़ सकता है, क्या ! मानता हूं, कि मा और पिताजी की सेवा करना भी मेरा कर्तव्य है । परन्तु उससे भी ऊँचा जो कर्तव्य है, वह मेरे सामने है,—मेरा प्यारा देश !'

रानी ने पूछा—कल जेबुन्निसा आई, तुम्हें मिली ? वह दो बार आई थी । स्टेशन नहीं पहुँच सकी थी ।'

महेन्द्र ने कहा—'जेबुन्निसा मुझे मिल गयी।'

बलात् रानी ने फिर पूछा—'क्या कहती थी?—अपने विवाह के लिए भी कहती थी?'—तदन्तर ही वह गंभीर बन कर बोली—'तुम्हें इस दिशा में भी सोचना है, भैया! जेबुन्निसा भावनामयी है, नितान्त ममतामयी! मैं उसके लिये चिन्तित हूँ। उसकी ओर जब देखती हूँ, तो सोचती हूं, होना क्या है...उसका...तुम्हारा...'

तश्तरी में रखा हुआ लड्डू महेन्द्र खा गया। जब वह दूध पीने लगा, तो बोला—'तुम भी कुछ कहो न, जीजी!'

रानी ने अपने बँधे हुए स्वर को लेकर कहा—'स्वभाव से मैं जाति नहीं मानती। हिन्दू-मुसलमान में अन्तर भी नहीं। परन्तु आज जैसा वातावरण बन गया है, उसे देखते हुए क्या यह संभव है कि जेबुन तुम्हें मिले! निश्चय ही, वह नहीं मिलेगी!'—रानी अतिशय गम्भीर बन कर बोली—'यदि ऐसा हो भी गया, तो जरूर वह मुसलमानों द्वारा मार दी जायेगी! साथ में तुम्हारी भी हत्या हो जायगी!'

महेन्द्र ने दूध पी लिया। वह रानी की ओर देखकर कठोर और संयत स्वर में बोला—'जीजी, जहाँ तक मरने का प्रश्न है, मैं नहीं डरता। शायद जेबुन भी नहीं डरती। मैं तो...'

रानी ने जल्दी से आतुर स्वर में कहा—'पर भैया, चाचा और चाची को भी बहुत कष्ट होगा। ऐसा करोगे, तो जरूर, चाची मर जायगी। पागल हो जायगी। चाचाजी भी अधिक दिन नहीं टिकेंगे।'

महेन्द्र गम्भीर बन गया। वह जैसे उद्वेलित बन गया। उसी अवस्था में वह अपने-आप कहने लगा—'कैसी बात है..कितनी हीनता है, इस मानव की!' वह बोला—'देखो जीजी, जहाँ तक

रानी मुसकरा दी—'तुम्हें समझना भी नहीं चाहिये। जितना समझा है, वही क्या कम है। उसी ने तुम्हें जेबुन के निकट बैठा दियाहै।—'वह बोली—'जेबुन विवाह भी तुमसे करेगी, नहीं तो मर जायगी। अविवाहित ही इस जीमन को काट देगी!'

महेन्द्र बोला—मैं उसे समझाऊँगा। उससे कहूँगा कि वह अपने समाज में रहे—अपनी जाति में रहे। कहीं अन्यत्र विवाह कर ले।'

उसी समय अभयबाबू बाहर से आये। उनके साथ कुछ और भी व्यक्ति आये। कमरे में आकर अभयबाबू ने कहा—'महेन्द्र भाई, कुछ लोग तुमसे मिलने आये हैं।'

महेन्द्र कमरे से उठ कर चल दिया। जब वह बाहर के कमरे में पहुंचा तो उन चार-पाँच व्यक्तियों में जेबुन्निसा के पिता को देखकर वह उनकी तरफ झुक गया। उन्होंने कहा—'भाई, माफ करना, मैं कल न आ सका। जेबुन ने परसों बताया था।'

महेन्द्र ने कहा—'मैं खुद ही आपकी खिदमत में आता!'

इसके बाद वह अन्य व्यक्तियों से मिला। बातें चलीं और उसी सिलसिले में मौजूदा साम्प्रदायिक-संघर्ष का विषय जब उठा, तो एकाएक जेबुन्निसा के पिता ने गरम और रोषपूर्ण होकर कहा—'भाई, हम जानवर बन गये हैं...सदियों की गुलामी में रह कर जिन्दगी को भूल गये हैं!'—वह बोले—'समय आ गया है कि आज का यह पागल इन्सान रोयेगा और पछतायेगा!'

उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—'यह मजहबी पागलपन है! यही इन्सान को इन्सान से दूर करता है!

'बेशक!' —'जेबुन्निसा के पिता ने कहा—'जरूर, मजहब बुरा है!' वे बोले—'भाई, मैं बुड्ढा तो वह समय देख रहा हूं कि

इन्सान जल्दी ही बदलेगा। दुनिया बदल रही है, तो यहाँ का इन्सान भी मजहब छोड़ देगा। कल जो इन्सान पैदा होगा, वह रोटी-कपड़े को छोड़ कर और कुछ नहीं पा सकेगा!'

अभयबाबू ने कहा—'हाजी साहब, क्या मुमकिन है यह! मेरा ख्याल है, इन्सान बदले भले ही, मजहब रहेगा। रहना भी चाहिये।'

यह सुनकर हाजी साहब ने एकाएक कुछ नहीं कहा। क्षण भर बाद उन्होंने अभयबाबू और अन्य व्यक्तियों की ओर देखा। उनके मन में आया कि जिस मजहब की बात को कहा जा रहा है, उसने तो इन्सान का भला नहीं किया। खुदा ने जिस इन्सान को मिलने, बैठने और आपस में सम्बन्ध बनाने के लिए उत्पन्न किया, मजहब ने उसे जुदा कर दिया। इसलिये यह मिट जाना चाहिये,—मिट जाएगा!'

उसी समय अभयबाबू ने उनकी ओर देख कर कहा—'हाजी साहब, यह इन्सान, जिस संघर्ष में पला है, रहता है और उससे संबंध रखता है, उसके लिए यह भी आवश्यक है कि जिस संप्रदाय का भागी बने, उसके द्वारा निर्मित इन्सानियत के उसूल पाये और माने। वैसे जानते तो हैं आप, कि धर्म का और इन्सानियत का उद्देश्य जुदा नहीं, सभी का मिला-जुला है। यह तो ठीक है कि जाति और सम्प्रदाय मनुष्य को एक नहीं होने देते, परन्तु मेरा मत यह है कि इससे ऊँची भी एक समस्या है, वह भी अवस्था है कि जो इन्सान को एक बनाती है, पास-पास बैठाती है और साथ-साथ मरने-जीने के लिये बाध्य करती है। वह है, जीविका,—समाज की आर्थिक व्यवस्था,—पेट के लिए रोटी! आज हम गुलाम हैं, तो अन्य बुराइयों के साथ एक दोष यह भी हममें समाया हुआ है!'

हाजी साहब ने कहा—'भाई, मैं नहीं मान सकता। मैं इस उसूल को नहीं पकड़ पाता।'

अभयबाबू ने जरा मुसकरा कर कहा—'मेरे बुजुर्गवार, हाजीजी साहब! आपका फर्माना भी बजा हो सकता है। क्योंकि जिस दलदल में आप पड़े हैं, उससे प्रत्येक समझदार आदमी का मन ऊब गया है। लेकिन सवाल तो यह है कि क्या इंसान इसी तरह, लड़-झगड़ कर मरेगा? मैं कहता हूँ,—हाँ! यह इसलिये कि मजहब और धर्म के नाम पर जितने झगड़े होते हैं, सचाई यह है कि उसके अन्दर बात और होती है। यह तो बहाना है, हाजी साहब! वैसे, सच मानिये मेरा अपना जाती ख्याल यह है कि मजहब मिट जाय, जाति मिट जाय किन्तु यह होने का नहीं। और सोचता हूँ, यह न भी हो, तो अच्छा है। नहीं हो सकता। क्योंकि इन्सान की भूख सिर्फ रोटी से नहीं बुझती। इसे कुछ और भी चाहिये। नमाज, पूजा या गिरजे में जाकर दुआ करना। यह ठीक है कि आज-कल उसका कोई अर्थ नहीं रह गया। लेकिन, आखिर इसके अलावा आपके पास और कौनसा उपाय है कि जब आप अपने दिल को धीरज दें। शान्ति की साँस लें। और इन्सान ही क्या, चींटी तक के लिये अपने मन में दया की इच्छा पायें। धर्म यही सिखाता है। खुदा की दुआ करके हम भले ही जन्नत की कल्पना करें, लेकिन सच यही है कि हम खुदा को मान कर, इंसान को मानें....अपने दुख-सुख के साथ दुनिया की पीड़ाओं को भी देखने का यत्न करें...

उसी समय एक व्यक्ति ने कहा—'अब क्या होगा...कैसे इस जिन्दगी का कारवां चलेगा! आज तो इन्सान जंगली बना है!'

सुनते ही, अभयबाबू ने कहा—'जो कुछ होगा, ठीक होगा! गुलामी में पड़ा हुआ इन्सान अपनी सुस्ती और प्रमाद को छोड़ने

के लिये आज जिस प्रकार आपस में लड़ पड़ा है, आप देखियेगा कि यह आने वाले कल में फिर मिल कर चलेगा। लड़ना इसका स्वभाव है। युद्ध आवश्यक है। जीवन, जागृति पाने के लिये मनुष्य को सक्रिय बनना पड़ता है। एक कांग्रेसी के रूप में, महात्मा गांधी के अहिंसावाद को भी ऊँची दृष्टि से देखता हूँ। पर उसे जन-साधारण की वस्तु नहीं मानता। मैं तो सोचता हूँ कि इंसान भी एक जानवर है। अपने अधिकार के लिए, धन और जमीन के लिये इसका लड़ना अनिवार्य है। प्रतिस्पर्धा के इस युग में ही क्यों, मानव के गत इतिहास से इसका परिचय मिलता है। देखता हूं, आज सब डर रहे हैं। बाजार में चलते हुए भी काँपते हैं। एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, सब लोग ! जानते हैं, यह क्यों है ? क्या दुर्बलता के कारण ? मैं कहता हूँ, देर की गुलामी ने कमजोर और दब्बू बना दिया है, यह इन्सान ! सन्देहशील और कायर कर दिया है। इसलिये आवश्यक है कि रोग का निदान और उपचार यही है कि यह लड़ें.. यह मरें !'—वह बोले—'आखिर बड़ा देश है, कहाँ तक मरेगा, कहाँ तक लड़ेगा,—अन्त है इसका भी ! उज्वल और पवित्र लक्ष दीखेगा। उद्देश्य छोटा होगा, तो इन्सान का रास्ता भी छोटा होगा।'

उसी समय, हाजी साहब ने एकाएक उद्वेलित होकर कहा—ओह, मेरे अल्लाह !

अभयबाबू ने चौंक कर पूछा—'क्या, हाजी साहब !'

हाजी साहब ने कहा—'तुम कठोर हो...पत्थर हो !' और उन्होंने तभी उस विषय को छोड़ कर महेन्द्र की ओर देख कर कहा—'आप दुर्वल हो गये हैं, बाबू !'

यह सुन कर महेन्द्र मुसकराया—'वहाँ यही होना था !'

'हाँ, वहाँ अच्छा भोजन नहीं मिलता,—आराम भी नहीं !'

हाजी साहब ने कहा—'मुझे जेलखानों की जिन्दगी का पता है। किसी जमाने में मैं भी जेल में नौकरी कर चुका था। पोस्ट अच्छी थी, फिर भी वहाँ के जुल्म देख कर मैं छोड़ आया।'—उन्होंने कहा—'मैं अपनी आँखों से जेल में कई आदमियों को इसलिए मरते देख सका कि जेलर ने उन्हें पिटवाया और जितनी भी सख्ती वह कर सकता था, करने से बाज नहीं आया!'—वह बोले—'आज भी सोचता हूँ, आदमी कठोर है, सच, पत्थर! इसे जरा भी लिहाज नहीं कि यह किस तरह इन्सानियत का खून करता है,—कुर्सी पर बैठ कर पागल के कारनामे...'

महेन्द्र बोला—'हाजी साहब, यही होता है! अधिकार आदमी को अन्धा बनाता है!'

हाजी साहब ने कहा—'हाँ, भाई, यही होता है,—सच!' और उन्होंने कहा—'खुदा तुम्हें मुबारिक रक्खे,—तुम सबको! हमनें तो जिन्दगी, अपने खाने-पीने में बिता दी...अपनी ही मतलब परस्ती में खो दी! तुम लोग हो, जो अपनी इच्छाओं को मार कर, जनता के लिए कष्ट उठाते हो...जेल जाते हो! इन्सान को इन्सान मानते हो...उसी में खुदा की रूह देखते हो!'

'आपकी दुआ चाहिये, हाजीजी! वैसे जानते तो हैं ही आप, इन्सानियत की खिदमत करना, आसान नहीं। लोहे के चने चबाना है।' अभयबाबू ने कहा।

'बेशक! बेशक! तुम ठीक कहते हो, बाबू!' और उन्होंने खड़े होने के लिये अपनी बेंत का सहारा लिया। चलते हुए, उन्होंने महेन्द्र से कहा—'आना। जेबुन की मां से भी मिलना।'

'जी, जरूर! आज ही!'

और हाजी साहब सबसे सलाम करके चले गये। लगा कि एक फरिश्ता,—वह श्वेत सन्यासी—उनके बीच से चला गया।

बाईसवाँ अध्याय

विशाल देश का विभाजन हुआ और पाकिस्तान बन गया! कदाचित उस महान परिवर्तन की यह भी एक प्रतिक्रिया थी कि हिन्दू-बहुल संख्या में होने के नाते हिन्दू-राज की कल्पना करें। किन्तु कांग्रेस ने इस मत को महत्व नहीं दिया। यदि कांग्रेस द्वारा भी ऐसे अव्यवहारिक और अनुत्तरदायी प्रस्ताव का समर्थन किया जाता, तो निश्चय ही, देश का दावानल भभक उठता जन-समाज आग की भट्टी बन जाता। जिस प्रकार पाकिस्तान में मार-काट और लूट का बोलबाला रहा, वहां का हिन्दू-नागरिक अनाथ बन गया, उसकी प्रतिक्रिया यदि भारत में भी होती, तो देश अपने-आप ही जल उठता, राख बन जाता! अंग्रेज-जाति का उद्देश्य यों सरलता से सफल हो जाता। कांग्रेस की यह महान दूरदर्शिता थी कि उस ने प्रतिक्रिया की आग में कूदते हुए देश को रोका। अशान्त-मानव को शान्त रहने का उपदेश दिया। यही कारण था कि अभयबाबू और उनके साथी भारतीय राष्ट्र का उत्थान करने के लिए देश की किसी विशेष जाति या समुदाय का आधिपत्य इसलिए नहीं स्वीकार कर पाये कि वह जाति संख्या में अधिक है और शक्ति सम्पन्न है। कांग्रेस तथा अन्य प्रगतिवादी समाजों ने अन्त्यजों और अल्पसंख्यकों को उपेक्षित बनाये रखने का समर्थन नहीं किया। उन्होंने समय की पुकार को सुना। देश की चलती हुई नब्ज की गति को भी पहचानने का प्रयत्न किया। उस प्रयत्न में अभयबाबू और उनके साथियों का विशिष्ट भाग था। उनका मत था कि व्यक्ति चाहे वह अल्पसंख्यक दल का हो, या बहु-संख्यक जाति का,

देखना यह चाहिए कि उसने अपने जीवन का कितना समय समाज-सेवा और देशसेवा के लिए दिया है। जन-कल्याण के लिए वह कितना उदार है। ऐसा व्यक्ति निश्चय ही, देश का नेता है, राष्ट्र का सूत्रधार बनने का भागीदार हो सकता है। जाति और वर्ण को प्रश्रय देना देश के साथ धोखा है। लेकिन जिस साम्प्रदायिकसंघर्ष का देश को सामना करना पड़ा, उसने अन्य समस्याओं से एक समस्या यह भी पैदा की कि जातीय भावना को प्रोत्साहन दिया जाय। इस प्रकार स्वेच्छाचारियों को आगे बढ़ने का अनायास ही रास्ता दिख गया। फलस्वरूप, उन्होंने अवसर से काम लेना आरम्भ किया। राष्ट्र के उद्योग-धन्धों का जीवन भी खतरे में पड़ गया। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य पैसा बन गया! वादों और आदर्शों की दुनिया में रहने वाले इन्सान ने जहां जातीय-भावना को प्रोत्साहन दिया, तो उसने एक तीर से दो निशाने साधने का प्रमाण भी उपस्थित किया। पैसे के लिए बिका हुआ पूंजीवाद एक ओर जातीय-भावना को प्रोत्साहित करता रहा और दूसरी ओर चोर-द्वार से पाकिस्तान को अपना माल भेजता रहा! उसने राष्ट्र की विवशता को लक्ष्य नहीं किया! जाति की दुरव्यवस्था को नहीं देखा। उसने स्वार्थ का पूजन करना ही अपना दृष्टि-लक्ष्य निर्धारित किया। अचरज की बात तो यह, यही पाकिस्तान ने किया! जिस मुस्लिम धनिक-समाज ने भारत में राष्ट्र-विरोधी नारे लगा कर पाकिस्तान बनाने के लिए धन दिया, अपने मजदूर और मध्यम वर्गीय समाज को मजहबके नामपर खून देने के लिए उद्बोधित किया, उसी ने, अवसर पाते ही, अपने देश और जाति की आवश्यकताओं का खून करके चोरी-चोरी भारत को माल दिया और बदले में धन उपार्जित किया! कदाचित् इन्हीं बातों को देखकर, अभयबाबू और उनके साथियों का मत निश्चित हुआ कि इस दुर्बल मानव में,

जातीय-भाव पैदा किया जाता है......पूंजीवाद द्वारा अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए जन-साधारण को विक्षिप्त और खूनी बनने का उपदेश दिया जाता है! उन्होंने अनुभव किया कि देश में जिस प्रकार का ईर्षित वातावरण पैदा हुआ, उसमें अंग्रेजों का तो हाथ था ही; साथ ही, भूखे और दरिद्र भारत की उस चिर-प्रतिक्षित और चिर-कालिक स्पर्धा का भी प्रतिक्रियावादी रूप प्रगट हुआ कि जिसे हिन्दू-समाज ने चिरकाल से पोषण किया। चांदी-सोने की कल्पना में लीन बना हुआ हिन्दू दीर्घकाल से इस बात को भूल गया कि भावना क्या है......आदर्श क्या! जिसका एक कारण यह भी था कि हिन्दू देर से संघर्ष करता रहा! उसे बाहरी आक्रमणों का सामना करना पड़ा। जिस धर्म पर वह आश्रित रहा, उस ने भी अविवेक प्रदान किया। धर्मान्ध हिन्दू-समाज अहं भाव में खो गया! जिस आत्म-प्रतिष्ठा के लिए हिन्दू युगों से संघर्ष करता रहा, अन्ततः वह स्वेच्छित और कायर भी बन गया! परिणाम स्वरूप बरबस ही, उसने दास-वृत्ति को स्वीकार कर लिया! अतएव, स्वभाववश पड़ौसी के सम्बन्ध और सदियों से चले आये नाते को तोड़ कर मुसलिम-समाज पृथक तो हुआ, परन्तु भारत के घरों से जो उसके पुराने सम्बन्ध बन गये थे, उन्हें क्या भुलाया जा सकता था? मन और आत्मा के इस प्रवाह को राजनीति का वह बड़ा पहाड़ भी नहीं रोक सका! फलस्वरूप जन-साधारण तड़प गया। वह कराह उठा, कि आह! बुरा हो उन लोगों का कि जिन्हों ने पाकिस्तान बना दिया...हमारे लिए जब भारत में स्थान नहीं रहा, तो क्या पाकिस्तान रूपी भेड़िया उनकी रक्षा करेगा...वह खा जायेगा! पंजाबी मुसलमान पंजाबी हिन्दू को बरदाश्त कर सकता था, परन्तु गैर-पंजाबी मुसलमान तो जैसे उसके लिए गैर था, अपरिचित था! हाय! धर्म और जाति का भाव प्रान्तीयता ने दबा

लिया ! जिन लुटेरों ने हिन्दू-नारी और हिन्दू-धन को लूटा, उन्होंने भारत से गये मुसलमान को भी नहीं बख्शा ! उनकी बेटी ली, धन लिया ! फलस्वरूप, भारत से गया हुआ मुसलमान तड़पा, विचलित हुआ और भारत की ओर ललचायी निगाह से देखने लगा ! उसने समझा कि वह ऐसा दीन है, इतना याचक कि जिस का स्थान कहीं नहीं रहा ! वह न भारत का रहा, न पाकिस्तान का रहा ! गृहहीन और धनहीन बना हुआ मुसलमान जैसे सिर धुनने लगा !

उस समय, देश में प्रतिक्रियावादी आवाजें उठ रही थीं। राजनीति के खेल में कांग्रेस हार गयी। वह अवसरवादी नहीं बनी। वह अन्त तक अहिंसा के सिद्धान्त पर बनी रही। ब्रिटिश-जाति और मुस्लिम-जाति ने उसी के आदर्श पर शह दी और राष्ट्र के मर्मस्थल पर गहरी चोट कर दी। किन्तु कांग्रेस के समान कदाचित देश के बहुल-समाज को भी इस बात का भरोसा नहीं था कि जिस मुसलिम-जाति ने देश के जीवन-मरण में समान बनकर अपना कर्त्तव्य निबाहा, हिन्दुओं के समान भारत को अपना घर बनाया, तो क्या वह उसी घर में दीवार बनायेंगे ! राष्ट्र का अंग-भंग करेंगे। जब नजीर अहमद ने प्रजा-संघ का काम छोड़ कर मुसलिम-लीग का कार्य आरम्भ किया तो अभयबाबू के मन में आया कि वे मित्रों से कहें, समाज को सुनायें कि मुसलिम जाति की अन्य विशेषताओं के साथ एक यह दुर्गुण भी इसमें है कि इसका व्यक्ति जाति और धर्म के लिए किसी भी बड़े सत्य का खून कर सकता है ! पुरातन से चले आये सम्बन्ध तोड़ सकता है। मुसलमान मजहब की गोद में जाते ही अन्धा बन सकता है ! किन्तु इस दुर्गुण की बात को पाकर भी, अभयबाबू के मन में बात उठती, कि हाय !

जिस जाति में इतना बल हो,–संघठन हो–वह जाति फिर भी हीन है, कायर है, स्वेच्छाचारी है–तो क्यों ! वह कहते, ऐसी जाति को मरना नहीं चाहिए। ऐसे सम्प्रदाय के प्रत्येक व्यक्ति को मुहम्मद और रसूल बनना चाहिए। परन्तु उनकी छाती में धक्का लगता। मन तड़पता। उन्हें दीख पड़ता कि पृथक राज्य के लिए,–धन और स्वत्व पाने के लिए–मुसलिम जाति ने खून का दरिया बहा दिया.. समूचे देश को कत्ल गाह बना दिया ! अभयबाबू को अपने मुसलिम मित्रों पर अभिमान था। नजीर मुहम्मद तो जैसे उनके दिल का कोना था। जब वह छिना गया, तो उन्हें लगा कि सत्य नहीं रहा... आदमी विश्वस्त की परिधि से नीचे गिर गया ! क्या ही अच्छा होता कि वह किसी मुसलिम के लिए अपने प्राण दे देते,–उसके प्राण को अपना ही एक प्राण बताते,–जैसे जीवन का सांस ! परन्तु वे तो विवश बन गये। मानो जीवन के चौराहे पर ही खो गये ! नजीर मुहम्मद के समान उनके अनेक मुसलिम साथियों ने साथ छोड़ दिया। बरबस ही, उन्हें अपना दुश्मन मान लिया...

इसी प्रसंग पर एक दिन महेन्द्र ने नितान्त खेदपूर्ण होकर कहा–अभयबाबू, भारत में यही होना था, हो गया ! उसने बताया, यह देश कभी भी अखण्ड नहीं रहा। न हिन्दू-जाति व्यवस्थित रही। मध्ययुग में उत्पन्न हुए सम्राट भरत ने कि जिसके नाम पर 'भारतवर्ष' नाम से यह देश पुकारा गया, उसके बाद का इतिहास ही इस बात का साक्षी है कि भारत अजेय और अखण्ड नहीं रहा। जिस जाति से हम सम्बन्धित हैं, मैं कहता हूँ, इसका विवेक सदा ही हीन बना रहा ! जाति को चलाने वाले अदूरदर्शी तो रहे ही, उन्होंने मानवता के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं किया। वह कहने लगा—देश का वह भाग कि जहां मुसलिम-बहुल जाति है, इस बात का साक्षी है, इतिहास भी यही बताता है कि वहां का निम्न

और भूखा हिन्दू-समाज, स्वतः ही, दूसरी जातियों में चला गया! वह मुसलमान बन गया। लाखों की संख्या में हिन्दुओं ने प्रसन्नता से दूसरा मजहब स्वीकार किया।—वह बोला—'परिस्थिति आज भी वैसी ही है। हिन्दू-जाति के माथे पर कलंक का टीका लगाने वाले अब भी मौजूद हैं। उनके साथ में जन-शक्ति है!'—वह कह रहा था,— 'आज का समाज पैसे पर चलता है। पैसेवाला ही समाज का निर्माण करता है। हिन्दू-जाति में जो पैसे वाले हैं, वे पैसे की चिन्ता छोड़कर अन्य किसी बात की चिन्ता नहीं करते। वह देखना भी पसन्द नहीं करते कि उनका समाज कैसा है...कितना निर्बल और निस्तेज है!' ये व्यक्ति समाज के वह जहरीले कीड़े हैं कि दूसरों का नाश कर सकते हैं, परन्तु अपनी रक्षा नहीं कर सकते। यही कारण है कि हिन्दू-जाति मिट रही है। निराश्रित है,—हिन्दू जाति!' —महेन्द्र ने कहा—'भाई, देश स्वतन्त्र हो गया है। यह रहेगा। प्रगति करेगा। पुराने संस्कार और पुराने विचार मिट रहे हैं। देश ने करवट ली है तो जीवन-सम्बन्धी समस्याओं का उठना भी स्वाभाविक है। परन्तु सत्य अटल है। महान हिन्दू-संस्कृति को जीवित रखने के लिए, यह भी एक दिशा है कि जिसका स्वतः ही निर्माण हो गया है। शरीर नीरोग रखने के लिए आपरेशन किया गया है। यही होना था!

रानी भी उस समय वहां बैठी थी। उसने कहा— 'लेकिन मुसलमानों ने जिस जिहाद की आवाज उठाई, वह भी क्या सत्य थी! इस दुर्गन्ध का उठना भी स्वाभाविक था!

महेन्द्र हंसा। वह बोला–' 'जीवित जातियां सदा ही विद्रोह करती हैं। वह जीना जानती हैं। इस कला में हिन्दू-जाति पिछड़ गयी है। और जीजी, इस सिद्धान्त को तो तुम स्वीकार करोगी कि अधिकार लिया जाता है, विरासत में कोई नहीं देता!

'तो हो क्या ?...कैसे ?'—एकाएक अभयबाबू ने सांस छोड़ कर कहा–'इस अवस्था में भी हमें कुछ करना है। देखते हो, देश समस्याओं से घिरा है। दिखता है कि मानव तड़प उठा है... सिसक रहा है !'

महेन्द्र ने कहा– 'घबड़ाइये नहीं, जो कुछ हो रहा है, होना है ! यही होता है। जब-जब जहां परिवर्तन हुए, यही हुआ है। आंधी उठी है तो दब जायगी। बहुतसे दूषित संस्कारों को उड़ा ले जायगी, यह आंधी ! इसके बाद आप देखियेगा, यह लड़ने वाले व्यक्ति, अपने पेट के प्रश्न पर एक हो जायेंगे। जिस प्रकार पहिले कन्धे-से-कन्धा मिलाकर जीविका के लिए सक्रिय थे, उसी तरह आगे भी रहेंगे।'

अभयबाबू ने कहा–'हिन्दू-समाज भी उठ रहा है। बदल रहा है।'

महेन्द्र बोला–'अभी नहीं उठ रहा है। उठेगा। जितना पिटेगा, बलशाली बनेगा। हिन्दू-समाज मरेगा नहीं। एक बार और, यह समाज अपना सांस्कृतिक-आदर्श विश्व के सामने रख सकेगा। भारत शान्ति दूत बनेगा। जिस गन्दी राजनीति को आज प्रश्रय दिया जा रहा है, विश्व एक दिन स्वतः ही उसे छोड़ देगा। भागता हुआ मानव शान्ति की सांस लेनी पसन्द करेगा।

और वह शान्ति, वह आदर्श भारत के पास है। वह इसके अक्षत-भण्डार में सुरक्षित है !' उसने कहा—'गांधीजी उसी भण्डार के एक हीरे थे, महान, तेजस्वी ! समय आयेगा कि भारत-माता अपनी कोख से ऐसा ही एक और हीरा संसार को भेंट करेगी ! वह शक्ति-दूत, वह तेज-पुँज विश्व का पथ-प्रदर्शन करेगा।'

एकाएक रानी ने चौंक कर कहा—'तुम कह रहे हो ! तुम्हारा विश्वास है ?'

महेन्द्र ने सरल भाव से कहा--'हाँ, जीजी! यह मेरा विश्वास है।' वह बोला--जातीयता मुझमें भी है। होनी भी चाहिये। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि हम दूसरे को हीन मानें--उससे दूर-दूर रहें। अथवा उसे सांप का बच्चा समझ लें। हिन्दू-जाति ने मुसलमानों को यही समझा है। मुहम्मद गौरी ने जब सारनाथ पर चढ़ाई की, तो सुना जाता है, साठ हजार ब्राह्मणों ने हाथ जोड़ कर अपने जीवन की उससे भिक्षा मांगी थी। मैं कहता हूँ यह कायरता है! कोई चढ़ कर आता है,--चाहे अपना भाई आक्रमण करता है, तो उससे लड़ना, अपनी रक्षा करना, हमारा आत्मिक और मानवीय कर्तव्य होना चाहिये। मैं कहता हूँ यदि व्यक्ति अथवा समाज अपनी रक्षा नहीं कर सकता तो वह दूसरों की क्या करेगा! हिंदू-जाति ने कहीं चढ़ाई नहीं की। यह घर में बैठी रही। परन्तु मुसलिम जाति ने अपने घर से निकल कर, पहाड़ों, नदियों और सैकड़ों मीलों के रेगिस्तान को लांघ कर भारत पर चढ़ाई की। वह हारे और फिर शक्ति-संचय करके आये। अन्त में विजयी बने। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की प्रथा के अनुसार सिद्धांततः मुसलमान भारत के स्वामी बने। हिंदुओं पर सदियों तक शासन करते रहे। किंतु हिंदू फिर भी उन्हें अस्पृश्य मानते रहे और अपने-आपको भारत-भूमि का एकमात्र स्वामी समझते रहे! भला इसमें सत्य कितना है? क्या यही हिंदू-जाति की दूरदर्शिता है—छिः! 'इतना कहते हुए महेन्द्र लाल बन गया और बोला—'मैं लज्जा से सिर झुकाता हूँ जब सोचता हूँ कि वीर राजपूत जाति दास बन गयी! आखिर क्यों? इसलिये न कि वह सदा आपस में लड़कर अपनी शक्ति क्षीण करती रही। और जब यवन-सम्राटों से तलवार चलानी पड़ी तो उनकी शक्ति संघटित नहीं रही...धर्म-भावना भी उस राजपूत-जाति की प्रगति में

बाधक रही। मेरा मत है कि वे राजपूत, राजा तो बने, परन्तु राजनीति उनके मस्तिष्क से दूर-दूर रही!' उसने कहा—'अपने पुरुखों की भांति मुस्लिम-जाति आज भी लड़ाकू है। वह बलिदान करना जानती है। मरना और मारना मानो उस जाति की बपौती है। इसलिए वह जाति आज भी सफल है। मजहब के नाम पर हजारों मुसलमान हमारी आँखों के समक्ष कट मरे हैं। इस प्रकार जरा हिंदुओं को तो तैयार कर दीजिये! इसके विपरीत मुसमान, जाति तथा धर्म के नाम पर एकत्र होते हैं और एक ही लक्ष्य में बंध कर अपना मार्ग प्रशस्त करना जानते हैं।'

रानी उपेक्षा के स्वर में बोली—'भैया, यह बहादुरी नहीं। 'जीयो और जीने दो' हिन्दू संस्कृति की पुरानी परम्परा है। यही आदर्श है। यही महानता है, इस मानव की!'

बात सुनकर महेन्द्र हँसा। उसने अभयबाबू को देखने के बाद रानी की ओर देखा, तो बाला—'जीजी, आदर्श सभी के भले हैं। ईसाई क्या कम आदर्श वाले हैं। महान ईसा ने भी संसार को एक वस्तु दी,—प्रजातन्त्र की नींव ही उसके द्वारा पड़ी। परन्तु जिस प्रकार तुम्हारे समाज ने अपने धर्म और संस्कृति को महत्ता को नहीं समझा, उसी प्रकार अन्य धर्मावलम्बियों ने भी स्वीकार नहीं किया। दोष सबका है। आज के संसार को ईसा मसीह के पुजारियों ने अपने तेज तथा जहरीले दाँतों के नीचे दाब लिया है! विश्व का शोषण उन्हीं के द्वारा हो रहा है!

अभयबाबू ने कहा—'आज के संसार की यह भी एक समस्या है। कठोर और विषम है।'

महेन्द्र ने कहा—'इसका एक कारण यह भी है कि भारत में जो धर्म अथवा सम्प्रदाय चला, निश्चय ही, उसका उद्देश्य महान रहा,—जैसे भगवान बुद्ध का जीवन! परन्तु मेरा अपना

मत है, हमने कार्य रूप में कुछ भी स्वीकार नहीं किया। मेरा यह भी मत है कि जो व्यक्ति, समाज अथवा धर्म जब तक झोंपड़ियों में रहा, तब तक वह सक्रिय और आदर्श की पूजा करता रहा है, परन्तु जहाँ उसे राज्यश्रय प्राप्त हुआ और वह भी रत्नों की कल्पना में लीन बन गया, तो निश्चय ही, उसका रूप विकृत हो गया ...वह पतित बन गया ! भौतिकवाद रूपी साँप देर से इस विश्व का भक्षण कर रहा है। और आज तो मशीन युग है,—स्टीम-युग;—जो नये विश्व का प्रणेता बन चुका है ! विज्ञान अपना कौशल दिखा रहा है। स्पर्धा की गोद में यह विश्व पनप रहा है !

'और भारत ?—यह महान देश ? यहाँ का हिन्दू और मुसलमान ?' रानी ने कहा—'यहाँ तो कोई भी नहीं बदला। देश नहीं बदला !'

'न, जीजी ! बदला है !'—महेन्द्र ने एकाएक ही आतुर बन कर कहा—'किन्हीं विशेष जातियों को देख कर किसी देश को नहीं तोला जायगा। सामुहिकता देखी जायगी। उन्हीं को जीवन पाता देख कर देश को समृद्धि पहचानी जायगी। मुसलिम जाति के विषय में तो मेरा मत है कि यह जाति एक दिन विश्व की सबसे बड़ी प्रगतिशील जाति थी। जिसका कारण यह था कि इस जाति के प्राण, मुहम्मद साहब निःसन्देह संसार के महान व्यक्ति थे। वह जनता-जनार्दन की वेदना में अपने को खो चुके थे। वे मानव की मानवीयता को जीवन भर पाते रहे और देखते रहे। मुसलिम जाति में जिस स्वेच्छा का स्फुरण हुआ, उसका तो एक कारण था। यह जाति अभावमय थी। रेगिस्तान की दुनिया में बसी हुई थी। शेष संसार से संबन्ध रखने की लालसा भी स्वाभाविक थी। परिणामतः जो व्यक्ति भारत पर चढ़ाई करके आये, वे समुदायवादी भी थे और साम्राज्यवादी भी थे। वे धन, वैभव

के साथ राज्य भी चाहते थे।' उसने कहा—'जंगल में, बनों में और उस जलवायु के रह-सहन में वह जाति स्वभाव से लड़ाकू थी। अपने इसी बल के आधार पर वह एक दिन दुनिया में आगे बढ़ सकी और संसार में अपना पैर पसार सकी।'—वह कहने लगा—'वे लोग भ्रम में हैं जो यह समझते हैं कि राजनीति से धर्म और सम्प्रदाय का कोई सम्बन्ध नहीं। सचाई यह है, आज की तरह, कल भी,—पुरातन से—धर्म और मजहब के नाम पर जाति और देशों ने अपने पक्ष को संगठित किया और बड़े-से-बड़े युद्धों का सृजन किया। महाभारत का युद्ध इसका प्रमाण है! मुसलिम जाति यदि अपने पक्ष को सबल बनाने के लिये कोटि-कोटि जनों में एक साथ अपने धर्म और मजहब का महत्व न दर्शाती, तो क्या यह जाति फैलती और आज स्थिर तथा दृढ़ दिखाई देती? न, कदापि नहीं। संसार की अनेक यशस्वी जातियाँ मिट गयीं तो यह जाति भी कभी की लोप हो गयी होती!'

अभयबाबू ने कहा—'यह सच है! यही हुआ है!'

महेन्द्र बोला—'धर्म और मजहब तो सम्राटों और शक्तिधारियों का एक शस्त्र है कि जिसकी प्रेरणा पर शतरंज के मोहरों के समान जन-समाज को चलाया जाता है और जनता को सिर कटाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। एक शब्द में कहूँ तो बात यह है कि सम्राट और उसका पोषक पूँजीवाद, जनता को मूर्ख बनाता है और प्रकाश से अन्धकार में ढकेल कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है!'

रानी ने कहा—'तो फिर आने वाले कल में क्या सम्राट रहेगा...यह पूँजीवाद...?'

'हाँ, यह नहीं रहेगा, प्रायः सभी जगह से हटा दिया गया है। परन्तु साँप मर गया तो क्या, उसका बच्चा पनप रहा है! वह

फुंफकार रहा है। उसका फन मसल देना भी इस विश्व के लिए श्रेयस्कर रहेगा।' महेन्द्र ने कहा।

मानो शंकित बनकर रानी बोली—'क्या कम्युनिज्म आयेगा? वह पूँजीवाद का अंत करेगा?'

महेन्द्र बोला—'हाँ, जीजी! कम्युनिज्म आयेगा। आ गया है। वह भारत का द्वार खटखटा रहा है।' किंतु तभी उसने विचलित बनकर कहा—'परन्तु मुझे भय है कि भारतीय-समाज कम्युनिज्म को भी नहीं समझ सकेगा। आज जिस कम्युनिज्म का नारा लगा कर देश की सम्पत्ति को नष्ट किया जा रहा है, सरकार को समस्याओं से घेरा जा रहा है, वह तो भारत की छाती पर विदेशी प्रहार है...भारत की कमर तोड़ने का विचार किया जा रहा है!'

रानी ने चंचल बन कर कहा—'तो क्या हो!'

महेन्द्र हँस दिया—'भारतीय-समाज अपनी नीति पर चल कर ही जीवित रहेगा, जीजी!'

'हमारी कोई नीति है—परम्परा है?' रानी ने फिर टंकोरा।

महेन्द्र मुसकराया—'नीति है। हमारी परम्परा महान है। चिर दासता के कारण वह भुला दी गयी है। प्रजातन्त्र का सिद्धांत तो हमारी संस्कृति का मूल-मन्त्र रहा है।'

लेकिन उसी समय अभयबाबू के मन में आया कि कहें, यह नहीं होगा। भारतीय-समाज स्वार्थी और दम्भी है। धर्म और जातीय भावना ने शून्य बना दिया है। बर्बर मनुष्य क्या अहिंसा का पाठ ले सकता है। जो देश गांधी-सरीखे महान व्यक्ति का खून कर सकता है और आत्मघाती नीति अपना सकता है, वह समाज नहीं रहेगा। मर जायगा। परन्तु उन्होंने यह कहा नहीं। शब्दों को अपने मुँह में ही रोक लिया।

उसी समय महेन्द्र ने फिर कहा—'जीजी, तुम यह नहीं समझी' कि धर्म सर्वथा मिट जायगा। न, शुद्ध सांस्कृतिक स्वरूप तो रहेगा। लेकिन, आज के बाद जो कल आयेगा, उसमें बताया जायगा कि धर्म और मजहब पीछे हैं; पहिले रोटी है,—जीवन का आधार; इसलिए उसको पाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य रहेगा। संघर्षशील मानव धर्म के पोथे खोल कर नहीं बैठेगा। वह देश और समाज के लिये अपना जीवन अर्पित कर देगा। हम राष्ट्र के होंगे और राष्ट्र हमारा गौरव रहेगा।'

अभयबाबू देर से मौन थे। रानी जैसे खोयी-खोयी-सी बन कर कभी उनकी ओर देखती, कभी महेन्द्र की ओर! लगा कि जैसे वह नहीं समझ पा रही थी कि कल क्या होगा,—कैसे होगा!

उसी समय अभयबाबू ने साँस छोड़ कर पूछा—'अब तुम्हारा क्या प्रोग्राम होगा, महेन्द्र बाबू घर जाने का?

महेन्द्र ने कहा—'अभी कोई निश्चित नहीं। शायद वहाँ भी जाऊँ।'

रानी ने कहा—'नहीं, जरूर। वहाँ पहिले जाओ, भैया!'

महेन्द्र ने सुना और मौन रह गया।

किन्तु तुरन्त ही, फिर अप्रतिभ बन कर रानी बोली—'हां, तुम्हें जाना चाहिये!'

उदास भाव में महेन्द्र ने कह दिया—'अच्छा, जीजी, जाऊँगा!'

तदन्तर ही, अभयबाबू गम्भीर स्वर से बोले—हां, भाई! वहां भी हो आओ। जल्दी लौटना। पत्र का कार्य सम्भालना है। संघ का काम भी शिथिल हो रहा है। जो कुछ हो रहा है, उसके साथ हमें भी चलना है। न चलें, तो मिट जाना है। इस परिवर्तन से डरने

का अर्थ आत्मघात होगा।

महेन्द्र ने कहा—'मैं कल घर जाऊँगा।'

जब चले जायें, तो समझो!' रानी ने उलाहना देते हुए कहा।

'ओह! तो तुम मुझे भगा देना चाहती हो, जीजी!' हंसते हुए महेन्द्र बोला।

यह सुन रानी ने जाने कैसी ममता के साथ महेन्द्र की ओर देखा। उसने कहा—'भैया, ऐसा भी सोच पाऊँगी, क्या! मुझे तो चाची का ध्यान आता है। सच, वह तड़पती होंगी। चाचाजी भी इसी चिंता में होंगे। तुम जाओ और लौट आओ।'

महेन्द्र ने खड़े होकर कहा—'अच्छा, कल जरूर चला जाऊँगा। सामान बँधवा देना।'

'तो जरूर!'—मानो समर्थन पाने के लिये रानी ने फिर कहा।

'हाँ, कल जरूर चला जाऊँगा, जीजी!'

यह सुनकर, रानी ने महेन्द्र की ओर देखा और बलात् अपनी आँखों को झुका लिया। लगा कि उन आँखों में ममता का श्रोत उमड़ आया, जिसे रानी ने बरबस ही, रोक लेने का प्रयत्न किया था। वह बहिन थी और महेन्द्र एक ही उसका भाई था, जो मा-जाया न होकर भी श्रेष्ठतर बन गया था।



तेईसवाँ अध्याय

दूसरे दिन के प्रातःकाल में महेन्द्रकुमार जिस गाड़ी से घर के लिए स्टेशन पहुँचा, तो रानी उसके साथ थी। वह केवल गाड़ी पर पहुंचाने गयी थी। वहाँ जाकर, रानी को यह देख कर अचरज हुआ कि जेबुन्निसा पहिले से महेन्द्र की प्रतीक्षा में थी। उसे देखते ही रानी ने एकाएक कहा—'मैं समझी, तू चतुर है, जेबुन्निसा !'

सुन कर जेबुन्निसा मुसकरा दी। जरा शरमा कर आँखें भी झुका दीं।

महेन्द्र ने स्पष्टीकरण किया—'मैं कल इनके यहाँ गया था। तभी कहा था कि जीजी मुझे भेज रही हैं।'

यह सुनकर रानी ने जेबुन्निसा की ओर देखा और कहा—'जेबुन, भला बता तू ही, घर न जाना चाहिये क्या ! सच, चाची रोती होंगी !'

जेबुन्निसा ने कहा—'नहीं, जरूर !'

'और देखना, भैया वहाँ टिक थोड़े ही सकेंगे। दो-चार दिन में लौट आयेंगे।'

गाड़ी आई और महेन्द्र बैठ गया। उसी समय रानी ने देखा कि जेबुन्निसा डिब्बे के अन्दर बैठे हुए मुसाफिरों पर ऐसे दृष्टि डाल रही थी कि मानो उन सबकी तरह, वह भी अज्ञात थी और उनकी उस अवस्था के साथ अपने-आप में डूब गयी थी। उसी समय रानी के मन में आया कि क्या जिन्दगी है यह...हाँ,

हम सभी मुसाफिर हैं...सभी एक-दूसरे को विदा करते हैं... अपने आत्मीयों से दूर हो जाते हैं !

अपनी इस अवस्था में पड़ कर रानी एकाएक चौंक गयी। गाड़ी ने सीटी बजाई और उसने देखा कि महेन्द्र जेबुन्निसा की ओर देख कर कह रहा था—'जल्दी आऊँगा, मैं। पत्र डालूँगा।'

उत्तर में जेबुन्निसा ने क्या कहा, यह रानी ने नहीं सुना। शायद उसने कुछ नहीं कहा। केवल सिर झुका लिया।

रानी ने कहा—'भैया, जल्दी आना। सबसे मेरी भी नमस्ते कह देना।'

गाड़ी छूट गयी। जब वह प्लेटफार्म से बाहर निकल गयी, तो रानी ने कहा—'आओ, जेबुन, चलें!'

जेबुन्निसा जैसे वहाँ नहीं थी। इसी से, बलात वह चौंक गई। बोली—'चलोगी भाभी, चलो!'

इतना सुनकर रानी मुसकरायी। वह जेबुन्निसा का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ गयी। जब स्टेशन से दोनों बाहर हुईं, तो रानी बोली—'घर चलो। अभी जलपान तो किया नहीं होगा, वहाँ करना।'

जेबुन्निसा ने कहा—'फिर आऊँगी, भाभी!'

रानी ने जोर देकर कहा—'नहीं, नहीं, चलो!'

जेबुन्निसा हँस दी—'अच्छा, चलो!

घर जाकर रानी सीधी अपने कमरे में चली गयी। जेबुन्निसा को भी वहीं ले गयी। जग्गू विनोद को स्कूल भेजने गया था। अभयबाबू को भी कहीं बाहर काम था। जब जग्गू आया, तो उससे जलपान लाने के लिये कह दिया। रानी ने साड़ी बदल दी और जेबुन्निसा के पास बैठ कर, बड़ी अधीरता के साथ बोली—'हां, जेबुन! आज बता तू! देख, सच-सच!'

अचरज से जेबुन्निसा ने रानी की ओर देखा। क्षण भर पूर्व रानी की आँखों भी हँसी थी, वह अब नहीं थी। अब वह आंखें खाली थीं और किसी रहस्य को जानने की प्रतीक्षा में थीं।

रानी ने कहा—'भैया गया तो है, पर वहाँ नहीं रहेगा। वह निश्चय ही, दो-चार दिन में चला आयेगा । मेरा अपना मत है कि उसे आना भी चाहिये।'—वह बोली—'जेबुन्निसा, भला कौन बहिन ऐसी हतभागिनी होगी, जो न चाहेगी कि उसका भैया महान बने,—समाज का एक विशिष्ट अंग न हो जाये ! सो, मैं भी चाहती हूँ कि मेरा भैया भी ऐसा ही बने। उसमें वह प्रतिभा है। वह इच्छा है। वह बल है । मैं उसे नहीं रोकूँगी। मेरा भैया जितना भी आगे बढ़े, मेरे लिए वह उतनी ही प्रसन्नता है।' इतना कह कर रानी रुक गयी। जेबुन्निसा हथेली पर ठोढ़ी रखे हुए कमरे के एक चित्र को देख रही थी। बात सुन रही थी। वह बात उसके हृदय को छू रही थी। उसी समय रानी ने फिर कहा—'मेरे चाचा और चाची पुराने युग के आदमी हैं। पुराने खयालातों को मानते हैं। वह संतान को दबोचना चाहते हैं...अपने घर में ही बन्द रखना चाहते हैं, भैया को !'—वह बोली—'लेकिन देखा तुमने, भैया ने आज तक भी कुछ नहीं सुना। मैंने कहा, तब भी नहीं ! विनोद के पिताजी ने भी बहुत समझाया। वैसे जानती हो तुम, जब हमने स्वयं ही अपने-आपको समर्पित कर दिया, तो भैया महेंद्र को अपने साथ से छोड़ देना कैसे रुचिकर होता। लेकिन खयाल चाचा-चाची का था। वैसे जब-तब चाचा को पत्र लिखती हूँ तो यही कहती हूं कि भैया की दिशा ही यह है...इस जीवन को सार्थक करने की राह यही है।'—वह बोली—'अब उन पर यह प्रभाव पड़ा है कि उन्होंने मुझे या विनोद के पिताजी को दोष देना छोड़ दिया है।'—उसने एकाएक कहा—'जेल से लौटकर

भैया का जैसा स्वागत हुआ, ऐसा सम्मान क्या प्रत्येक व्यक्ति को मिल सकता है। मैं कहती हूँ, नहीं। जनता के लिये जो अपना सर्वस्व देता है, जनता उसके चरणों में झुक जाती है। उसे अपने सिर पर उठा लेती है, जनता !'

जेबुन्निसा उस समय गम्भीर थी। वह हथेली पर मुँह रखे हुये नीचे फर्श पर आंखें लगाये हुए थी।

रानी बोली—'इसीसे, मैं आज तुमसे कहती हूं, मैं यह जानने के लिये उत्सुक हूँ कि तुम्हारा क्या विचार है।'—उसी समय रानी ने जेबुन्निसा का हाथ पकड़ा और कहा–'जेबुन, मैं तेरी बड़ी बहिन हूँ, शायद भाभी; मुझसे साफ-साफ कह कि तेरी इच्छा क्या है ? क्या भैया के साथ विवाह करने की है ? बोल, अगर यही इच्छा हो, तो मैं भैया के आते ही, उससे कहूँगी। मैं इस कार्य को संपन्न करके ही साँस लूँगी।'—वह बोली–'जेबुन, मेरी छाती के नीचे जो हृदय धड़क रहा है, वह नारी का है,–कोमल, द्रवित है ! वह जरा सी ठेस लग कर रो पड़ता है। लेकिन जब मैं तेरी अवस्था को देखती हूं और सोचती हूं कि यौवन-काल में तेरा मुँह सूख चला है, फलता-फूलता सुन्दर शरीर निष्क्रिय और दुर्बल बन गया है, तो तब, मेरा मन रोता है। मेरा कर्तव्य मुझे बाध्य करता है। मेरी आत्मा ही बार-बार कहती है कि मैं कुछ करूँ—तुम्हारी इच्छा पूरी करूँ, जेबुन्निसा !'

जेबुन्निसा फिर भी मौन थी। वह जमीन की ओर देख रही थी।

रानी ने कहा—'आज जैसा संघर्ष दिखाई देता है, यह तो मिट ही जायेगा। यह सच है कि यह लड़ाई—यह घरु-युद्ध पैसे-वालों द्वारा चलाया गया है। अंग्रेजों का इसके पीछे हाथ है। लेकिन अवस्था यह है कि सभी मर रहे हैं, पैसेवाले भी बे-पैसे

वाले भी ! इस अवस्था में मेरा मत यह हर्गिज नहीं कि हमें जो-कुछ करना है, उसे पीछे छोड़ दें । जो बातें आज उठती हैं, वे आज क्या, कल भी उठेंगी। विरोध भी होंगे। पक्ष और विपक्ष की सभी बातें सुनने को मिलेंगी।'—वह बोली—'मैं कहती हूं, तुम्हारे मन में जो कुछ है, उसे कहो। मुझसे कहो, अपने माता-पिता से कहो।'

इतना सुनकर, एकाएक जेबुन्निसा ने अपना मुँह उठाया। उसने रानी की ओर देखा। मुसकराया।

रानी ने कहा—'हां, बताओ,—सच !'

'मैं क्या बताऊँ, भाभी ! विवाह की बात !–ओह !'–जेबुन्निसा ने कहा—'यह प्रश्न हमारे बीच में नहीं उठ रहा, भाभी ! महेंद्र-बाबू ने जितने भी पत्र मुझे जेल से लिखे हैं, वे सब मेरे पास रखे हैं। उनमें उन्होंने साफ-साफ लिखा है कि आज की विवाह-प्रथा ने हमें चूस लिया है...मनुष्य के पतन का द्वार खोल दिया है, इस अवस्था ने ! वह कहते हैं, देश स्वतन्त्र हुआ तो क्या, समाज तो भूखा है, विषम है ! और लोग बच्चे पैदा करने की चिंता लिए हुये हैं...वह स्वयं सन्तानों को भी उस जघन्य कीचड़ में घुट-घुट कर दम तोड़ने के लिए छोड़ देते हैं . भाभी ! सच, मेरा भी मत यही है। ठीक है, मैं नारी हूं...मैं अकेली हूं...दुर्बल हूं, पर मेरी इतनीसी अवस्थाको देखकरतो कोई विचारवान, धीर और भावुक व्यक्ति अपने जीवन को मेरे साथ नहीं मिला सकता । मैं उसे क्या दूँगी। केवल वासना...आग; कि जिसमें वह जल जाये... मेरे साथ वह भी मर जाये !' जेबुन्निसा कहने लगी—'अगर यह भी आवश्यक होगा, तो हम कर लेंगे। तुम्हारे भैया सहमत न होंगे, तो मेरे समाज में और बहुत से व्यक्ति हैं, उनमें से कोई भी भला आदमी मुझे मिल जायेगा । सच, मुझे इसकी चिंता

नहीं। महेन्द्रबाबू ने कहा है, अगर यही नीयत है, इसी रूप में अपना और मेरा मूल्य आंका है, तो आओ; संसार जिस वासना की भट्टी में जल रहा है, हम भी जलें...हम भी मरें...!

'ऐण्ग भैया ने कहा है,-सच !'—एकाएक रानी ने कहा-'वह पत्र मुझे भी दिखाना। दिखाओगी ?'

'हाँ, क्यों न दिखाऊँगी, भाभी ! मेरी कोई गोप्य वस्तु नहीं। उन पचासों पत्रों में एक भी ऐसा नहीं कि किसी नर या नारी को न दिखा सकूँ। तुम्हारे भैया के पास मेरे जितने भी पत्र हैं, वे भी देख सकोगी। उन्हें अधिकार है कि किसी को दिखा दें।'

रानी ने कहा—'जेबुन, तुमने जो-कुछ कहा, सच मानना, मैं स्वीकार करती हूँ। लेकिन मैं सोचती हूँ कि क्या यह संभव है ? फल सकता है, तुम्हारा विचार ?

यह सुन कर जेबुन्निसा हँसी—'आज तुम्हें क्या हुआ है, भाभी ! कभी तुम्हींने ऐसा कहा था। मैं जिधर जा रही थी, उधर से तुम्हींने मुझे रोका था।'

रानी ने कहा—'हाँ, कहा तो था ! आज भी कह सकती हूँ।' वह बोली—'लेकिन नित-नित तुम्हारी जिस प्रकार शारीरिक अवस्था होती जा रही है, उसे देख कर मैं सन्देह करती हूँ कि तुम्हारे मन में मन्थन हो रहा है। कोई विचार अवश्य ही, तुम्हें मथ रहा है।'

जेबुन्निसा हँसकर बोली—'न, भाभी ! ऐसा नहीं। सच, नहीं।'

'फिर दुर्बल क्यों ! जरूर कोई आधार तो है !' रानी ने कहा।

जेबुन्निसा ने फिर भी हँसते हुए कहा—'इस दुर्बल देह के

अन्दर जो आत्मा है, उसे अब प्रकाश मिल रहा है, भाभी! चेतना का रूप दिख रहा है।'

'तो यही सत्य है? यही ठीक है?'

'हाँ, अभी यही है।'

इसके बाद ही, जेबुन्निसा ने बरबस फिर कहा—'भाभी, मैं दुर्बल हूं। मैं जिस इच्छा को आज तक अपने साथ लिये रही, उसे छोड़ते हुए अभी कठोर नहीं बनी हूँ। हाँ, यह सत्य है कि मैं उस भावना पर टिक सकी हूँ। निश्चिन्त भी हो रही हूँ। कल ही, महेन्द्रबाबू ने मुझसे पूछा कि मैं करूँगी क्या? लेकिन मैं इस विचार से दूर हूँ। उलझी अवश्य हूँ। चिन्तित भी हूँ, परन्तु स्थिति अभी अनुकूल न जानकर मैं घर में पड़ी हूँ। मैं अपनी अम्मी और वालिद साहब की ओर भी देखती हूँ। पहिले उन्हें मेरे विवाह की चिन्ता थी, अब नहीं है। वह बात मैंने अपने ऊपर ले ली है।'

'कुछ और—? और?' रानी ने एकाएक प्रश्न किया।

जेबुन्निसा बोली—'हां, एक बात और! मैंने अपनी अम्मी से यह कह दिया है कि विवाह करूँगी नहीं, यदि हुआ तो महेन्द्रबाबू से होगा।'

'फिर? तो क्या कहा अम्मी ने?'

जेबुन्निसा ने कहा—'भाभी, मेरी अम्मी उदार हैं, वह मेरे लिये सभी-कुछ सुन और सह सकती हैं। यह बात भी सुनी, तो चुपकी हो गयीं। दूसरे दिन उन्होंने कहा, तू कुछ कर तो, मैं उसे भी अपनी छाती से लगा लूँगी।'—वह बोली—'मेरा खयाल है, अम्मी ने इसी बात को अब्बा के सामने भी रख दिया है। क्योंकि अब वह प्रायः महेन्द्रबाबू को पूछते हैं। अम्मी भी उन्हें देखने के लिये कहती रहती हैं।'

उस समय रानी गम्भीर थी। वह एक अलौकिक और अभूत-पूर्व दिशा की ओर जाकर अपने विचारों में डूब गयी थी। उसके मन में था, भाग्यवान है यह लड़की,—जेबुन्निसा! मां-बाप भी अच्छे मिले, भैया महेन्द्र भी। लेकिन तुरन्त उसने चिन्तित भाव लेकर अपने-आप कहा—लेकिन यह निभेगा कैसे! कैसे पुरेगा यह जीवन! यह कोमल, यह सुवासमय जेबुन! उसने कहा—'प्यारी जेबुन, आज तुमने जो-कुछ बताया, जितना मुझसे कहा, मैं सोचती हूँ, क्या ही अच्छा हो कि यह निभे! यह पूरा उतरे!' —लेकिन उसी समय एकाएक रानी ने व्यग्र होकर कहा—'किन्तु निभेगा नहीं। मेरी दृष्टि में तुम दोनों का सम्बन्ध—नर-नारी का—पति-पत्नी का सम्बन्ध—वासना की भट्टी नहीं!'—वह बोली—'यही तो दिशा है कि जहाँ पर नारी और नर त्याग सीखते हैं, जीवन की पीड़ा और व्यथा को पहचान पाते हैं। आज नहीं तो कल, तुम भी यही पाओ, मेरी प्यारी जेबुन!'

जेबुन्निसा ने कहा—'आज तो यह है, कल की खुदा जाने!'

'नहीं तुम भी जानो।'

'मैं भी!' मानो चकित बनकर जेबुन ने कहा।

रानी ने दुलार के साथ उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—'हाँ, तुम भी प्यारी जेबुन! जीवन यही है। विचार-भ्रष्ट करके तो हमें जीवन नहीं मिलता...अन्धेरा मिलता है! वास्तविकता की ओर देखना ही जीवन है...और मानव की उसी वास्तविकता को बरबस ढक देने का प्रयत्न करना है,—मौत! जीवन का नाश...

चौबीसवाँ अध्याय

रानी की आशा के प्रतिकूल महेन्द्र कुमार घर से नहीं लौटा। उसने रानी और जेबुन्निसा को पत्र लिख कर बताया कि वह अभी घर पर रहेगा। जेबुन्निसा को उसने पत्र में लिखा कि घर आकर मैंने मा का स्नेह तो पाया ही, साथ ही, अपने देर से छूटे हुए साथियों का प्रेम भी पाया। मैं घर पर इसलिये कुछ दिन रहने के लिए विवश हूँ कि उसके सामने बाग की जैसी दशा थी, वह बदल गयी है। वह फिर से उसे सुधारेगा और नये पेड़ लगायेगा। बात यह थी कि महेन्द्र के घर रहते हुए अपने बाग में लगे हुए कुछ पेड़ों को स्वयं उसने हाथ से लगाया था। उसे बचपन से ही बागबानी का शौक था। घर पर जमींदारी का काम होने के कारण उसे जानवरों और पेड़ों के साथ रहना प्रिय लगता था। उसके घर का जो पुश्तैनी बाग था, उसकी देख-रेख का अधिकांश भार उसने स्वयं ही अपने ऊपर ले लिया था। बाग में आम-जामुन और अन्य फलों के तो पेड़ थे ही, परन्तु जिन पेड़ों को महेन्द्र ने अपने हाथों से आरोपित किया, निश्चय ही, उनकी दशा में बड़ा परिवर्तन आ गया था। उसने अनुभव किया किया कि उन पेड़ों की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया। जब घर जाकर महेन्द्र बाग में पहुंचा और अपने हाथों से लगाये उन पेड़ों को सूखा पाया,—एकाकी और अव्यवस्थित दशा में देखा—तो सचमुच ही, उसका मन रो पड़ा। उसने समझा कि मानव की तरह, इन पेड़ों के पास भी अभाव है,—प्रेम और आत्मीयता का अभाव इन्हें भी सताता है! इसलिये, उसने जेबुन्निसा को पत्र लिखा, तो

उसमें बताया, मैंने घर आकर जब अपने इन प्यारे वृक्षों को देखा, तो अनायास ही, अनुभव कर सका कि हृदय इनके भी पास है...अभाव इन्हें भी खटकता है। मानव की उपेक्षा और उदासीनता का शिकार इन्हें भी बनना पड़ा है। उसने बताया कि पाप मेरा है ..यह मेरा ही अभियोग है। मैंने अपने जीवन की चिन्ता के साथ इनकी आवश्यकता को नहीं समझा,—किसी ने भी नहीं देखा, इनकी ओर !

निदान, महेन्द्रकुमार ने उन वृक्षों की अवस्था को सुधारा। घर आकर वह कई दिन तक बाग की सफाई में लगा रहा। अपने हाथों से उसने उस भूमि की बढ़ी हुई घास को काटा और नये सिरे से पेड़ों के गमले लगाकर पानी देने का प्रबन्ध किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो पेड़ सूख चले थे, असमय में ही, काल के मुँह में जाने लगे थे, वह फिर लहलहा उठे। उन पर कोंपलें फूट चलीं और हरे पत्ते आने लगे।

यों, लगभग एक मास अनायास ही घर पर निकल गया। महेन्द्र का कार्यक्रम बन गया कि वह प्रातः ही बाग में जाता और पेड़ों की सुधार-क्रिया में लग जाता। दोपहर को वह मिट्टी और पसीने से लथपथ हुआ घर लौटता। स्नान करके भोजन करता। फिर अपने कमरे में जाकर पढ़ने में लग जाता। घर पर उसने एक छोटा-सा पुस्तकालय बना रक्खा था, जिसमें मध्यम-वर्ग और निम्न-वर्ग के समाज पर लिखा हुआ साहित्य काफी संख्या में था। पूँजीवाद और सामन्तशाही का साहित्य भी उसके पास था। वह उसने फिर पढ़ना आरम्भ किया। चूँकि वह उसका प्रिय विषय था। इसलिये उसका मन लगता था। दोपहर बाद संध्या समय, वह फिर बाग में पहुँच जाता। किसी दिन अपने

साथियों को भी ले जाता। वह स्वयं काम करता और मित्रों को उन पेड़ों की तथा अपने परिश्रम की उपयोगिता बताता जाता।

इस बार, घर आकर, एक नयी बात यह हुई कि महेन्द्र के ताऊजी (रानी के पिता) ने इस बात का प्रयत्न किया कि महेन्द्र वहीं रहे। वह घर की देखभाल के साथ, वहीं के समाज का व्यक्ति बने। क्योंकि महेन्द्र के विषय में सुनकर और समाचार पत्रों में पढ़ कर, उनका यह निश्चित मत बन गया कि उनके घर का उत्तराधिकारी अयोग्य नहीं, वह उनके कुल का दीपक और उस परिवार को प्रकाश की ओर ले जाने वाला ही सिद्ध हुआ है।

लेकिन इस बार जब उन्होंने यह देखा कि इतनी कीर्ति और सम्मान पाकर भी, महेन्द्र नहीं बदला, वरन् वह और अधिक विनीत बन गया, तो उन्होंने स्वतः ही अपनी ओर भाई की पत्नी (महेन्द्र की मां) से साफ शब्दों में कहा कि वे महेन्द्र के विवाह की चिन्ता न करें, उससे न कहें। इसके लिये वह स्वतन्त्र है। वह जिस दिशा की ओर जा रहा है, उसमें किसी प्रकार का भी व्यवधान डालना उसके साथ अन्याय करना है।

अतएव, जब एक दिन, नगर की प्रमुख संस्था द्वारा महेन्द्र-बाबू का अभिनन्दन किया गया, तो उस समय में महेन्द्र के ताऊ और ताई के अतिरिक्त, माता और पिता भी सभा-स्थल में मौजूद थे। वे सभी संस्था के संचालकों द्वारा निमन्त्रित थे। ताऊ तो नगर के प्राण थे,—वहाँ की संस्थाओं को चलाने वाले समझे जाते थे। परन्तु माता और पिता के लिए वह पहिला ही अवसर था कि जब वह एक सभा में पहुंचे थे। जिस समय महेन्द्र को अभि-नन्दन-पत्र भेंट किया गया, तो निःसन्देह, उसकी माता और पिता का हृदय एक अपूर्व भावना से भर गया था। अभिनन्दन

के साथ महेन्द्र को नागरिकों की ओर से एक थैली भी भेंट की गयी कि जिसमें पाँच हजार रुपया था। वह रुपया, वहाँ की प्रधान संस्था को दे दिया गया। उस सभा का संचालन करने के लिए, नगर के एक धनिक और प्रतिष्ठित व्यक्ति को सभापति बनाया गया था। उन्होंने महेन्द्र के ताऊ से निवेदन किया कि वे कुछ कहें। निदान, वह उठे और बोले–'आज की सभा में, मैं जिन भावनाओं से भरा हूँ, उनसे प्रेरित बनकर, मैं इतनी समर्थ नहीं पाता कि कुछ कहूँ। जिस युवक की आप मुझसे प्रशंसा सुननी चाहते हैं, वह मेरा बच्चा,—मेरा अपना ही प्राण है–इसलिए मेरे साथ, आप भी, कामना करें कि आपका महेन्द्र,—इस नगर का महेन्द्र–जिस दिशा में चला है, उस पर और आगे बढ़े और जनता-जनार्दन का सेवक बने। इससे अधिक मैं और कोई मांग नहीं कर सकता।...गर्व से मेरा हृदय फूल उठा है, गद्‌गद् हो रहा है, इसलिए आपके साथ परमात्मा भी मेरे महेन्द्र को आशीष दे, यही मेरी याचना है।'

उन्होंने कहा–'कोई जाति, अथवा कोई देश, सदा ही युवकों की ओर देखता रहा है,—आशा और आकांक्षाओं के साथ। हम बूढ़े मार्ग बता सकते हैं, चल नहीं सकते। हमारे अनुभव, विपम-संघर्ष के पृष्ठ, एक इतिहास हैं। मनुष्य के,—मनुष्य-जाति के! अवश्य ही, युवक उससे काम ले सकते हैं। देश और जाति को आत्म-बल की भी आवश्यकता है, तेज और शौर्य की, वह युवकों से मिल सकता है। उनके ही पास है, वह निधि! उनके रक्त में जोश है। गरम है, वह खून! उसमें प्रगति है, प्रेरणा है। आत्म-भाव है! युवक मरता है! खुशी-खुशी वह अपना बलिदान देता है। और यही देश को चाहिए,—इस मनुष्य-जाति को यही पाना है। जिस करुणा, दया और आत्म-निर्णय की भावना के साथ, युवक

क्षेत्र में उतरता है, वह सर्वदा प्रार्थनीय है, पूजनीय है ! जाति को उस पर अभिमान है ! ऐसी जाति मर नहीं सकती। पुरातन से चला आया भूत, आगे का भविष्य और सामने का वर्तमान चैतन्य और जागरूक बना हुआ अभिनन्दन करता है। युवक शत-शत जियें, यह कामना करता है, देश !'

उस समय, निश्चय ही, जनता भी भावनाओं से भरी थी। महेन्द्र जिनके साथ खेला था, बढ़ा था, उनकी दृष्टि में भी, वह मानो कल्पना से अधिक ऊंचा उठ गया था। उन सबकी आंखों में आत्मीयता का भाव था और विमल भावनाओं का श्रोत !

उसी समय, सभापति के आदेश से, महेन्द्र बोलने के लिए खड़ा हुआ। सभा-स्थल तालियों से गूंज उठा। उसने कहा—'इससे पूर्व कि मैं अपने विषय में कुछ कहूं, आप को यह बता दूं कि मैंने अपने जीवन में जो कुछ पाया है, वह घर से ही मुझे मिला है। ताऊजी के शुभाशीष का ही फल है कि आज मुझे आपके बीच में कुछ कहने का अवसर मिला है। मेरी ताई, कि जिन्होंने मुझे अपनी गोद में रखा है और अपनी आंखों के नीचे ही मेरा लालन-पालन किया है, निश्चय ही, अपनी माता और पिता के साथ मुझे उन्होंने भी, अपनी आत्मा का सबसे श्रेष्ठ विमल-पाठ अपनी वसीयत में मुझे दिया है।'

इसके बाद ही, महेन्द्र ने अपने कार्य के ऊपर कहना आरम्भ किया। जिस समय वह देश की दुर्दशा का व्यापक विश्लेषण करने लगा, तो ऐसा लगा कि जैसे उसकी आत्मा में वेदना और ज्वाला का अभूतपूर्व सामन्जस्य स्थापित था कि जिसका लावा फूट पड़ना चाहता था। उतना रोचक, गम्भीर और तीव्र भाषण कदाचित ही उस नगर के लोगों को पहिले सुनने को मिला। महेन्द्र के ताऊ

यद्यपि काफी जोशीले थे, परन्तु अब वृद्धावस्था आने के कारण, शरीर के साथ, वाणी से भी निर्बल बन गये थे।

महेन्द्र ने कहा—'आज की ही नहीं, यह काफी देर की एक समस्या है कि जिस पूंजीवाद के पैरों में संसार का तीन हिस्सा मानव लोटता है और कुचला जाता है, इस नये युग के आने पर भी, उसमें तनिक भी सुधार नहीं हुआ। मानव की स्वेच्छा का पलड़ा नहीं झुका। सरमायेदारी की खुदगर्जी का नग्न-ताण्डव आज भी घर-घर में हो रहा है! लगता है कि मानव, मानव से टूट रहा है! भाईचारा नष्ट हो रहा है! मातृत्व मिट रहा है और संगीनों की धार पर टिका हुआ दीन मानव तड़फड़ा रहा है.. जीवन की मांग कर रहा है, मानव!'—उसने कहा—'आज भी जो साम्प्रदायिक-संघर्ष देश में चल रहा है, निश्चय ही, वह धर्म और जाति के नाम पर लड़ा भले ही जा ा हो, परन्तु जो भी उसके सूत्रधार हैं, उन्होंने कभो जाति और धर्म को नहीं माना। यह एक ऐसी विडम्बना है कि जिसका वीभत्स रूप आज ही नहीं, आदिकाल से मध्यम और निम्न-वर्ग के मानव को भोगना पड़ा है!...मैं कहता हूं, पूंजीवाद और साम्राज्यशाही-नीति के पोषक और पालक मानव ने इस जघन्य नीति को सदा ही सतर्क और अजेय बनाकर काम में लिया है!...मजदूर और किसान अपनी जिस समस्या में लिपटा हुआ, जब-जब आगे बढ़ा है, तो उसमें फूट डालने, उसके समर्थकों की गति को रोकने के लिए ऐसे संघर्ष रूपी हथियार से मैदान साफ करने का असफल प्रयत्न किया गया है!'—उसने कहा—'मानव की कोई जाति नहीं, कोई देश नहीं। किन्तु जिन सीमाओं का निर्धारण करने के लिए मानव लड़ाया जाता है और जानवरों की तरह कटाया जाता है, निश्चय ही; यह रूप, इसलिए भी अधिक दयनीय बनता है कि मानव दास है,—अपने पेट का याचक है—

एक या अधिक कुछ व्यक्तियों द्वारा परतन्त्र बनाया गया है !' वह बोला—'आखिर यह परम्परा क्यों है ? किसलिए है ? मेरा उत्तर है, जो अवसरवादी हैं और भोगवाद की कीचड़ में फंसे हुए पेट की समस्या से छूट चुके हैं, उन्हीं ने इस विराट-प्रकृति के शासन में अपनी स्वेच्छा पूरित अहं भावना का रौरव-नृत्य आरम्भ कर रखा है !...आश्चार्य है, आदर्श और है, व्यवहारिकता और ! यह धार्मिक और विवेक की पूजा करने वाला मानव, सदा ही, इतना अधीर और चंचल रहा है कि सोने-चांदी की चकाचौंध में और कुछ देख ही न पाया ! यह ऐसा प्रयत्न नहीं कर सका कि स्वयं ऊंचा उठे और जिस धार्मिकता का इसने युग-युगान्तर से ढोंग रच रखा है, उसकी वास्तविकता को समझे । मैं कहता हूं आज के व्यक्ति के सामने न सिर्फ रोटी का प्रश्न है, बल्कि उसके मनुष्य बनने का प्रश्न है...हम जानवर की जिस कोटि से उठने के लिए युग-युगों से प्रयत्न करते आये हैं और जंगलों, पहाड़ों को लांघकर ऐसे सजे हुए विश्व का निर्माण कर सके हैं कि जिसमें पशु नहीं आ सकता...हिंसक का भी निवास नहीं होता... वन के ख्ंखार भेड़ियों को इन नगरों में स्थान नहीं दिया जा सकता, वहीं पर—इस सजे हुए विश्व के अन्तर में—जो चोट, हिंसा और हृदय-हीनता का प्रदर्शन नित-नया देखने में आता है, बताइये, ऐसा मानव क्या पशु-योनि से ऊपर उठ सका है ! हमने सुना है कि जानवर-ही-जानवर को खाता है...क्या उसी तरह मानव भी ? यह धर्म, समाज और जाति की कल्पना में लीन संगठन करने वाला व्यक्ति, क्या अपनी सीमा में हिंसक और पशु नहीं ?'—वह बोला—स्थिति यह है, मानव ऊपर नहीं उठ सका ! चांदी-सोने के समक्ष समाज और धर्म की उपयोगिता नहीं समझ सका ! अपनी आवश्यकता को छोड़ कर हमने दूसरी ओर नहीं देखा !

यही हमारी हीनता है...यही मानव का कलंक है! काश, कि हम मनुष्य बनते! विवेक की पूजा करते...अपने पेट के साथ हम संसार का भी पेट देखते...विश्व रूपी कुटुम्ब में अपने प्राण देखते और उसकी वेदना पहचानते...'

उसी दिन, जब महेन्द्र घर में आकर अपने स्वभाव के अनुरूप, ताई की गोद में सिर रखकर बैठ गया, तो वह बोली—'अरे, अब तू बच्चा थोड़े ही है...इतनी बड़ी बात कहता है और बच्चा बनता है!'

उस समय महेन्द्र की माँ भी वहीं पर थी। वह भी उन दोनों की ओर देख रही थी।

उसी को लक्ष कर उसने कहा—'सुना, मा! भला इस ताई को कौन समझाये कि बेटा, बेटा है! वह बड़ी बात कह कर भी छोटा है, इस ताई के लिए!'—और उसने ताई से कहा—'लाओ, कुछ खाने को दो। इतनी बातें बताईं, मुँह में कुछ नहीं गया!'

उसी समय ताऊ घर में आये। वह महेन्द्र को ताई की गोद में सिर रखे देख, हँस पड़े और बोले—'सच तो कहा है किसी ने बेटा तो बेटा ही है,—बड़ा होकर भी छोटा है।'

यह सुन कर महेन्द्र की ताई हँस पड़ी। वह दुलार के साथ महेन्द्र का सिर सहलाने लगी।

उसी समय मा तश्तरी में जलपान का सामान लाई। गिलास में पानी।

महेन्द्र ने कहा—'ताई खिलाओ।'

और तब बिना कुछ कहे, ताई ने तश्तरी से लड्डू उठाकर महेन्द्र के मुँह में रख दिया। उसने कहा—'तू अब भी बच्चा है,—सच!'

महेन्द्र ने कहा—मैं कल जाऊँगा।

'कहाँ ? रानी के पास ?' ताई ने पूछा।

'हाँ, ताई ! मुझे जाना है। जीजी ने बुलाया है।'

ताई ने कहा—'कल नहीं, फिर।'

महेन्द्र ने उद्विग्न होकर कहा—'न, ताई ! मुझे जरूरी काम है। दो दिन को कह कर आया था। अपना काम भी छोड़ आया था। आज तार मिला है। पत्र भी आया है।'

और तभी उसने मन में कहा—जेबुन्निसा बीमार है,—शायद सख्त ! जीजी ने लिखा है। अभयबाबू के तार में भी। उसी क्षण वह मा से बोला—'मेरा सामान बंधवा देना, मां ! कल जाऊँगा। फिर जल्दी आऊँगा।'

मां ने उत्तर नहीं दिया। कुछ भी नहीं कहा। पुत्र के लिए उसमें जितनी ममता थी, कदाचित उसी ने विवश कर दिया—पुत्र की इच्छा में मिल जाने के लिए ! उसने अपनी बात को छोड़ दिया।

पच्चीसवाँ अध्याय

तांगे से उतरते ही, महेन्द्र कुमार जैसे ही घर में पहुंचा, तो सामने ही, रानी को देखकर बोला—जीजी, नमस्ते !

'ओ, भैया ! आ गये तुम ! आओ, नमस्ते !' कहते हुए उसने जग्गू को सामान उतार लाने के लिए कह दिया और स्वयं महेन्द्र के साथ कमरे में जाकर कहा—'भैया, जेबुन्निसा की हालत अच्छी नहीं है ! वह आज-कल में ही पहाड़ जाने वाली है। डाक्टरों ने यही कहा है।'

और तभी उसने पूछा—'तुम्हें भी उसने लिखा होगा ?' तदन्तर ही रानी ने मुंह गिराकर स्वयं कहा—'शायद उसने कुछ नहीं लिखा। मैं कल गयी थी। परसों भी। तभी उसने बताया कि वह तुम्हें कष्ट नहीं देना चाहती। अपनी बीमारी की खबर भी नहीं। बैठो, स्नान करके कपड़े बदलो। जलपान कर लो, फिर जाओ, जेबुन्निसा के पास !'

महेन्द्र बैठ गया। रानी ने एक ही सांस में जितना कह दिया, उसका एक-एक शब्द जैसे महेन्द्र के अन्तर में उतर गया। वह उठा और एक चलित यन्त्र की तरह अपने सब कामों से निवट कर जब जेबुन्निसा के घर की ओर चला, तो बार-बार उसके मन में आ रहा था कि क्या सच, इतनी गहरी है जेबुन्निसा कि मुझे नहीं लिखा ! उसने मुझे चिन्तित और बेचैन देखना भी पसन्द नहीं किया...आह, ममतामयी जेबुन्निसा !

जब वह उसके घर पहुँचा, तो नौकर ने बताया कि हाजीजी अन्दर हैं। महेन्द्र ने अपने आने की खबर देने के लिए कह दिया। जाते ही, नौकर लौट कर आया और महेन्द्र को साथ ले गया।

महेन्द्र अन्दर गया। जेबुन्निसा बिस्तर पर पड़ी थी, वह दुर्बल थी। पिता और मा उसके पास थे। महेन्द्र सलाम करके बैठ गया।

हाजीजी ने पूछा—'आप अभी आये,—कब?'

महेन्द्र ने बताया कि वह अभी आया है।

हाजीजी ने कहा—'जेबुन को पहाड़ ले जाना है,—मंसूरी!'

'रोग क्या है? डाक्टर ने क्या बताया है?'—महेन्द्र ने पूछा।

'बुखार रहता है। डर की बात नहीं। आबहवा बदलना ही डाक्टर ने इलाज बताया है।'

उसी समय, जेबुन्निसा ने महेन्द्र की ओर लक्ष किया—'आप भी दुर्बल हैं। मा के पास जाकर भी ..'

बीच ही में जेबुन्निसा की मा ने महेन्द्र से कहा—'बेटा, बहुत दिन लगाये। मा के पास जाकर सबको भुला दिया!'

महेन्द्र ने कहा—'न, माजी! मैं किसी को नहीं भुला सका। देखती हैं, मैं मौका पाते ही दौड़ आया।'

हाजीजी उठे और बोले—'बाबू, वहाँ की कैसी फिजा है? यहाँ तो अब झगड़ा दब चला है। लोगों का कारबार भी चल पड़ा है। जिन्हें पाकिस्तान जाना था, उनका काफिला भी जा चुका है।'

महेन्द्र ने बताया—'वहाँ झगड़ा नहीं हुआ। वैसे खयालात चलते हैं और दब जाते हैं। दिखता है, वहाँ ऐसे व्यक्तियों का जन्म नहीं हुआ।'

हाजीजी बाहर चले गये, वह महेन्द्र को बैठे रहने के लिये कहते गये। उसी समय जेबुन्निसा की मा दूसरी ओर चली गयीं, तभी जेबुन्निसा ने महेन्द्र की ओर देखा और कहा—'बताइये, आप कैसे दुर्बल हैं। चेहरा भी काला पड़ गया है।' वह बोली—'आपकी जीजी ने बताया कि वह पत्र लिख रही हैं,—बुलाने के लिये!'

सुना, प्रजा-संघ का काम भी पिछड़ रहा है। पहिले से बहुत बढ़ गया है। भाभी कहती थीं, लगभग दो सौ आदमियों का स्टाफ होगया है।'

उसी समय महेन्द्र ने आतुर बन कर कहा—'यह बताओ, तुमने सोचा क्या! मुझे नहीं लिखा...जीजी कहती थीं, तुमने लिखना नहीं चाहा। जानती तो होगी ही, मरना बुरा है,—अपने-आप चले जाना क्या अच्छा है?'

'क्या कहते हैं, आप!' एकाएक जेबुन्निसा ने आतुर और उद्विग्न बन कर कहा—'क्या मैं मरना चाहती हूँ! क्यों? किस लिए? ओह!'—उसने कहा—'दिखता है आप भी भ्रम में हैं... आप भी सोचते हैं कि मरना ही मेरी दिशा है!'

'अच्छा, बताओ कब से पड़ी हो?'

जेबुन्निसा ने इसका उत्तर नहीं दिया। उसने अपनी ही बात लेकर कहा—'मैं जीना चाहती हूँ। मैं दुनिया को और अपने जीवन को भी अधिक देखना चाहती हूँ।'—वह बोली—'बताओ मैंने अभी देखा ही क्या है...कितना पाया है! अभी तो मेरा जीवन नन्हा है।'

महेन्द्र चुप था,—गम्भीर बन गया था।

जेबुन्निसा ने फिर कहा—'अपनी बीमारी लिखना, अपनी विपत्ति का बखान करना, मुझे नहीं सोहाता। लगता है कि जैसे दूसरे पर बोझ डाला जा रहा है। मानो उससे कहा जा रहा है कि मैं दुःखी हूँ...अपना दुःख बँटाना चाहती हूं।...हाँ, बताइये तो, जो पाप मैंने किया, वह मुझे ही भोगना था। रोगी बनना और यों बिस्तर पर पड़ जाना पाप नहीं तो और क्या है!'—वह कहने लगी—'सच, जिन्दगी में ऐसा अवसर आना मुझे नहीं सोहाता। पर जब आ गया, जाने अथवा अनजाने एक पाप मैंने कर लिया.

तो उसे भोगना भी मेरे अतिरिक्त भला और किसे पड़ सकता है! न किसी को नहीं ! आपको भी नहीं !'

'भावना में मत बहो, जेबुन ! अपनी ओर देखो। जब मरना नहीं है, तो जीवन के लिए जिन पदार्थों की आवश्यकता है, उन्हें न भूलो। उन्हें अपनाओ।'

जेबुन्निसा ने कहा--'क्या कहूँ--कैसे, कि मुझे जीवन प्यारा है।'—वह बोली—'अगर मौत को ही मैं प्यारी हूँ, तो उससे कौन छीन सकता है।'

'उसकी चिन्ता मत करो। मौत आवाहन नहीं माँगती ! वह स्वयं आती है। हमारी तरह, उसके कर्म की भी एक रेखा है, ! वह उसी पर चलती है।'—उसी समय महेन्द्र ने फिर कहा--'और यही क्या सत्य है कि मौत का नाम मरना है...मैं मानता हूँ, जीवन के लिये मौत है...जीवन का उद्धार करने के लिए ! वैसे, मृत्यु का दूसरा रूप ही हमारी दुर्बलता है,—हमारे पतन की सीमा है !'

उसी समय महेन्द्र एकाएक चौंक गया। वह उद्विग्न भी बन गया। उसने चाहा कि जेबुन्निसा की ओर बढ़े और कहे—'तुम में यह भी है...ऐसी इच्छा ! लेकिन उसने अपनी जगह बैठे हुए ही, एकाएक कहा—'तुम्हारे इन आँसुओं को देख कर तो, मैं शान्त नहीं रह सकूँगा। मैं स्वयं रो पड़ूँगी,—जेबुन्निसा !'

जेबुन्निसा ने तुरन्त ही अपने गालों पर बहते हुए आँसुओं पर गले में पड़ा हुआ दुपट्टा डाल लिया और उन्हें पोंछ दिया। उसी समय बरबस ही, उसने अपने गले में कुछ उतार कर एका-कहा--'मैं दुर्बल हूँ ! मैं लज्जित हूँ !'

यह सुनकर महेन्द्र मौन रह गया। मानो वह किसी और

दिशा में पहुंच गया। यह देख, जेबुन्निसा ने जैसे नितान्त विनीत बन कर कहा—सच ! हां, सच !

सुनकर, बरबस ही, महेन्द्र मुसकरा दिया। उसने अपने सूखे दाँतों से हँस भी दिया।

लेकिन जेबुन्निसा ने फिर कहा—'मैं जानती थी कि तुम आओगे,—जल्दी आओगे ! आज आये हो, तो अब न छोड़ना। अब्बा कहते थे, तुम होते, तो मेरे साथ पहाड़ चले जाते। अम्मी ने भी यही कहा। 'वह बोली—'अब सभी जानते हैं कि तुम हो मेरे,—मेरे अपने ही प्राण; जिससे दूर रह कर मैं नहीं जीवित रहूँगी, मैं मर जाऊँगी !'

'जेबुन्निसा...'

'हाँ, महेन्द्र बाबू ! सच, मैं दुर्बल हूँ। मैं...और तभी जेबुन्निसा ने फिर अपनी भरी हुई आँखों पर दुपट्टा रख लिया और फूट-फूट कर रोना आरम्भ कर दिया। उसी समय, हाजीजी कमरे में आये। जेबुन्निसा की दशा देख कर वह एकाएक बोले—'बेटी, जेबुन—'

'हाँ, अब्बा !'

'रोया नहीं करते, बेटो ! हँसो ! खुशी मनाओ। इस जिन्दगी की खैर मनाओ !'

और जेबुन ने अपनी आँखें पोंछ कर फिर महेन्द्रबाबू की ओर देखा। उसने अब्बा से कहा—'सभी यही कहते हैं—आप भी—ये भी !'—वह बोली—'पर मैं कहती हूँ मरना कौन चाहता है,—क्या मैं ? न, अब्बा ! मैं भी जिन्दगी चाहती हूँ। जितनी चली हूँ उससे और अधिक आगे जाना चाहती हूँ।'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं।'—हाजीजी ने कहा—'अब यह आये हैं महेन्द्रबाबू, इनसे कहो न, मंसूरी चलें। इनके साथ—'

'मैंने कहा है, अब्बा ! आप भी कहिये !'

महेन्द्र ने कहा—'मैं जाऊँगा ।'

'नहीं, साथ चलो, भाई ! मैं तो बूढ़ा हूं। नौकर पर भरोसा क्या ?'

महेन्द्र ने कहा—'अच्छा, बताऊँगा ।'

'आज ही !'

जेबुन्निसा ने कहा—'नहीं, अभी !'—उसने कहा—'और बताना क्या, चलना है, जरूर !'

और इतना सुनकर महेन्द्र मौन रह गया।

उसी समय अम्मी आई,—तश्तरी में कुछ खाने का सामान लिये हुए।

हाजीजी ने कहा—'जेबुन की मा, फिक्र दूर हुई। महेन्द्र-बाबू चलेंगे, कल ही।'

जेबुन की मा ने कहा—'हाँ, बेटा ! तुम होगे, तो जेबुन का मन लगा रहेगा।'

महेन्द्र फिर भी मौन था। वह सिर झुकाये हुए था।

जेबुन की मां ने कहा—'तो कुछ खा लो।'

महेन्द्र ने जैसे चौंक कर कहा—'अभी खाकर आया हूँ।'

'खा लीजिये न, खाईये।' जेबुन्निसा ने कहा।

तश्तरी ले ली गयी। उसमें से एक बर्फी का टुकड़ा खाकर महेन्द्र ने कहा—'काम बहुत है। सोचता हूँ, देश की जो वर्तमान अवस्था है, उसे देखते हुए मेरा कहीं जाना क्षेत्र से दूर होना है।'

जेबुन्निसा चुप थी। बात हाजीजी ने नहीं सुनी। जेबुन को छोड़ किसी और ने नहीं।

महेन्द्र ने फिरकहा–'घर जाकर भी, मैं 'उदय' के लिए रोज ही लिखता और भेजता था। सोचता हूँ, जाऊँगा तो, वहाँ भी काम

करना पड़ेगा। यों, भला तुम्हारे क्या काम आऊँगा और बोझ बनूँगा।'

इतना सुन कर जेबुन्निसा ने मुसकराया—'विश्वास रक्खो, बोझ तुम नहीं बनोगे, मैं बनूँगी। जब माता-पिता के लिये बोझ हूँ तो तुम्हारे कन्धों पर भी अपना यह बोझ डाल दूँगी। मैं मर कर भी तुम्हारे आँसू अपने साथ ले जाऊँगी।'

उसी समय, हाजीजी ने कहा—'क्या है, बेटी ?'

जेबुन ने कहा—'अब्बा मैं कह रही हूँ कि मैं सबके लिये बोझ हूँ।'

यह सुन कर हाजीजो हँसे। बोले—'जेबुन, कोई किसी के लिए बोझ नहीं। बस, यह खैरियत रहे कि खुदा के लिए बोझ न हो, अपने तईं भी नहीं।'

महेन्द्र ने तश्तरी की मिठाई खा ली और पानी पी लिया। जब वह उठा, तो जेबुन्निसा ने उसकी ओर देखा। महेन्द्र ने कहा—'मैं चलूँगा।'

हाजीजी ने कहा—'सुबह आठ बजे। सीट रिजर्व के लिए आज आदमी भेज दूँगा।'

महेन्द्र ने कहा—'जी, हाँ। आठ बजे स्टेशन पर मिलूँगा।'

और वह सबसे विदा लेकर चल दिया। जब वह घर पहुंचा, तो देखा, अभयबाबू प्रतीक्षा में थे। देखते ही, खड़े होकर छाती से लग गये। बोले—'भले मानुस, ऐसे गये कि दो महीने निकाल दिये।' उन्होंने पूछा—'देखा, जेबुन्निसा को! सुना, कल मंसूरी जायगी। बहुत दुर्बल हो गई, बेचारी!'

उसी समय रानी भी वहाँ आ गयी।

महेन्द्र ने कहा—'मैं आया हुआ भी बेकार रहा! हाजीजी

को मंसूरी चलने का वचन दे आया। इंकार भी किया, पर जेबुन्निसा की इच्छा को देख कर झुक गया।'

रानी ने कहा—'भैया, तुमने ठीक किया। यह ऐसा ही अवसर था।'

'तो जाओगे, तुम !'—अभयबाबू ने कुछ चिन्तित भाव लेकर कहा—'काम बढ़ रहा है। मुझ पर बोझ पड़ रहा है।'

'हां, कल जाऊँगा। अवसर मिलते ही लौट आऊँगा।'

रानी ने फिर कहा—'जाना चाहिये,—जरूर !'

यह सुन कर अभयबाबू ने कुछ नहीं कहा। बरबस, मुँह में आई हुई बात को रोक लिया।

छब्बीसवाँ अध्याय

पहाड़ पर जाकर जेबुन्निसा धीरे-धीरे स्वस्थ हो चली। उठ-बैठने लगी। महेन्द्रबाबू ने जिस तत्परता के साथ उसकी सेवा की, भले ही, वह जेबुन्निसा के लिये मुँह पर कहने की बात नहीं थी, परन्तु हाजीजी और जेबुन्निसा की मा के हृदय में अवश्य ही, महेन्द्र की वह भावना एक सुन्दर और अनोखी कल्पना बन-कर अंकित हो गई थी। यही कारण था कि उन्होंने मंसूरी में जो कोठी किराये पर ली और उसके जिस कमरे में जेबुन्निसा रखी गई, उसमें दिनमें एक-दो बार आने के अतिरिक्त मा और पिता को आने की आवश्यकता नहीं दिखायी दी। महेन्द्र ने स्वतः ही जेबुन की सेवा में रहने वाले नौकर तक की आवश्ककता हटा दी। जेबुन का पेशाब और पाखाना उठाने का काम भी उसने अपने ऊपर ले लिया था। आश्चर्य कि इसके लिये जेबुन ने भी इन्कार नहीं किया। और जैसे महेन्द्र को वह सेवा-भाव रुचि-कर था, उसे वह अपना ही काम लगता था। इसलिये जेबुन्निसा यदि कुछ कहना भी चाहती, तो उसे रोक दिया जाता। ऐसे भी अनेक अवसर आये कि जब दिगम्बरप्राय अवस्था में जेबुन को पाकर महेन्द्र उसे कपड़ा उढ़ाता और पहनाता था। आरम्भ में जेबुन के लिये यह संकोच और लज्जा का विषय था, परन्तु जब देर तक उसने अपने-आपको असमर्थ पाया, तो अनायास ही, अपनेको पूर्णरूपसे महेन्द्र के ऊपर छोड़ दिया। बीमारी में उसका मिजाज कुछ चिड़चिड़ा बन गया था। महेन्द्र उसके पास रहता, तो उसी को उस चिड़चिड़ेपन का शिकार बनना पड़ता। लेकिन

आश्चर्य था कि यह जेबुन के उस रोषपूर्ण वाक्यों को सुनकर भी सदा मुसकराता और बीमार को जैसी-कुछ आवश्यकता होती, उसको पूर्ण करने का प्रयत्न करता । जेबुन्निसा बिस्तर पर पड़ी है, महेन्द्र पास ही कुर्सी पर बैठा हुआ पढ़ रहा है, अथवा 'उदय' के लिये लेख लिख रहा है कि तभी; किसी मच्छर या मक्खी का स्पर्श पाकर जेबुन चौंकती । वह तुरन्त क्रुद्ध भी हो जाती । वह कहती—'तुमने यह कैसी चादर ओढ़ाई है,— ओह! तुम कुछ नहीं जानते...इतना भी नहीं!' और कहती—'अभीतक तुमने पानी नहीं दिया ! मारना चाहते हो, तुम ! नहीं होता, तो मा को बुलाओ,—नौकर को !...मैंने कहा न, धोती बांध दो, सलीके से,—उफ !' और महेन्द्रकुमार चुप-चुप धोती बांधता, चादर को ठीक से ओढ़ाता । जेबुन्निसा को पेशाब करना है, तो पात्र लाकर रखता और उसे बैठाकर पकड़ लेता हां वह मुंह से कुछ न कह पाता। वह इसके लिये सदा सचेत रहता कि किस बात पर नाराज होगी, जेबुन ! किस पर नहीं । किसी बीमार की परिचर्या में वह दक्ष हो सकेगा, इसका भी उसे भरोसा नहीं था। जेबुन जल्दी स्वस्थ होगी, इसका भी उसे विश्वास नहीं था । डाक्टरों ने उसे तपेदिक का रोग बता दिया था। लेकिन आशा के विपरीत, जेबुन्निसा स्वस्थ हो चली । वह बंगले से निकल कर महेन्द्र के साथ पार्क तक भी जाने लगी।

जब वह पूर्ववत् स्वस्थ हो गयी, तो एक दिन पार्क में बैठे हुए, उन दोनों को काफी देर हो गयी थी। ऊपर सिर पर चन्द्रमा की धवल चांदनी खिल रही थी। दूर पर ओस भी पड़ रही थी। धीरे-धीरे ठण्ड बढ़ रही थी। जनता अपने घरों को लौटने लगी थी। सामने पहाड़ पर जमी हुई बर्फ सुहावनी लगती थी।

उसी समय, एकाएक जेबुन्निसा ने महेन्द्र के हाथ पर अपना हाथ रखा और कहा—'एक बात कहूँ !'

सुनकर महेन्द्र ने उसकी ओर देखा।

'तुम मुझे क्षमा कर दो ! मुंह से कह दो।'

महेन्द्र बात नहीं समझ सका। वह तब भी मौन बना रहा।

जेबुन ने फिर कहा—'अपनी बीमारी में मैंने तुमसे न जानें क्या-क्या कहा, कितना...

सुनकर महेन्द्र हंस दिया। वह बोला—'मुझे दिखता है, तुम अब भी बीमार हो। अपने मन से दुर्बल हो !'

जेबुन्निसा बोली—'शायद !'—उसने कहा—'आज अम्मी कहती थीं कि मैंने तुमसे वह सब कहा, जो नौकर क्या, किसीसे भी नहीं कहना चाहिए था,—बड़ा ही बेहूदा !'

'तो तुमने क्या कहा, अम्मी से ?'

'मैं क्या कहती ! कह दिया, बीमारी थी, जैसे अजान !'

'और अब क्या हो ! अब नहीं हो अजान,—क्यों ! महेन्द्र ने हंस दिया।

बात सुनकर क्षणभर जेबुन मौन रह गयी। जैसे वह अपने-आप में खो गयी।

महेन्द्र ने कहा—'सच, मुझे दिखता है, तुम अब भी अजान हो !'

जेबुन ने कहा—'तुम्हारे सामने ऐसी हूँ,—सच !'

'तो मुझे भी समझ लो।'

उसी समय, जेबुन्निसा ने चन्द्रमा की ओर देखा और कहा—'आह, मैं कितनी सुखी हूँ ! अब दिखता है कि मैं अकेली नहीं हूँ,—जुदी नहीं।'—और तभी उसने फिर महेन्द्र की ओर देखकर उसके कन्धे पर अपना मुंह रखकर कहा—'मेरे प्राण,

चन्द्रमा भी शीतल है, मैं भी...तुममें मिलकर, मेरा अपना अब कुछ भी नहीं रह गया है। लगता है, युग-युग से, कोटि-कोटि जन्मों से, मैंने तुम्हारा पल्ला पकड़ा हुआ है। मैंने जरूर खुदा-बन्द से यह आशीष पाया है कि तुम्हें पाती रहूँ...जहां भी रहो, तुम्हें खोजती रहूँ—इस जेबुन्निसा के लिये! अपने लिये!'

उस समय महेन्द्र अतिशय गम्भीर था। जेबुन्निसा का हाथ अब भी उसके हाथ पर रखा हुआ था और कन्धे पर मुंह। उसने अपने जीवन का जितना उद्वेग और स्फुरण उन क्षणों में अनुभव किया, कदाचित् वैसा आतुर मन उसका कभी नहीं हुआ। इसी से, एकाएक उसने जेबुन का हाथ दबा लिया और उसका मुँह अपने कन्धे से हटा, अपनी बाहुओं में लेकर, जब उसके अधरों पर अपना मुँह रख दिया तो उसे यह देख कर सचमुच जरा भी अचरज नहीं हुआ कि जेबुन्निसा ने स्वयं जैसे अपने-आपको समर्पित कर दिया और जितना भी बोझ उसमें था, वह सब महेन्द्र के ऊपर डाल दिया।

देर तक महेन्द्र उस अवस्था में रहा। मानो वह स्वयं भी अपनी स्थिति को भूल गया। लेकिन जब, उसने दूर पेड़ पर बैठी हुई कोयल का मधुर स्वर सुना, तो जेबुन के उन गुलाबी अधरों से अपना मुँह उठा कर बोला—'आह, जेबुन!'

लेकिन जेबुन का मुँह बन्द था। जैसे उसका साँस रुक गया। मन और जीवन निहाल बन कर निःशक्त हो गया।

महेन्द्र ने कहा—'जीवन यह भी है...और भी। इस कोयल का भी। शायद वह अधिक मधुर है; हमसे अधिक स्वतन्त्र!'—और तभी उसने कहा—'सच, आज तुम्हें हुआ क्या! बताओ, तुमने सोचा क्या! तुमने मुझे भी पागल बना दिया। आज मेरे मन में आया कि तुम्हें अपने-आप में छिपा लूँ, तुम्हें

एक कर लूँ, जेबुन्निसा !' तदन्तर वह बोला—'भला, यह बात भी कुछ ! जैसे मैंने समझा ही नहीं कि हम दो नहीं हैं—हम अलग-नहीं—एक हैं।' उसने कहा—'जेबुन्निसा, जीवन भी एक पहेली है। जैसे गूढ़ ! सागर में लहरें उठती हैं और आपस में मिलती हैं। चलती हैं और लोप हो जाती हैं। जैसे फिर मिलने के लिये !...हाँ, हमारा यह जीवन भी इसी तरह की एक लहर है, जेबुन्निसा ! जीवन सांस्कृतिक है, बौद्धिक है। इसके पीछे जिस पुरातन की पुकार को निर्दिष्ट किया गया है, वह हमारी वाणी में है, हृदय में है। जानती हो, कल तुम्हारी अम्मी ने मुझसे क्या कहा ? उन्होंने कहा, जेबुन तुम्हारी है,—तुम्हारे जीवन की साथिन—वह कहने लगा—'भला, मैं उन्हें कैसे बताता कि जेबुन मेरी आज से बहुत पहिले साथिन बन गयी है। और मैं तुमसे कहता हूँ'—उसने जेबुन की आँखों में झाँक कर कहा—'पुरुष दुर्बल होता है,—जैसे आग ! इस आग में तुम अपने को जला मत डालना, जेबुन ! तुम सचेत रहना। मेरी दुर्बलता और मानसिक हीनता का गलत अर्थ न लगाना। तुम भी गुमराह न करना !'

जेबुन ने अपना सिर झुका लिया। अपने हाथ के नाखूनों को आपस में रगड़ना आरम्भ कर दिया।

वह बोला—'यह चन्द्रमा, यह इसकी चाँदनी, यह प्रकृति का विराट-दर्शन, शायद हमसे कहता है कि एक बन कर भी अगर कुछ न पा सके, आपस की पीड़ा न देख सके, एक-दूसरे के हृदय का मधुर और कोमल संगीत न सुन सके, तो जीवन क्या... उसका अर्थ क्या ! कदाचित, इसी से, यह निर्मम, रहस्यमय और अपने-आप में पूर्ण चन्द्रमा, निश्चय ही, नित-नित ही घोर काली-रात में प्रकाश करता है। यह भी अपनी चाँदनी का श्वेत पल्ला

फैलाता है। यह भी कुछ माँगता है। कुछ खोजता है, जेबुन! दिखता है, अभाव इसमें भी है...यह भी पीड़ा भरे रागों का केन्द्र है!' वह कहने लगा,—'वैज्ञानिक कहते हैं, इस शीतल चन्द्रमा के अन्तर में जाने कितने ज्वालामुखी भभक रहे हैं और लपटें मार रहे हैं! पर अचरज है, ऊपर से शीतल है, यह चन्द्रमा! जैसे अपने स्वभाव के विपरीत!'—उसने कहा—'हाँ, यही तो हैं, इस नर और नारी की अवस्था...आग इनके भी पास है,—अखण्ड वासनाओं का द्वन्द्व!' इतना कहते ही, वह विचलित हो गया। नितांत कठिन और कठोर बनकर बोला—'ओह, यह भी विषमता है! नारी और नर को यह भी एक असमर्थता है! समाज धर्म और विवेक के द्वारा जिस नारी को मा कहता है, अपनी बहिन बनाता है, तुमने देखा न, यह उसी को भोगता है—उसी की स्थूल और निर्मम काया को ठगना चाहता है ...

उसने पीड़ित स्वर से कहा—हाय, बेचारा मानव!

'लेकिन, जेबुन!—'महेन्द्र ने फिर कहा—'जानती हो, इसमें दोष किसका है? किसने पुरुष की आग को सुलगाया है? किसने इसे नर से अधम और नीच बना दिया है? मेरा मत है, नारी ने! हाँ, नारी ने स्वयं ही अपना सांस्कृतिक रूप भुला दिया! उसने पुरुष की वासना में एक बार ही आँख मूँद कर अपने को झोंक दिया, प्यारी जेबुन!'

जेबुन फिर भी मौन थी। वह फिर भी चन्द्रमा की ओर मुँह उठाये हुई थी। उसकी आँखों की पलकें उठी थीं।

महेन्द्र ने कहा—'विश्वास करो, जेबुन! यह महेन्द्र तुम्हारा है,—तुम्हारा रहेगा!'

और तब एकाएक ही, फिर जेबुन ने अपना सिर महेन्द्र की छाती पर टिका कर कहा—'आह,—तुम मेरे!'

तब महेन्द्र धीरे-धीरे, जैसे बड़े मन के साथ, उसके सुनहरे रेशम सरीखे बालों पर अपना हाथ फेरने लगा। उसी समय, उसने कहा—'कहाँ के थे, कितनी दूर के थे हम लोग कि जाने कुदरत की किस प्रेरणा पर अनायास आ मिले।'—वह बोला—'जब मनुष्य जागता है, आँख खोलता है, आत्मीयता देखता है, तो वह जाति और धर्म नहीं देखता। वह हृदय देखता है। वह समस्त विश्व को भूल, अपने प्रेमी की भावना में ही, डूब जाना पसन्द करता है, जेबुन्निसा!'

जेबुन्निसा ने इतना सुना और आल्हादित बन कर मुसकरा दिया। मानो उसका अन्तर कोटि-कोटि आशीषों को पाकर खिल उठा।

सत्ताईसवाँ अध्याय

लेकिन घटना-चक्र घूम रहा था। जेबुन्निसा के पिता को सांस का पुराना रोग था। वही रोग मंसूरी में रहते हुए बढ़ गया। निदान, एक दिन उन्होंने लौटने का विचार किया। घर आकर वह इतने अशक्त हो गये कि बिस्तर से नहीं उठ सके। उनकी तीमारदारी का बोझ जेबुन्निसा के ऊपर था। महेन्द्र प्रजा-संघ के काम में जुट गया। वह सुबह-शाम हाजी साहब के पास जाता और उनकी तबियत का हाल पूछ आता। वहीं पर, एक दिन जब वह गया, तो हाजी साहब ने एक कागज उसके हाथ पर रखा। वह वसीयत नामा था। जिसमें हाजीजी का पैसा और जायदाद का आधा हिस्सा महेन्द्र के नाम और आधा जेबुन्निसा के नाम लिखा हुआ था। उस समय रानी और अभयबाबू भी वहां उपस्थित थे। जेबुन्निसा और उसकी मा भी।

महेन्द्र ने वसीयत पढ़ी और अभयबाबू के हाथ में दे दी। उसी समय उसने हाजीजी की ओर देखकर कहा—'इसकी आवश्यकता नहीं थी!'

हाजीजी कमजोर थे, कठिनाई से हँसे—'क्यों नहीं थी, बेटा? थी।'

महेन्द्र ने कहा—'जेबुन्निसा के नाम की वसीयत ही काफी थी। वही उपयुक्त थी।'

हाजीजी ने कहा—'बेटे, यह मेरी इच्छा थी। जेबुन्निसा की मा भी यही चाहती थी।'—उन्होंने कहा—'यह सब पैसा मैंने कमाया है। इसमें खानदान वालों का हिस्सा नहीं है।'

इस वार्ता के दूसरे दिन हाजीजी का देहावसान हो गया।

एक दिन के प्रातःकाल महेन्द्र, रानी और अभयबाबू जब जेबुन्निसा के घर से बिदा हो रहे थे, उसी समय, वहां एक मोटर आकर रुकी। नजीर मुहम्मद ने उसमें से उतरते हुए सबकी ओर देखा और कहा—'आदाबअर्ज है, जनाब!' और उसने तब जेबुन्निसा की ओर देख कर कहा—'मैं रात ही बाहर से आया, तो सुना!'—उसने साँस भर कर कहा—'खुदा की मर्जी!'—यह कहते हुए नजीर मुहम्मद ने जैसे विशेष रूप से रानी और महेन्द्र की ओर लक्ष किया। वह रानी से बोला—'मैं दूर तो हो गया, पर तुम्हें नहीं भुला सका, भाभी! कहो, खैरियत तो है! विनोद अच्छा है। और आप सुनाइये, महेन्द्रबाबू?'—उसने महेन्द्र की ओर देख कर कहा—'सुना, हाजीसाहब ने अपनी वसीयत में आधा हिस्सा आपका किया,—आमीन!'

रानी ने चलने के लिये उद्यत होते हुए कहा—'याद तो करते हो भाभी को, पर आते नहीं,—बड़े आदमी हो गये हो, भाई!'

'नहीं, भाभी! जो-कुछ हुआ हूँ, वैसा बनने के लिये फँस भी बहुत गया हूँ। जिम्मेदारियों से लद गया हूँ। मैं भाई साहब को भी याद करता हूँ।' अभयबाबू की ओर देख कर उसने कहा।

रानी ने आगे बढ़ते हुए कहा—'अच्छा!'

नजीर ने कहा—'अच्छा, सलाम!' वह अन्दर गया।

अम्मीने नजीरसे अभिवादन पाकरकहा—'सलाम, बेटा! आओ!'

नजीर बैठ गया। उसने कहा—'खुदा की मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं किया जा सकता, अम्मी! यही होना था, एक दिन! अफसोस यह है, हमारे बीच से एक काबिल और समझदार इन्सान उठ गया!'

अम्मी ने कहा—'बेटा, मैं चली जाती, तो अच्छा था!'

नजीर मुहम्मद मुसकराया—'खुदा के दरबार में यह नहीं देखा जाता, अम्मी !'—उसी समय उसने जेबुन की ओर देखा और कहा—'जेबुन बहिन, तुम अब क्या सोचती हो ! मुझे जहाँ हाजी साहब की मातम पुरसी में शरीक होना था, वहाँ, मुझे तुमसे भी यह कहना था कि जिस इसलाम ने तुम्हें पैदा किया है, उसके लिये तुम्हारा भी कोई फर्ज है। यह तो सुना मैंने कि हाजीजी अपना रुपया और जायदाद महेन्द्र के नाम भी कर गये हैं। सोचता हूँ वह शाइद तुम्हारी मर्जी को देख कर ही कर गये। लेकिन जिन्दगी तो तुम्हें बितानी है, जेबुन बहिन ! तुम्हें ही अपनी आँखों से देखना है। कौमपरस्ती भी कोई चीज है। तुम सरीखी बहिन से इसलाम को भी कोई उम्मीद है।'

जेबुन ने मुसकराकर पूछा—'मुझसे क्या उम्मीद है, नजीर भाई ! कोई खिदमत ?' उसने कहा—'मैंने तो सुना था, आप पाकिस्तान जा रहे हैं। सुनूँ, कब जाने वाले हैं ?'

नजीर मुहम्मद ने कहा—'बात सामने है। तय करना बाकी है। वैसे चार करोड़ से ऊपर मुसलमान यहाँ भी हैं।'

जेबुन ने मानो ताने के स्वर से कहा—'तो क्या वे नहीं जायेंगे ! जब पाकिस्तान बना है, तो क्यों न जायेंगे ! वह यहाँ अब किस अधिकार पर रहेंगे ?'

बात सुनी, तो नजीर मुहम्मद मौन रह गया। तदन्तर बोला—'यह भी एक अहम सवाल है, जेबुन्निसा ! मैं सोच नहीं पाता कि कल क्या हो ! कुछ नहीं देख पाता ! पर तुम बताओ कि क्या सच ही, महेन्द्र से विवाह करना चाहती हो ? हिन्दू बनने वाली हो ?' वह बोला—'जेबुन्निसा, इसलाम खतरे में है ! तुम उसके मुँह पर तमाचा मत मारो ! मजहब परस्ती समझो !'

जेबुन्निसा ने कह—महेन्द्रबाबू के साथ विवाह करके भी मैं इसलाम की खिदमत कर सकूँगी। वैसे, तुम्हारे समान आज क्या, मैं कभी भी इसलाम को खतरे में नहीं मानूँगी। हाँ, इसके नेता गलत रास्ते पर चले, तो पीछे जो कुछ हुआ, वैसा ही कत्ले-आम आगे भी देखूँगी !'

नजीर मुहम्मद ने कुण्ठित बन कर कहा—'महेन्द्र से विवाह करके तुम इसलाम की न रह सकोगी।'

नजीर की बात सुनते ही, जेबुन के मन में आया कि उसे फटकार दे। परन्तु उसने नितांत धीर तथा शास्वत बन कर कहा—'ऐसा तुम्हारा खयाल है,—मेरा नहीं नजीर भाई !'

अम्मी ने कहा—'बेटा, बात जेबुन की है। इसी को देखनी है। मैं तो बूढ़ी हूँ, आज नहीं तो कल, यहाँ से चली जाने वाली हूँ।'

उसी समय जेबुन ने अपनी अम्मी की ओर देख कर कहा—'अम्मी, आदमी बड़ी जल्दी बदलता है ! भाई नजीर भी बदल गये ! एक दिन यही कौमपरस्ती को कोसते थे और आज उसी के तास्सुब से पुर दीखते हैं!'—उसने नजीर की ओर देख कर कहा—'क्यों भाई, क्या वजह हुई, ऐसी ? क्या इसलाम की रहनुमाई ने किया, या पैसे के लालच ने !...वैसे सुनती तो हूँ कि आपके पास कई लाख रुपया हो गया है। अमीर घर में विवाह भी हो गया। खूबसूरत दुलहन भी मिल गयी...मोटर, नौकर, ऐश... हाँ, भाई !' उसने तभी जैसे मचल कर कहा—'ओह, इतनी जल्दी बदलता है, आदमी !...यह पैसे पर बिका हुआ...कौमपरस्ती का झूठा नारा लगाता हुआ !' वह बोली—'सच, आप भी पाकिस्तान जाइये ! वहाँ के मुसलमानों को बताइये, कि भारत का हिन्दू

काफिर है ! चार करोड़ मुसलमानों को गुलाम बना रहा है ।' वह एकाएक उत्तेजित बन कर बोली—'भाईजान ! एक इल्तिजा करती हूँ कि यदि आपके दिल में जरा भी इसलाम के लिए दर्द है, तो इस कौमपरस्ती के नारे को दफना दीजिये ! भारत के मुसलमान को इंसान बनने दीजिये । वह बहुत परेशान रहा है, उसे अब तो आराम की साँस लेने दीजिये !'

उसी समय अम्मी ने अनुभव किया किया कि जेबुन नजीर-मुहम्मद का अपमान करना चाहती है। तो उसने जोर से कहा—'जेबुन—'

'हाँ' अम्मी ! ये मेरे नजीर भाई ! एक दिन यही मेरे हमदर्द थे,—मेरे पूरे खैरख्वाह बनते थे । ये आज बदल गये हैं, जैसे !'

बात सुनने के साथ नजीर मुहम्मद सिगरेट का कश खींच कर धुआँ छोड़ रहा था । वह कभी जेबुन की ओर देखता और कभी उसकी अम्मी की ओर देखने लगता था ।

उसी समय जेबुन ने फिर कहा—'नजीर भाई, तुम मर्द हो, मैं औरत ! सुनती हूँ मर्द सख्त होता है,—शायद पत्थर ! यह भी सुना है कि यह कभी मोम बनता है,—जैसे पानी ! पर इस औरत का क्या,—इस जेबुन का—जहाँ पड़ी है, इसे वहीं तो पड़े रहना है ! चाहे पत्थर कहो, मोम कहो, पानी कहो, हाँ, इसे कुछ भी बने रहना है, भाई ! दिखता है, जिन्दगी के जिस दरिया किनारे पर इसका कारवाँ आकर खड़ा हुआ है, वहाँ लुटेरे हैं और इसे ठगना चाहते हैं । और आगे बढ़ने ने के लिये जो रास्ता है, वह तंग है । गहरी दलदल को पार करके कारवाँ निकल नहीं सकता !... हाँ, नजीर भाई ! देखते तो हैं न आप, कि दूर से चला आ रहा है, यह जिन्दगी का कारवाँ ! दिखता है, अब इसे यहीं रुक जाना

है। फिर लौट जाना है, अपने देश !' वह बोली—'मुसलिम शरीयत से, तुम्हारी तरह, मैं जन्नत की ख्वाहिश नहीं करती। मुझे यहीं रहना है, यहीं मरना है। जिस बस्ती में मैं बसी हूँ, उसी को गैर मानना जहालत है...खुद अपने को अन्धेरे में डाल देना है, भाई ! मेरी यहीं बहिश्त है, यहीं दोजख !' यह कहने के साथ, जेबुन के माथे में बल पड़ गये। नाक के नासूर फूल गये। आँखें चढ़ गयीं। उस अवस्था में उसने फिर कहा—'जहन्नुम में जायें वे लोग ! वे मुल्ला ! पण्डित ! पादरी ! जो तुम जैसों को भी बरगला सकते हैं। आह, वह तुम-जैसों के दिमाग में भी यह बात बैठा सकते हैं कि मजहब और...इन्सानियत और...'

एकाएक कठोर होकर उसने कहा—'खुदा जाने, ऐसे इन्सानों पर किस दिन कहर टूटेगा...पैसे वालों का किस दिन मुँह काला होगा कि जो तुम जैसे नौजवानों और वफादारों को पैसे का चस्का लगा कर तोड़ सकते हैं और जज़बातों को लूट सकते हैं... और तुम फिर भी मुझसे कहने आये हो, नजीर भाई ! मुझी से ! —उसने कहा—'तुम मुगालते में न रहो, इसलिये यह भी सुनते जाओ, महेन्द्रबाबू मेरे खाविन्द हैं। वह मन से मेरे बन चुके हैं। जिन्दगी से भी मेरे हो चुके ! तुम कौम के नेता हो, चाहो तो, ढिंडोरा पीट दो...चाहो तो जेबुन का मुँह काला करवा दो...इसे मरवा दो, नजीर मुहम्मद !'

उसी समय नजीर मुहम्मद कुर्सी से उठा और साँस भर कर बोला—'अच्छा, अम्मी, मैं चला ! जेबुन बहिन से बहुत सुना ! इन्होंने बहुत-कुछ कहा !'

अम्मी ने कहा—'बुरा न मानना बेटा !'

सुनकर नजीर मुहम्मद हँस दिया—'अच्छा, सलाम !'

अम्मी ने कहा 'सलाम !'

नजीर मुहम्मद चला गया।

उसके पीछे ही अम्मी ने कहा—'जेबुन, पगली कहीं की !'

सुनकर जेबुन ने उत्तर नहीं दिया।

अम्मी ने कहा—'जानती नहीं, यह कौम का सवाल है। अपनी कौम के लिए किसके दिल में दर्द नहीं उठता है !'

'मैं खूब जानती हूं, अम्मी ! इसीलिए कहा।'—जेबुन बोली–'तुम कौमियत के जिस दर्द को देखती हो, वह तो नाश है—पागलपन है ! अम्मी, दुनिया का यह बड़ा काफ़िला हमारे अपने ही दर्द से पुर बना है। बता तो, यहां कौन पराया है ? सभी अपने हैं। चन्द जाहिलों ने सभी को गैर बना दिया है...मजहब और खुदपरस्ती के नाम पर ही तो दुनिया का यह बड़ा कुटुम्ब टुकड़ों में बंट गया है...अम्मी, इन्सान रो रहा है...एक मा को अपनी छाती का दूध अपने ही पेट के बच्चे को पिला देना अच्छा लगता है।' जेबुन का स्वर कठोर हो गया—'बता तो अम्मी, उस औरत को क्या मा बनने का अधिकार है कि जिसकी छाती का दूध,—कुदरत की नियामत को–दूसरे बच्चे को देना पसन्द नहीं किया जाता ! मानो वह दूसरा बच्चा उसका नहीं...वह इन्सानी जज्बात नहीं... हमारा खून नहीं...अम्मी, खुदा देखता है, हमने अपना रास्ता छोड़ दिया है ! इन्सान को इन्सान मानना भी भुला दिया है...'

दूसरे दिन, जेबुन्निसा बाहर से घर लौटी, तो सीधी अम्मी के कमरे में जाकर बोली—'अम्मी, सुना कुछ !'—उसने कहा–'महेन्द्रबाबू के पास एक गुमनाम चिट्ठी आई है कि अगर जेबुन्निसा से शादी की, तो कत्ल कर दिये जाओगे !' और यह कहने के साथ ही, उसने आंखों में खून लाकर कहा–'यह बदमाश नजीर का काम है। वह अब अपनी जहालत पर उतर आया है। कौम को बदनाम कर रहा है !'

इतना कहते ही, जेबुन्निसा दूसरी ओर चली गयी। वह अपने कमरे में जा बैठी। लेकिन अम्मी ने न तो अपना मत दिया, न एकाएक उसे कुछ सूझ ही पड़ा। बात सुनकर लगा कि वह अपने-आप में डूब गयी। वह कहीं और जाकर तिरोहित हो गयी। परन्तु वह उस क्षण में कितनी बेचैन और आतुर बन गयी, यह तब स्पष्ट हुआ कि जब अपने कमरे से निकल कर जेबुन के पास पहुंची और उसकी पीठ पीछे जाकर बोली—'तो अब क्या होगा, बेटी! महेन्द्र-बाबू ने क्या कहा?'

उस समय जेबुन एक बड़े अधिकारी को पत्र लिख रही थी। अम्मी की बात सुनकर रुक गयी और बोली—'कहते क्या, अम्मी! मौत से कायर डरते हैं। वह डरने वाले नहीं हैं!'

बरबस, अम्मी के मुंह से निकला—'या, अल्लाह!'

जेबुन ने कहा—'जिस कौम में ऐसे लोग हैं, वह कौम नहीं पनप सकती! मुहम्मद साहब के नाम पर धब्बा लगाते हैं, ये लोग!'

अम्मी ने अपना माथा पकड़ लिया और धम्म से काऊच पर गिर कर देर का रुका हुआ सांस छोड़ दिया।

जेबुन ने कहा—'और अम्मी, बताये देती हूं, वह मारे जायेंगे तो शहर में खून के नाले बह जायेंगे...नजीर मुहम्मद भी नहीं बचेंगे!' वह बोली—लिखना आसान है, इतना करना नहीं। बेचारे गरीब मुसलमान अभी परेशानी के आलम से पार नहीं हुए हैं कि ये लोग फिर बदमाशी करना चाहते हैं। मुसलमान शान्ति से अपनी जिन्दगी बिताना चाहते हैं, और कुछ लोग हैं कि अपने स्वार्थ के लिए उनके लिए मुसीबत पैदा कर रहे हैं।'

अम्मी ने कहा—'खुदा पाक के बच्चे रोटियों को तरस रहे हैं!'

आतुर बनकर जेबुन बोली—'हां, तुम ठीक कहती हो, अम्मी!

कांग्रेस के हाथ में सरकार न होती, तो क्या बुजुर्गों की जमीन पर तुम बैठी होतीं ! तुम भी पाकिस्तान में होतीं,—भूखी, भिखारिन !'

सुनकर, अम्मी ने सांस भरी, जैसे सहम गयी !'

जेबुन बोली—'मुसलमानों के दिमाग के फितूर ने मुसलिम बालाएं गलत रास्ते पर फेंक दीं...उनकी अस्मत...'

एकाएक विचलित बनकर अम्मी चीख उठी—'अल्लाह !'

जेबुन ने कहा—इस देश में सभी एक हैं । भाई-भाई हैं !'

अम्मी बोली—'पुलिस अपनी नहीं, फौज नहीं।'

चकित बनकर जेबुन बोली—'न, अम्मी ! सभी अपने हैं ! अधिकार अपने हैं। जरूरत है, तुम देश को अपना समझो,—इसका दर्द समझो !'

उसने कहा—'और अम्मी, आज बताती हूँ, पाकिस्तान अलग नहीं रहेगा। वहां का जन-समाज तड़प रहा है। उसका जिस्म वहां है, मन यहां है...एक दिन जरूर, वह समाज विद्रोही बनकर भारत की छाती से आ लगेगा। सरमायेदारी का जिस दिन अन्त होगा, तो इन्सान फिर दूर-दूर नहीं रहेगा। संसार एक कुटुम्ब है—इसे ऐसा ही बनकर, जीवित रहना पड़ेगा !'

अम्मी ने मानों शान्ति का सांस लेकर कहा—'खुदा मदद करेगा !'

जेबुन बोली—'हां, खुदा भी मदद करेगा। जिस सत्य को आज हमने छोड़ दिया है, एक दिन वह हमारा पथ-प्रदर्शन करेगा। अन्धेरे में वही रास्ता दिखायेगा।' वह बोली—'अम्मी, महेन्द्रबाबू को अब मुझसे कोई नहीं छीन सकेगा। हम एक हो चुके हैं। एक दिन मजिस्ट्रेट के सामने लिख कर दे देना होगा। हमारा वहीं विवाह होगा।'

उतावलेपन में अम्मी ने पूछा—'तो कब ? किस दिन ?'

मुसकराकर जेबुन बोली–'हां, शायद कल !' उसने कहा—'अम्मी, तुम यकीन करो, मैं महेन्द्रबाबू को पाकर, कौम की खिदमत करूंगी। मैं इसलाम के मानने वालों के घर-घर जाकर सुनाऊंगी कि इन्सान एक है, खुदा एक ! मैं उनसे कहूंगी, हिन्दू काफिर नहीं है, तुम्हारा भाई है। बड़ा भाई है।' वह बोली–'महेन्द्रबाबू शादी नहीं चाहते, स्त्री भी नहीं चाहते। वह जिन्दगी चाहते हैं। मुझसे भी वह यही मांग करते हैं।'–वह कहने लगी-'सो, मैं अब उनकी हूं,–उनकी रहूंगी। मैं अब उनका ही काम करूंगी। ऐसा करने के लिए मुझे दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकेगी, अम्मी ! मैं प्रजा-संघ के काम में लग जाऊंगी।'—वह कह रही थी—'अभय-बाबू ने संघ के काम को उम्मीद से अधिक आगे बढ़ाया है। उन्होंने पैसेवालों से मदद जरूर ली है, मगर उनके ऊपर अपने को छोड़ नहीं दिया है। देश के बड़े-बड़े शहरों में दफ्तर खुल गये हैं। सोसायटी काम करने लगी है। 'उदय' मजदूर और किसानों की अवस्था का चित्रण करता है। प्रजा-संघ का दफ्तर तथा स्कूलों द्वारा ग्राम, नगर और कस्बों में अपना काम कर रहा है। कांग्रेस का काम भी उसी के द्वारा हो रहा है। लाखों रूपया आता है और जाता है, लेकिन क्या मजाल कि अभयबाबू उस रूपयेका गलत इस्तेमाल करें। वह अपनी जरूरत भर को लेते हैं और रात-दिन इसी काम में लगे रहते हैं। वह सचमुच ही देवता हैं, अम्मी ! वह हिन्दू और मुसलमान नहीं देखते, इन्सान देखते हैं। दफ्तर में सभी काम करते हैं। उनके घर में सभी आते हैं। उनकी स्त्री को सभी भाभी और मा कहकर पुकारते हैं।'

कुछ ठहर कर उसने कहा—'मैं अब उसी दल में मिलूंगी। मैं अभयबाबू की स्त्री के पैरों में बैठ कर जिन्दगी गुजार दूंगी। महेन्द्रबाबू कहीं रहें, कुछ करें, मैं सिर्फ उनकी याद अपने दिल में

छिपाये हुए जिन्दगी का यह कारवां आगे बढ़ाती जाऊंगी।'

उसी समय, अम्मी ने जल्दी से कहा—'अच्छा, अच्छा! मेरी बेटी!'

और जेबुन ने तभी अपनी अम्मी के गले में बाहें डाल कर विह्वल स्वर में कहा—'मेरी अच्छी, अम्मी!'

अट्ठाईसवाँ अध्याय

आर्थिक दासता के जिस युग की पुकार से प्रभावित होकर, महेन्द्रकुमार अनायास ही, जीवन के खुले चौराहे पर आ गया, तो वहीं पर, वह जिन व्यक्तियों से मिला, उनमें सभी एक प्रकार के व्यक्ति नहीं थे। वे सभी विभिन्न प्रकार की भावनाओं से प्रेरित थे। किन्तु महेन्द्र के सामने बात यह थी कि जिस आर्थिक दासता का सूत्रपात देखने में धनिक-वर्ग की स्वार्थता से उत्पन्न हुआ, तो महेन्द्र कुमार की दृष्टि में इस परम्परा का दोषी किसान और मजदूर भी था। पूंजी और श्रम का मानों कभी अनुपात नहीं हुआ। मनुष्य युगों से अभाव का लाभ उठाता रहा। महेन्द्र कुमार को यह देखकर अचरज नहीं हुआ कि किसान और मजदूर भी अभाव का मूल्य आंकने लगा। मजदूर मजदूरी अधिक मांगने लगा। किसान अपनी उपज का अधिकतम लाभ उठाने लगा। मानो समय की यही मांग थी। उसका यही अधिकार था। अधिकतम मुनाफा प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने सभी को अन्धा बना दिया। इस विषय में, कुछ समय पूर्व, अभयबाबू का मत था कि पूंजीवाद ने जिस विवशता का जाल बिछाया है, मध्यम और निम्न वर्ग, बरबस ही, उसमें फंस कर सिसक उठा। परन्तु सदा की तरह तब भी, महेन्द्रकुमार की धारणा यह थी कि स्वयं मजदूर-वर्ग भी कभी सुगम और कम पेचीदा नहीं रहा। निश्चय ही, ऊपर से देखने में उसकी समस्यायें सरमायेदारी के कारण बनीं, लेकिन उसने स्वतः भी, कुछ समस्याओं का निर्माण किया! महेन्द्र की इस विचार धारा के बनने का एक कारण यह भी था कि देर से मजदूर और किसानों में काम करते रहकर उसने अनेक अनुभवों में से एक यह भी प्राप्त

किया कि यदि धनिक विश्वसनीय नहीं, तो मजदूर और किसान भी नहीं। उसमें चेतना नहीं, मनुष्यता नहीं! जिन मजदूर और किसानों में सुधार करने में उसने अपना यौवन खो दिया, अन्ततः उसकी यह धारणा बन गयी कि सदियों से दास बना हुआ यह मानव एकाएक नहीं उठेगा। यह भी विषाक्त हो गया है। जर्जर और कुण्ठित हो गया है। निदान, महेन्द्रबाबू की अनेक योजनाएं इसलिए खण्डित हुईं कि स्वयं मजदूर और किसानों ने वह स्वीकार नहीं कीं। अतएव, उस साहसी, तेजोमय महेन्द्रकुमार के मन की गति प्रफुल्ल रहने के बजाय उदासीन ही रहती रही। प्रकारान्तर से अभयबाबू और उसके विचार भिन्न हो गये। कार्य की दिशा भी बदल गयी। देश और मानव कितने गहरे अन्धकार में पड़ा है, सिसक रहा है, इसे अनुभव कर महेन्द्र की आत्मा छटपटाती। वह क्रूर और हिंसक बनना चाहती। गत कई वर्षों के कार्यकाल में उसने अनुभव किया कि पूंजीवाद ने मानव का केवल ऊपर से ही शोषण नहीं किया, अन्तर भी खाली कर दिया—नितान्त दीन ही बना दिया, वह मानव! यह भावना और मनुष्यता का प्रतीक मानव शान्त नहीं रह गया!

एक दिन जब महेन्द्र जेबुन्निसा को साथ लेकर नगर की एक घिनौनी और अन्धेरी गली में पहुंचा, तो वहीं पर सील भरी दुर्गन्ध से पूर्ण, मकान के अन्दर जाकर एक बीमार युवक को लक्ष करके उसने कहा—'यह भी देश का सपूत है। सात वर्ष देश की स्वतन्त्रता के लिए कारावास भुगत चुका है। परन्तु आज इतना विपन्न है कि बिना उपचार के सड़ रहा है...बताओ, यह स्थान किसी मनुष्य के रहने का है!' वह बोला—'जेबुन्निसा, पैसा ही आज हमारा निर्माता है...विश्व में पूंजीवाद ने इसी पाप का सृजन किया है...बताओ, इस प्रकार क्या मनुष्य उठ सकता है?

हमारी सरकार उदार है, परन्तु जब तक देश का प्रत्येक व्यक्ति उदार नहीं होगा, तो क्या देश उठेगा! न, ऐसे तो मर जायगा!'

अगले प्रातः जागकर आंख खोली, तो समाचार-पत्र पर एक खबर पढ़ते ही, महेन्द्र चकित रह गया। उसका सांस रुक गया। मानो समूचा जीवन ही गतिहीन बन गया। उसने पढ़ा कि नगर की एक मिल के मालिक को कुछ मजदूरों ने पकड़ लिया और नृशंसता के साथ उसका बध कर दिया! अभी पूरा सप्ताह नहीं हुआ कि महेन्द्रकुमार उसी मिल मालिक से मजदूरों की कुछ मांगें लेकर मिला था। उस समय महेन्द्र को हर्ष हुआ था कि उस युवक मालिक ने सभी मांगें स्वीकार कर लीं और पूर्ण कर दीं। उस समय, उस धनिक युवक ने महेन्द्र से कहा था, मित्र, पूंजीवादी वर्ग के साथ, मजदूर-वर्ग भी कम बदनाम नहीं है। ये मजदूर अपने-आप में काफी हीन हैं, कायर हैं। जीवन की गति को समझना जैसे इनकी दृष्टि में पाप है...और उसी व्यक्ति का इस प्रकार बध कर देना, महेन्द्र की दृष्टि में तनिक भी मानवोचित धर्म नहीं हुआ। अपने-आप में वह इतना उद्विग्न और चंचल बन गया कि तुरन्त एक पत्र लिखकर नौकर को दिया और जेबुन्निसा को भेज दिया। उस पत्र में लिखा था कि विवाह की रस्म अभी स्थगित रखी जाय। मुझे आवश्यक काम है। बाहर जाना है। और दोपहर होते-होते वह नगर छोड़ कर चल दिया। अभयबाबू, रानी अथवा और किसी व्यक्ति को पता नहीं चला कि महेन्द्र कहां चला गया!

किन्तु एक मिल मालिक का बध कर दिये जाने के कारण अभयबाबू, रानी आदि के समक्ष एक नयी समस्या खड़ी हो गई। पुलिस ने उनके अनेक साथियों को गिरफ्तार कर लिया। मजदूर ऐसोशियेशन बन्द हो गयी। पत्र कार्यालय पर ताला पड़ गया। परन्तु महेन्द्र के मन पर जो प्रभाव पड़ा, वह इतना कठोर और भयानक

था कि उसने बरबस ही, जीवन-क्रम को बदल दिया। महेन्द्र ने प्रत्यक्ष ही अनुभव किया कि मजदूर असंयत है, अयोग्य है! उसकी धारणा थी कि चरित्रहीन मानव न उठ सकता है, न चल सकता है। ऐसा समाज जीवन की मांग भी नहीं कर सकता। कदाचित इसीलिए वह नगर छोड़ कर गांवों में चला गया। वहीं अपना कार्य-क्षेत्र बनाना पसन्द किया। देर से वह अपने मन में ऐसी ही धारणा लिये था! अवसर पाते ही, उसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए उद्यत हो गया।

लेकिन जेबुन्निसा मानो एकाएक ही एक नयी उलझन में फंस गयी। देर से चलती हुई बात को उसे खत्म करना था। अन्त में निश्चय हुआ था कि जल्दी ही वह महेन्द्र के साथ मजिस्ट्रेट के सामने जायगी और विवाह की शपथ ले लेगी। उसका प्रोग्राम था कि इस क्रिया के बाद ही, वह महेन्द्र के साथ किसी पहाड़ी स्थान पर चली जायगी। वहां कुछ दिन रहेगी। किन्तु महेन्द्र फिर किनारा काट गया। वह चला गया। कई वर्ष से उलझी हुई समस्या जब सुलझने वाली थी, तो वह उसे और उलझा गया। देर से जेबुन्निसा लोगों की चर्चा का विषय थी। उस पर उंगली उठाई जाती थी। परन्तु महेन्द्र ने उसकी चिन्ता की तनिक भी परवाह न कर, नगर छोड़ दिया। जैसे जेबुन्निसा को दो-टूक जवाब दे दिया! कई मास हुए कि नजीर मुहम्मद पाकिस्तान चला गया। किसी समय जिस युवक बैरिस्टर से जेबुन्निसा के विवाह की बात चली, सुना कि वह पाकिस्तान गया भी और वापिस आ गया। शायद उसका वहां रोजगार नहीं चला। वह भी अभी तक अविवाहित था। किन्तु जेबुन्निसा की अवस्था यह हुई कि महेन्द्रबाबू बाहर क्या गये, उससे सम्बन्ध रखने वाले मित्रों तथा आत्मीयों में यह चर्चा जोर पकड़ गयी कि महेन्द्रबाबू मुसलिम कन्या से विवाह नहीं करेंगे।

वे कांग्रेसी और सुधारवादी हैं तो क्या, जातीय-पक्ष नहीं छोड़ देंगे। उनके सामने सम्बन्धियों की रुकावट भी पथरीली दीवार बनकर खड़ी हो गयी होगी। वह जेबुन्निसा तक आने का रास्ता रोकती होगी। इसका परिणाम यह हुआ कि यौवनमयी जेबुन्निसा जैसे अपने-आप में खो गयी। वह स्वतः अपने पर चिढ़ने लगी। उसके अन्तर में बरबस ही, जिस प्रकार का विद्रोह फूट निकला, वह इतना कठोर हो उठा कि उसकी आत्मा सुकड़ कर रह गयी।

किन्तु महेन्द्रबाबू को गये अभी सप्ताह भर ही हुआ था कि जेबुन्निसा को पत्र मिला। उस पत्र में महेन्द्र ने अन्य बातों के साथ, जिस गये प्रकरण की चर्चा की, उसी में यह भी व्यक्त किया, कि नगर में रहते हुए, मेरे मन में जिस अशान्ति का प्रवाह फूट पड़ा, वह यहां आते ही रुक गया। अवसर की बात कि मुझे यहां भी काम मिल गया। देखता हूं, यहां और सहायकों की आवश्यकता है। मेरा प्रस्ताव तुमसे भी है। आओ! जीवन में यदि हम काम करना चाहते हैं, तो वह कहीं भी मिल सकता है। मुझे यहां भी मिल गया है।

पत्र पाकर, जेबुन्निसा ने मा से विचार किया और उसी सप्ताह बाहर जाने का प्रोग्राम बना लिया।

पर्वतीय-प्रान्त के जिस क्षेत्र में महेन्द्रबाबू ने अपना कार्य-क्रम निर्धारित किया, तो जेबुन्निसा ने वहीं जाकर देखा कि सच, काम तो है,-बड़ा काम है। परन्तु उस काम को करने के लिए वह किस प्रकार अपने को प्रस्तुत करे, इस बात को उसने एकाएक ग्रहण नहीं किया। बात यह थी कि उस प्रान्त में एक साथ दो बीमारियां जन-समाज में फैल रही थीं। उनमें एक थी प्लेग और दूसरी भुखमरी। एक दिन जेबुन्निसा को लक्ष करके ही, महेन्द्र ने कहा—'प्लेग तो आकस्मिक बीमारी है,—दैवी प्रकोप है; परन्तु यह जो भुखमरी

की बीमारी है, इससे छूटना दूसरों की दया पर निर्भर करता है। पैसा प्राप्त करके ही अन्न प्राप्त किया जाता है। और पैसा नगरों से आता है। सरमायेदारों की जेबों से निकाला जाता है!'

किन्तु जेबुन्निसा के लिए उस क्षेत्र में जाकर यह लाभ का विषय रहा कि वह जिस विवाह की बात पर एकाएक अटक गयी थी और उसी प्रसंग को लिए-लिए वह जातियों के वितण्डावाद में फँस गयी थी, उसे एकाएक भुला देने में समर्थ हो गयी। एक दिन जब वह एक प्लेग से पीड़ित वृद्ध व्यक्ति की परिचर्या में लगी हुई थी, तो उसी ने मानो अपनी आत्मा को साक्षी देते हुए कहा-'तुम दोनों की युगल-जोड़ी सलामत रहे...सदा खुश रहे!' और उसके घंटे भर बाद उस वृद्ध ने अपनी साँस तोड़ दी थी। उस वृद्ध की दाह-क्रिया करते समय, महेन्द्र ने जेबुन को सुनाते हुए कहा—'इस संसार में जो भी आता है, कुछ लेता है, कुछ देकर जाता है। यह वृद्ध गया, तो हमें भी कुछ दे गया। अपना आशीष दे गया!'

जेबुन्निसा ने बात सुनी और मत नहीं दिया। उसे याद आया कि पिछले दिन जब एक वृद्धा का उपचार कर रही थी, कड़वी दवा उसके मुँह में डाल रही थी, तो उसने जेबुन से कहा था—'बेटी, अब मेरा रहना, न रहना तो बराबर है। भगवान की फुलवारी में जो नये पौधे हैं, उन्हें सींचो। उन्हें जीवन दो।' और तभी उस वृद्धा ने महेन्द्र के ऊपर कहा—'तेरा यह बाबू,—भला हो इसका! देवता या फरिश्ता बनकर ही, इस गाँव में उतर आया। आते ही, सभी का बन गया। शहर से डाक्टर लाया। अनाज लाया।' लेकिन जब उस वृद्धा ने अपनी अन्तिम साँस छोड़ी, तो हिचकी लेते हुए कहा था—'बेटी, ऐसे पति को पाकर, तू सुख मानना। इस जिन्दगी को एक बड़ा आशीष ही जानना, तू!'

अवस्था यह थी कि उस क्षेत्र में आकर, भले ही, जेबुन्निसा एक काम में लग गयी, सेवामयी बन गयी, परन्तु पीछे अपने नगर में छोड़ी हुई अशांति यदा-कदा वहाँ भी उसके हृदय से टकराती और जीवन का भविष्य देखने के लिये बाध्य करती। उस समय जेबुन्निसा चंचल बन जाती। वह जैसे अपने से लड़ना चाहती। क्योंकि वह कोमल नारी थी। लाड़-प्यार में पाली गयी थी। वह महेन्द्र के समान कठोर और जीवन का भारी तप करने में असमर्थ थी। यद्यपि, रोगी की परिचर्या में, मुर्दे को जलाने की क्रिया में उसे एक अजीब प्रकार का सुख मिलता था। लेकिन उस सुख के आस-पास जिस प्रकार की अशांति का कोलाहल उसके अन्तर में पहिले से समाविष्ट था, वह उभर आता। विशेषत: रात के समय वह द्वन्द्व अपना मुँह ऊपर उठाता। उससे कुछ कहना चाहता।

मन की प्रतिक्रिया के ऐसे ही वातावरण में, एकाएक जेबुन्निसा की मा का पत्र मिला। जेबुन के लिए बुलावा आया। उसकी मा बीमार है, यह भी लिखा आया।

उस पत्र को पाकर जैसे जेबुन्निसा को सहारा मिला। वह जिस अथक परिश्रम से दब चली थी, उसकी कांति मलिन बन गयी थी, उसे फिर सुधारने का अवसर मिला।

पत्र देखकर महेन्द्र ने कहा—'तुम्हें जाना चाहिये। देखती हो, मेरे सामने तो अधिक काम है, इसलिए कहीं जा नहीं सकता, लेकिन तुम्हें लौट जाना चाहिये। मां के पास। तुम्हें वहाँ जरूर रहना चाहिये।'

स्टेशन पहुंच कर, जब जेबुन्निसा गाड़ी में बैठ चुकी, तो बिदा देते हुए महेन्द्र ने उसके मुलायम हाथ पर अपना हाथ रखा और कहा—'जेबुन्निसा, तुम आकर जा रही हो, बीमार मा के पास जा रही हो, यह तो ठीक रहा; किन्तु अपनी एक बात फिर दोहराता

हूँ, इस विवाह की बात को अधिक महत्व न देना। यह तो गौण है। बैठना है, बैठ जाना। कहीं भी टिक जाना। इस मानव-मन में जो भावना है,—जीवन का आदर्श है, वह तो कहीं भी रहेगा, विश्वास हो, तो फलता रहेगा। हाँ, तुम अपनी मां और आत्मीयों के मन को दुखाने का बोझ अपने सिर न ले बैठना। मैं भी चलता। पर देखती हो, यहाँ काम बहुत है। वह मेरे कन्धों पर पड़ा है। अवसर मिलते ही आऊँगा।' महेन्द्र ने यह भी कहा—मैं स्वयं चाहता था, तुम लौट जाओ। तुम्हारा कोमल मन और शरीर भला इतना कठोर और विषम भार कैसे उठा पाता! देखता हूँ सुन्दर शरीर काला पड़ गया। दुर्बल भी हो गया।

गाड़ी ने सीटी दी, जेबुन ने हाथ जोड़े और वह प्लेट-फार्म शून्य बन गया। महेन्द्र लौट पड़ा। संध्या का समय था, सुहावना समय। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत। कभी दूर, कभी पास से किसी पक्षी का स्वर भी आता। वह सब महेन्द्र के मस्तिष्क से टकराता। उसे सुख मिलता। चलते-चलते वह एक पथरीली शिला पर बैठ गया। प्रकृति का वह विराट-रूप जैसे उसके अंतर में एक अजीब प्रकार का उल्लास भरने लगा। उसी समय महेन्द्र के मन में बात आई कि ठीक ही कहा उसने कि एक बार जेबुन्निसा को विवाह के प्रश्न पर फिर विचार करने के लिये कह दिया। और उसने एक पत्थर के टुकड़े को उठा कर दूर फेंकते हुए कहा—लोग कहते हैं कि मैं जेबुन्निसा का सौंदर्य देखता हूँ। उसका रुपया देखता हूँ। उसके बाप की जायदाद देखता हूँ! इतना कहते ही, महेन्द्र जैसे किसी तूफान में घिर गया। उसका मन विकृत बन गया। वह चीख पड़ना चाहता था, किन्तु होंठों से फुसफुसा कर बोला—'मैंने जेबुन्निसा की भावना को छोड़ कर और कुछ नहीं देखा। कदाचित उसने भी यही देखा। उसने

कहा—किन्तु भावना और है, जीवन की वास्तविकता और! यहां इस क्षेत्र में आकर, जेबुन्निसा ने काम तो किया, परन्तु सचाई यह थी कि उसका मन नहीं लगा। काम रुचिकर नहीं लगा। सचमुच, उसकी आत्मा को कष्ट हुआ। और मैं बरबस ही, उसे सेवा की अधिष्ठात्री बना देना चाहता था। मैं कहना चाहता था, ये बीमार, ये भूखे, तुम्हारे ही शरीर के अंग हैं, जेबुन्निसा!—इतना कहा, तो महेन्द्र होठों से मुसकरा दिया—जेबुन सौंदर्यमयी है, यौवनमयी,—वह नारी है! रानी बनकर ही, एक जीवन की अधिष्ठात्री के रूप में सुख और शान्ति की अपने जीवन में कल्पना करती है। वह विवाह चाहती है,—पति चाहती है,—जीवन का भोग,—वासना

इतने में पास की झोंपड़ियों से रोने की आवाज उठी। महेन्द्र के कानों में भी आई। उसने कातर बनकर कहा—हाय! वह लड़का भी मर गया,—बेचारा!

महेन्द्र उठ खड़ा हुआ और तेज चाल से उन झोंपड़ियों की ओर जाता हुआ मानो दीन बन कर बोला—मैं विवाह नहीं करूँगा! जिस प्रेम की बात दुनिया कहती है, वह तो भोग है,—वासना! उसी को ग्रहण करके क्या मैं इस जीवन का गला घोंट दूँगा!

—और वह तेज चाल से जाकर, उन झोंपड़ियों से उठे हुए करुणापूर्ण चीत्कार में ऐसे तिरोहित हो गया कि मानो वही उसका लक्ष्य था,—वही जीवन!

उन्नतीसवाँ अध्याय

नगर में लौट कर, जेबुन्निसा को यह देखकर अच्छा नहीं लगा कि उसकी मा बीमार नहीं, उसे बहाना देकर बुलाया गया। मा ने कहा—हां, जेबुन ! यह भी क्या अच्छा हुआ कि तू घर छोड़ कर इतनी दूर गयी। सेवा और इन्सान की खिदमत का काम क्या यहां कम पड़ा है...देख, मैं कहती हूँ, अपनी शरीयत को छोड़ कर कहीं और जाना तुझे नहीं शोभता ! खुदा की बन्दी, तू भी अपनी कौम का एक टुकड़ा है। अल्लाहताला की तुझपर भी निगाह है। इन्तजारी में इतने दिन तो गुजार दिये महेन्द्र ने, वह जरूर रास्ता काट कर चलता है। मैं मरने वाली हूँ, तेरी जवानी भी जाना चाहती है, बता तो, ऐसे क्या मेरी रूह को चैन मिलेगा !'

फलस्वरूप, मा और अन्य सम्बन्धियों की सुनी हुई बातों का परिणाम यह हुआ कि जेबुन्निसा विवाह के शब्द से भी चिढ़ गयी। महेन्द्रबाबू के प्रति भी उदास बन गयी। उसने इतना बाहर भी अनुभव किया कि उनकी दिशा और है,—उसकी और। उसके यौवन की जो मांग है, वह महेन्द्रबाबू से पूर्ण नहीं हो सकती ! अतएव, वह फिर अपने घर और वैभवपूर्ण जीवन में खो गयी। परिचित बैरिस्टर की सलाह पर जेबुन्निसा ने एक नयी मोटर गाड़ी खरीद ली। वह मजदूर अथवा जन-आंदोलन से पूर्णरूप से विरक्त बन गयी। उन्हीं दिनों की बात है कि जब महेन्द्र नगर में लौटा, तो उसे एक मित्र द्वारा समाचार मिला कि जेबुन्निसा बैरिस्टर के साथ पहाड़ पर सैर करने चली गयी। उस प्रसंग में ही, महेन्द्र को

यह भी पता चला कि वह पहिली भावनामयी और ममतामयी नहीं रहीं, वह वैभव और वासना-सिक्त जीवन की पुजारिन बन गयी।

किन्तु यह बात भी अजीब हुई कि महेन्द्र ने उन सभी सुनी बातों को एकाएक ही इतना महत्वहीन समझा कि वे उसके मस्तिष्क से टकरा कर भी फिसल गयीं। उसके जीवन में जिस प्रकार के कामों का शोर था,-इरादों की भीड़ थी; तो वह उन सबको पार करके ही, जेबुन अथवा विवाह सरीखे प्रश्न पर विचार कर सकता था। वैसे भी विवाह का प्रश्न उसकी दृष्टि में गौण था।

निदान, महेन्द्र नगर में आया, उसने कुछ रुपया संचित किया और फिर उस दुर्भिक्षपूर्ण क्षेत्र में चला गया। अवसर की बात थी कि जब महेन्द्र लौट रहा था, तो मार्ग के एक बड़े स्टेशन पर उसने गाड़ी में बैठे हुए ही, एक दूसरी गाड़ी में देखा कि फर्स्ट क्लास के डिब्बे में वह सामने बैठी हुई जेबुन्निसा है, उसका मित्र बैरिस्टर है। वे दोनों आपस में बातें कर रहे हैं। हंस रहे हैं। जेबुन्निसा का शृंगार जिस रूप में उस समय था, वैसा सलीकेदार और सुन्दर कदाचित महेन्द्र ने पहिले नहीं देखा था। जेबुन का वैसे ही ईरानी चेहरा था, फिर उसपर पाऊडर, लिपस्टिक, आंखों में कोरदार काजल। सचमुच, वह सभी-कुछ भला लग रहा था। जब महेन्द्र की गाड़ी चली, तो अकस्मात, न चाहते हुए भी, जेबुन्निसा से उसकी चार आँखें हुईं। देखते ही, वह झिझकी, किंचित सहमी! किन्तु तभी महेन्द्र ने अपना मुंह डिब्बे के अन्दर कर लिया।

परन्तु अपने मन की उस मानसिक अवरुद्धता को लिए-लिए, जब जेबुन घर लौटी, तो वह कई दिन तक बाहर नहीं निकल सकी। उसने अनुभव किया कि जिस महेन्द्र के प्रति वह उपेक्षित

हो चली, उसे भूलने लगी, उसका वह प्रयत्न इतना सरल नहीं। महेन्द्र जैसे उसके अन्तर की गहराई में उतर चुका था। वह उसका चौकीदार था। और उसी के सामने जब उसकी चोरी पकड़ी गई, तो वह मानो अपने में खो गयी। उससे ऊपर भी नहीं उठ सकती।

वह महेन्द्र की मुट्ठी में है। अपने घर में पड़ी हुई जेबुन देखती कि वह रेल के डिब्बे में बैठा हुआ महेन्द्र, जिसके रूखे बाल, बढ़ी हुई डाढी, मैला और कमर पर से फटा हुआ कुरता, —इस रूप में—महेन्द्र का छाया-चित्र जब-जब उसके सामने आता, तो तभी-तब मानो वही चित्र, जैसे प्रेत बन कर, उसे संबोधित करता और कहता 'ऐ जेबुन! क्या वैभव ही जीवन का सार है! इच्छाओं का दास बनना ही, जीवन का लक्ष है, क्या! तो इतना सुनकर ही, जैसे जेबुन चौंकती, सहम जाती! वह अपनी उभरी हुई छाती को बरबस दाब कर, किसी गहरे अन्धकार में खो जाती। और वही चित्र उसे फिर संबोधित करता—'जीवन की वासनाओं का भोग तो सभी भोगते हैं, जेबुन्निसा! इस जगत की यही रीति है! परन्तु क्या यह भी अच्छी धारणा है! यह मनोरम है, क्या! न, यह तो सड़ांद है! कूड़ा है! जीवन के तूफान में उड़ता हुआ जीवन, क्या कहीं टिकता है! और जब तूफान उतर जायेगा, तो जानती है तू, हाथ क्या आयेगा...क्या? हाँ, दूर न जा! अपनी अम्मा को ही देख ले। कमर झुकी है, जीवन के समूचे अंग में पीड़ा भरी है! जैसे मौत ही सामने आकर खड़ी हो गयी है!'

मनःस्थिति के ऐसे अवसर पर यदि मा ने कहीं जेबुन को टोक दी, तो बस, गजब ही हो गया! जेबुन उद्वेगपूर्ण स्वर में कहती—'अरी, अम्मी! ओह! तूने अपना यौवन खोया, तो मुझे दे दिया।

बता तो, यह मेरे पास रहेगा ? यह भी चला जायगा !'

किन्तु इतना सुनकर तो, अम्मी अपनी बूढ़ी आँखों से हँस देती। दुर्बल होठों से मुसकरा देती,—'हाँ, मेरी बच्ची ! यह यौवन तुझ पर भी नहीं रहेगा। सच, यह तेरे पास से भी चला जायगा...'

लेकिन इतना सुनना भी, मानो जेबुन्निसा के लिये पर्याप्त नहीं होता। उसे श्रेयस्कर नहीं लगता। उसे अनुभव होता कि जैसे यह तो शरीर का व्यापार है,—नियति का खेल ! वासना के हाथों समर्पण ! वह सोचती, एक बार ठीक ही कहा महेन्द्रबाबू ने, इस जीवन के खेल में सभी सफल नहीं होते ! ठीक पथ भी ग्रहण नहीं करते। तभी उन्होंने बताया था कि स्त्री-पुरुष का यह संभोग—यौन तृप्ति—अमानुषीय और घृण्य तो है ही, अविवेकी कर्म भी है ! यह सत्य नहीं...जीवन के प्रति न्याय नहीं !'

इतना याद करते ही, सोचती जेबुन—'तो—तो—?'

—और वह कहती—'हाँ, ठीक तो है, कुत्ता-बिल्ली बनने के लिये यह जीवन नहीं ! सृष्टि घटे, या बढ़े; यह समझना भी हमारा कर्म नहीं। इतिहास के जिन पन्नों में मनुष्य ने स्वयं अपना संघर्ष, उत्थान और पतन का लेखा प्रस्तुत किया है, उसमें ऐसी ध्वनि तो नहीं, ऐसी लाचारी भी नहीं कि पुरुष के लिये स्त्री है,—अथवा स्त्री के लिए पुरुष !

अपने मन की ऐसी ही अवस्था में, एक दिन अनायास ही जेबुन अभयबाबू के घर पहुंच गयी। वहाँ रानी थी, अभयबाबू थे। देखकर, रानी ने कहा—'जेबुन्निसा, आज तू बहुत दिनों में दिखाई दी। दिखता है इस घर का रास्ता भूल गयी !'

अभयबाबू ने कहा—'जेबुन्निसा ने अपने जीवन की गति बदल दी है। ठीक भी है। इस यौवन की भरी दोपहरी में,

घर से बाहर रहने की परिपाटी अभी हमारे देश में कम प्रचलित हुई है।'

बात सुनी, तो रानी चिढ़ गयी—'परिपाटी बनाई जाती है। समय आने पर, छोटी-छोटी पगडंडियां, बड़े रास्ते का रूप धारण कर लेती हैं।'

सुनकर अभयबाबू हँस दिये—'यह बात तुमपर लागू होती है।'

रानी बोली—'कोई भी माने, उसी पर लग सकती है।' कहते हुए उसने जेबुन की ओर देखा और कहा—'तू कितनी चली, कितनी आगे बढ़ी कि झोंका आया और फिर घर के अन्दर बैठ गयी! दिखता है, थक गयी! या अपने सम्बन्धियों के कहने से रुक गयी!'

जेबुन ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। कदाचित उससे नहीं दिया गया।

रानी ने फिर कहा—'इस जिन्दगी के सफर में इन्सान आँधी बन कर चलता है और आँधी का उतार पाकर बैठ जाता है!'

अपने-आप अभयबाबू बोले—'जिन्दगी का सफर—अविराम सफर!'

रानी हँस दी—'सफर करना ही हमारा काम है,—चलना ही ध्येय! रुकना तो मौत है,—जीवन का अंत!'

तभी अपने मन में ली हुई बात को उठाकर जेबुन बोली—'तो भाभी, फिर यह जीवन क्यों,—यह जीवन-व्यापार! यह चिन्ता-दुराशाओं का बोझ! विवाह, बच्चे,—ओह! इनसे दब ही तो जाता है, यह इंसान! शायद मौत पाता है!'

रानी बोली—'यही तो उपादान हैं, इस जीवन के! इन्हीं से लग कर, इन्हीं की पीड़ा समझ कर, यह इंसान मार्ग बनाता है! चलता है। विवाह करके आदमी शीशे की तरह परिस्थितियों का

रूप परखता है। अपना रूप, चातुर्य और बल दूसरे को अर्पित कर देता है। आदमी सिपाही है, पहरा बदलने पर बन्दूक दूसरे सिपाही को सौंप देता है।'

जेबुन ने कहा--'परिस्थिति,--विषम, कठोर;--हे राम!'

सुना, तो अभयबाबू हँसे नहीं, गम्भीर बन गये--'बात असंगत नहीं है, जेबुन्निसा! किन्तु प्रश्न तो यह है कि इस विश्व के कुटुम्ब में, देश, जाति और वर्ग में बँटा हुआ यह इंसान, आकर्षण चाहता है,--कोई लगाव पसन्द करता है। नारी उसी की पूर्ति मात्र है, जैसे नारी के लिए पुरुष!' किन्तु तभी एकाएक आतुर बन कर, अभयबाबू बोले--'जेबुन्निसा, लेकिन इतना भी जो मनुष्य-समाज ने प्रकृतिस्थ बन कर स्वीकार किया, दोनों ने अपनी सीमाएं निर्धारित कीं, तो इसने मानव को अधिक सार्थक नहीं बना पाया। नर और नारी ने विश्व की सृष्टि तो की, जनता की धारा भी प्रवाहित की। मा, बहिन, पुत्र और भैया सरीखी मधुर भावनाएं भी हमें मिल गयीं, परन्तु इनकी ही आड़ में इस नर और नारी ने जिस वासना की सृष्टि की, वह इस जगत के लिए कभी श्रेयस्कर नहीं रही।' उन्होंने कहा--'हमने देखा कि नारी अपने पति के लिए प्रेरणामयी है, जीवनमयी। परन्तु इस भोग-वाद के युग में जितनी लालसा पूँजीवाद द्वारा प्रसारित की गयी, कदाचित उतनी ही इस नर और नारी के सामन्जस्य द्वारा आविर्भूत हुई। जिसका परिणाम यह हुआ कि जगत की वास्तविकता दब गयी। उद्देश्य धुंधला पड़ गया। वीभत्स और करुणार्द्र रौरव तथा कोलाहल ही चारों ओर फैल गया! एक युग था कि जब यह परम्परा प्रचारित नहीं थी। परन्तु आज तो, मुझे लगता है, 'सेक्स' नाम के भूत ने अपना जादू फैला दिया है! संघर्षशील मानव और दुर्बल नारी;--दोनों ही--क्या खाक जीवन के प्रति सोचेंगे कि

वे इंसान हैं—भावना, आदर्श और त्याग के देवदूत ! न, उनके चारों ओर तो जीवन-यापन की कठोर और मदान्ध परिस्थिति पथरीली दीवार के समान घेरा डाल कर खड़ी हो गयी है। मनुष्य बँध गया है। वह मरना चाहता है। नारी भी मौत चाहती है। कैसा करुण और वीभत्स दृश्य है यह, कि नारी दुर्बल और क्षीण बनी हुई वेदना में छटपटा रही है...हाय ! नारी भी मनुष्य का पाप भोग रही है, बेचारी ! पीड़ित अवस्था में ही उसके प्राण आँखों के द्वार पर आते हैं, उसके जीवन से टकराते हैं और हवा में उड़ कर लोप हो जाते हैं !' वह बोले--'तुम दोनों नारियों से कहते मुझे तनिक भी संकोच नहीं, कि पुरुष का पाप नारी को भोगना पड़ा है। परन्तु अचरज तो यह देख कर होता है कि नारी ने इस पाप के चरणों में अनायास ही अपना सिर झुका दिया है...मानो वेदना को वरण किया है...हाय री, दास-वृत्ति !'

रानी ने कहा—'आज इस दास-वृत्ति का बोलबाला है !'

अभयबाबू ने कहा--'कीड़ों के समान ही, इस इन्सानी-जगत का संहार हो रहा है। कहीं बीमारी अथवा दुर्भिक्ष पड़ता है, तो कहीं हजारों लाखों का नाश हो जाता है। तूफान आता है और मच्छरों के समान उड़ते हुए इन इन्सानों को उड़ा कर ले जाता है !'

रानी बोली—'प्रतिवर्ष लाखों अकाल के ग्रास बन जाते हैं।'

अभयबाबू ने कहा--'जिस तेज़ी से पैदा होते हैं, वैसे ही मर जाते हैं। नर और नारी वासना के हाथों बिक गये हैं !'

अपने मन में उठी हुई बात लेकर जेबुन्निसा बोली--'पिछले दिनों जिस दुर्भिक्ष-क्षेत्र में मैं गयी, तो यही देख कर आई। उस दृश्य को आज भी याद करती हूँ तो काँप जाती हूँ।'

अभयबाबू ने कहा—'पाप बढ़ रहा है ! इंसान अन्धा और कामी बन गया है ! नारी ने अपने को बेच दिया है। उसने अपना

अस्तित्व भुला दिया है !'

जेबुन ने कहा—'और कंकालों पर सरकार द्वारा भी करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष व्यय किया जाता है।'

रानी बोली—'यह तो होगा। समर्थ ईसान का कर्तव्य उसे बाधित करता रहेगा। सरकार को भी अपना उत्तरदायित्व निभाना पड़ेगा।'

अभयबाबू बोले—'अधिक पैदावार का यह भी दुष्परिणाम हुआ है कि मनुष्य भोगवादी तो बना ही, पैसे का इच्छुक भी बना। परन्तु जीवन के स्वस्थ तत्व कम पाने के कारण संसार के संहार का कारण भी बन गया। यह बीमारी, यह भूख, हमने ही पैदा की है! अथवा, मनुष्य बीमार हो, रोगी बन कर सड़ता हो, मुझे तो यह दृश्य ही बेहूदा और व्यर्थ दीखता है।'

मानो झुँझलाकर जेबुन बोली—'तो क्या किया जाय,—क्या हो !'

सुना, तो अभयबाबू ने तीव्र दृष्टि से जेबुन की ओर देखा। फिर रानी को लक्ष करके कहा—'तुम अपने मन से यह निकाल दो कि पत्नी और मा बनना ही तुम्हारा कर्तव्य है। तुम नारी हो, नारी रहो। एक हो, एक रहो। मनुष्य की ओर देखना छोड़ दो।'

जेबुन बोली—'तो फिर नर और नारी में प्रतिक्रिया चलेगी। दुराव चलेगा। वैमनस्य चलेगा !'

सुना तो अभयबाबू हँस दिये—'इतना तो आज भी चलता है। पर मैं कहता हूँ, यदि ऐसा हो, तो नहीं चलेगा। अपने पर विश्वास बढ़ेगा। देखने का ढंग बदल जायगा। हमारा सांस्कृतिक महत्व बनेगा। तब हम शरीर की पूजा नहीं करेंगे, आत्मा और मन की परख करेंगे।'

तभी रानी ने जेबुन की ओर देख कर साँस भरी—'महेन्द्र भैया आये, तुम्हें मिले थे ?'

जेबुन ने ऊपर एक उड़ते हुए पक्षी को लक्ष करके कहा—'नहीं !'

रानी बोली—'भैया दुर्बल हो गया है। रंग भी काला पड़ गया है। दिखता है, जहाँ उसने अपना क्षेत्र चुना, वहाँ काम अधिक करना पड़ता है। नगर से तो उसने रुपया एकत्र किया ही, उसका भी कुछ रुपया बैंक में जमा था, वह भी पाई-पाई निकाल कर ले गया। मैंने कहा, तो बोल दिया—'वहाँ इन्सान मर रहा है, तो मेरे रुपयों का क्या अचार पड़ेगा ! इसका यही उपयोग है,— बीमार और भूखों के काम आयेगा !'

बात सुन ली। वह जेबुन के पेट में उतर गयी। तदन्तर वह लौटने के लिये खड़ी हो गयी।

रानी बोली—'और बैठ ! आती भी नहीं। बता तो, यह नयी गाड़ी कितने में खरीदाहै ?'

जेबुन ने बताया—बीस हजार में।

अभयबाबू ने कहा—'बड़े घर की बेटी हो तुम, तो ऐसी ही गाड़ी में बैठ कर भली लगोगी। अच्छा है !'

जेबुन बोली—खरीद ली। अब बेच दूँगी। और वह नमस्ते करके लौट चली।

उसी दिन रानी ने अभयबाबू को बताया, यह जेबुन अब दूसरे रास्ते पर जा रही है,—चली गयी है। सुनती हूँ किसी दिन भी बैरिस्टर से इसका विवाह हो जाने वाला है !'

इतना सुना, तो अभयबाबू को लगा कि सच, नारी रहस्यमयी है, न समझी गयी है, न समझी जा सकती है !

वह बोले—'महेन्द्र को दिया वचन क्या भुला दिया जायगा।'

रानी ने मानो उपहास के साथ कहा—'वादों के इस युग में वचन की क्या हस्ती है ! और जिसको दुनिया प्रेम कहती है वह भी तो मस्तिष्क की ही एक दुर्बलता है,—यौवन का बहाव,—शायद उन्माद !—फिर भला उसमें स्थायित्व की गुंजाइश कैसे हो सकती है। उसमें क्या भावना बोलती है !'

अभयबाबू ने अपना सिर झुका लिया, जैसे बात को अन्तर के गहनतम अन्धकार में उतार लिया।

तीसवाँ अध्याय

जन-सेवा कार्य के उस लम्बे जीवन में चलते रहकर अभयबाबू अब ऐसे व्यक्ति तो रह नहीं गये थे कि जिन्हें कोई जानने से रह गया हो। नगर के छोटे-बड़े सभी समुदायों अथवा वर्गों में वह पहचाने जाते और पुकारे जाते। स्थिति यह हुई कि जिन अभयबाबू के प्रति धनिक-वर्ग सन्देह से भरा था, उसने भी जब उनकी वास्तविकता पाई, तो वह उनका मित्र बन गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अभयबाबू अब दूर नहीं रहे। जीविका के लिए चिन्तित नहीं। वे ऊंचे वर्ग में बैठते, ऊंचाई पर ही चलना चाहते। अब उनके पास किराये का मकान नहीं था। अपना भव्य और सुन्दर मकान था। सवारी के लिए मोटर। इस अवस्था को देखकर, देर से चले आये उनके विरोधी, अवसर पाते ही, कहने लगे—'इन्सान भी एक जानवर है,—क्रूर और मदान्ध है!'

तटस्थ समुदाय कहता–'कौन,—क्या!'

'देखो न, इन अभयबाबू को! एक दिन मजदूर वर्ग की पुकार लेकर चले थे। बड़े हिमायती बनते थे। उन्हीं मजदूरों का पैसा इन्होंने भी पाया है। धनिक-वर्ग से उपार्जित किया है। सम्मान भी प्राप्त कर लिया है।'

सुनकर लोग सांस भरते–'हां, भाई! सर्वत्र ऐसा ही होता है। दीया तले अन्धेरा सर्वदा देखा जा सकता है!'

'लेकिन ऐसा होगा, तो देश नहीं रहेगा! इन्सान नहीं रहेगा!'

'पर आज तो यही निभ रहा है। जन-सेवा की आड़ में, सेवक भी मालिक बनना चाहता है। आज शक्ति का अर्थ पूंजी है, तो

वह भी उस पूंजी का दास बनना पसन्द करता है !'

'तो यह पाप,—यह अनाचार !'

बरबस, लोग सुनते और उपेक्षा के भाव में खिलखिल करते हुए हंस देते।

और कदाचित यही कारण था कि एक मिल-मालिक के बध कर दिये जाने के कारण जब प्रजा-संघ कार्यालय और अन्य संस्थाओं पर पुलिस के ताले पड़े तो वे अधिक देर तक बन्द नहीं रहे। वे जल्दी ही खुल गये। अभयबाबू का सम्मान पुलिस के दरबार में भी यथेष्ठ था। वहां भी उन्हें ऊंची दृष्टि से देखा जाने लगा था। और देश स्वतन्त्र हुआ, तो गांधी टोपी और खद्दर के कुरते का प्रभाव मानो अक्षुण्य बन गया था। उस पोशाक ने सर्वत्र सम्मान पा लिया था।

लेकिन इस स्थिति का दुष्परिणाम कोई और हो, या न हो, परन्तु यह अवश्य हुआ कि जनता की दृष्टि में कांग्रेस की प्रतिष्ठा घट रही थी। जिस संस्था ने देश का मानसिक धरातल ऊंचा किया, उसी संस्था के व्यक्ति चोर और लुटेरे समझे जाने लगे। सचमुच, यह विषय कथित संस्था तथा देश के लिए कलंक का था। अभय-बाबू की लोकप्रियता भी धीरे-धीरे घट रही थी। रानी ने अब बाहर का जन कार्य बन्द कर दिया। अभयबाबू केन्द्र की असेम्बली के मेम्बर चुन लिये गये थे। वे प्रायः बाहर रहते थे। राजधानी में ही अधिकतर दिखायी देते थे। कदाचित यही देखकर, उनके मित्र तथा विरोधी प्रायः एक ही बात अपने पास रखते और दूसरों से सुनते कि जिस समाज और देश का जन-सेवक-वर्ग स्वार्थी होगा, अपने लाभ की बात में डूब चुका होगा, वह देश नहीं उठेगा,—वह सदा दुर्बल और हीन ही बना रहेगा !

एक दिन कांग्रेस और उसके नेता म० गांधी की एक ही हुंकार

पर देश का सुप्त-समाज तिलमिला उठा और आत्म-बलिदान की प्रेरणा से पूरित बनकर ब्रिटिश नौकरशाही की जेलों तथा यातनाओं को पाने के लिए सहर्ष तैयार हो गया था। तो उसी कांग्रेस का पतन देखकर, देश जैसे स्वत: ही लज्जा का अनुभव करने लगा। मानो देश के मुंह पर काला पोता फिर गया! देश एकबारगी समझ गया कि उनका नेता गया,--वह श्वेत संन्यासी, वह अमर आत्मा महात्मा गांधी उनके बीच से क्या उठ गया, जैसे देश का व्यक्तित्व, कांग्रेस की आत्मा का ही लोप हो गया! यह बात सचमुच ही लज्जा और क्षोभ के साथ देखी गयी कि कांग्रेस का वह वर्ग, जो गतिशील, कर्मण्य और आत्म-बलिदान की भावना से पूरित, देश का सैनिक बना हुआ था,--राज्य की कुर्सी पाते ही, मानो उसका रूप बदल गया। वह समाज जैसे अन्धा और उन्मादी बन गया! जिस किसी कांग्रेसी के पास अपने जीवन में ठीक से रोटियां प्राप्त करने का भी साधन नहीं था, उसके पास पैसा आ गया। बंगला, मोटर, नौकर और सम्मान,—वह वैभवप्राप्त व्यक्ति-जनता की ईर्षा का पात्र कुछ बन गया, कुछ बना दिया गया। लोगों का नारा बन गया कि गान्धी ने छाती पर गोली खायी और मिनिस्ट्री किसी ने पायी...

यद्यपि, इस प्रसंग में, इतना कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि कांग्रेस को बदनाम करने, उसे शासन करने के अयोग्य ठहराने के लिए देश के एक बड़े गिरोह द्वारा छल रचा गया। वैभव-सम्पन्न व्यक्तियों ने अवसर पाते ही, अपना पार्ट योग्यता के साथ पूर्ण किया। मानो जो काम अंग्रेज नहीं कर सके, वह उनके पीछे रह गये दलालों ने चतुराई से निबाहा। देश का धनिक-वर्ग जिस प्रकार अंग्रेजों की चाटुकारी करके अपना अर्थ साधता, समाज का शोषण करता, तो कदाचित् उसी नीति का अभ्यस्त वह पूंजीवदा

कांग्रेस की सरकार के प्रति भी संलग्न हुआ। अवसर पाते ही, उसने विलायती कपड़े उतार दिये और गांधी टोपी तथा कुरता पहनना आरम्भ कर दिया। उसने छुटभैया कांग्रेसियों को सोने की चमक दिखायी और अपना स्वार्थ पूर्ण किया। किन्तु इस क्षुद्र नीति का सबसे अधिक बुरा प्रभाव कांग्रेस पर पड़ा। कांग्रेसी बदनाम हुआ। जिन व्यक्तियों ने धनिकों की जेब से कुछ रुपया प्राप्त किया, उन्होंने यह तनिक भी नहीं विचार किया कि सोने-चांदी के ठीकरे मार कर, एक पूंजीपति ने उनसे क्या ठग लिया। किस प्रकार उस उज्जवल मुंह पर कालिमा का पोता फेर दिया। क्योंकि समाज अन्धा नहीं। वह देखता है। वह व्यक्ति को तोलता है। व्यक्ति के प्रति वह आदर करता है। उसे मिट्टी से उठाकर अपने सिर पर उठा लेता है। जिस कांग्रेस के व्यक्तियों को देश ने अपने हृदय पर प्रतिष्ठापित किया, उसका पूजन किया, हाय! यह भी कैसी विडम्बना थी कि उसी को क्रूर और मदान्ध माना जाने लगा! जनता देखती और सांस रोककर सोचती कि इस भूखे व्यक्ति के पास लाखों रुपया कहां से आ गया। व्यापार इसका नहीं, फिर भी रुपया प्राप्त कर लिया। किन्तु यह स्पष्ट ही दिखता था कि वह रुपया धनिकों की जेबों से आया ..वह उस कांग्रेसी का मुंह बन्द करने के लिए दिया गया। अवस्था यह हुई कि जो सच्चे, निर्भीक राष्ट्र-सेवक थे उनका रास्ता भी कुछ स्वेच्छा-चारियों द्वारा बन्द कर दिया गया। परिणामस्वरूप, उन्हें पग-पग पर जनता का रोष, ग्लानी और भर्त्सना का शिकार बनना पड़ गया...

परन्तु समाज स्वतन्त्र होकर भी अपनी परिस्थितियों से अन्धा बना था। वह दिन-दिन विषम बन रहा था। जीवन का बोझ उसकी छाती पर बढ़ता जाता। इसलिए वह कहता—हां, भाई! आज का युग राजनीति का युग है। समाज और व्यक्ति राजनीति

से पृथक रहकर क्या जीवित रह सकता है, न अभी नहीं बढ़ सकता।

इतना सुनकर ही, बरबस प्रश्न उठाया जाता—'तो राजनीति क्या है ? क्या झूठ ! धोखा ! जनता को लूटना !'—कहते लोग—'महाशय, हम देर से देखते आये हैं, पुरखों से सुनते भी आये हैं कि राजभवनों की पथरीली दीवारों के अन्दर से समाज और जाति के नाम पर सदा ही भावनापूर्ण और आदर्श-पूर्ण वाक्य उद्‌घोषित किये गये हैं...वे शब्द भूखे, दरिद्र और हीन-समाज को सुनाये गये हैं। उस समाज से बलिदान और त्याग करने के लिए बार-बार प्रमाण मांगे गये...और वह समाज, वह देश, फिर भी जीवन पाने की इच्छा के साथ उस उजागर रूप में जीवित रहना चाहता हैं। इसी हेतु वह अपने प्राण देता है, जीवन देता है...मानव की भावना और आदर्श के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है...

लेकिन ऐसे व्यक्तियों से मानो उपहास के स्वर में फिर कहा जाता—'भाई, अब तो तुम स्वतन्त्र हो ! अपने देश के स्वयं ही मालिक हो !'

यह सुनना, जैसे उस भूखे, अयाचित समाज के हृदय को कील देता। उस मानव-समाज के हृदय में जहरीला धुआं घुटने लगता और जिसके साथ उसका प्राण घुट-घुट कर तड़प जाता—'जिस स्वतन्त्रता को पाने के लिए देश ने संघर्ष किया, परायों से अपनी वस्तु को प्राप्त किया, अब अपने ही तो उस वस्तु पर ऐसे जम कर बैठ गये हैं कि हिलते नहीं,—उस मोह से छूटते नहीं !'

'नहीं, नहीं, यह जनतन्त्र का युग है। वोटों से अधिकार मिलता है। कोई भी शासन की ऊंची कुर्सी पर जाकर बैठ सकता है। महान देश को महान कर्मियों की आवश्यकता है। तुम में कोई हो, त्याग की भावना लिये हो, तो वह भी इस विस्तृत-क्षेत्र में उतर सकता है।'

किन्तु इतना सुनकर तो लोग हंसते और मानो सांस रोक कर, मौन रह जाते। वह एक देश-कर्मी और राजनीतिज्ञ की परिभाषा को ही सन्दिग्ध पाते। लोग कहते—'भाई, विवशता से लाभ उठाना ही आज की राजनीति है। सभी शक्ति पाना चाहते हैं। राजनीति के अखाड़े में उतरना ही सब गौरव अनुभव करते हैं।'

'लेकिन क्यों? किस लिए?'

'इसलिए कि वह मार्ग प्रशस्त है। चौड़ा है। उसके द्वार खुले हैं। वहां मनुष्य किसी भी द्वार से जा सकता है और आगे बढ़ सकता है।'

'परन्तु क्यों? क्या सेवा के लिए?'

तो कहा जाता—'हां, भाई! वहां सेवा भी की जा सकती है। अपना स्वार्थ भी पूरा किया जाता है। आदमी समाज के उच्चतम शिखर पर जाकर बैठना पसन्द करता है। वह सभी की दृष्टि में आना चाहता है। राजनीति एक ऐसा विषय है कि जिसे पाकर आदमी अर्थ, काम और मोक्ष तीनों प्राप्त कर लेता है। रुपया भी पाता है, यश भी पाता है।'

'तो यह अभयबाबू,—ये जनता-जनार्दन के भक्त! ये मजदूर और किसानों के त्राता!'

मानो धीरे से कह दिया जाता—'त्राता अब भी हैं। केवल इतना ही तो अन्तर आ गया है कि मुंह से कहने वाले करके नहीं दिखा पाते। शायद अभयबाबू भी शक्तिहीन बन गये हैं। अब बढ़े भी हो चले हैं।'

'अजी, यह क्यों नहीं कहते कि एक दिन पूंजीवाद रूपी चोर और डाकुओं के द्वारा सताये, सिसकते और अन्धेरे में पड़े हुए मानव को छुड़ाना चाहते थे, अब स्वयं ही उनके रुधिर और मांस को खा जाना चाहते हैं! हां, बात तो यही है न, धनिकों के शोषण

से पीड़ित मजदूर-वर्ग की आवाज एक दिन इन्होंने बुलन्द की थी, तो आज स्वयं भी अवसर पाते ही, उन मजदूरों को दबा देने की बात सोचते हैं...आश्चर्य तो यह है कि आज भी उन्हीं के प्रतिनिधि बनकर असेम्बली की कुर्सी पर जा बैठे हैं। ये भी धनिकों के गुट्ट में मिल गये हैं। चमचमाते हुए सोने-चांदी के पासों ने इन्हें अपनी ओर खेंच लिया है। ये अभयबाबू एक दिन देवता थे, तो अब दानव बन गये हैं !'

फलस्वरूप, अभयबाबू के विरोध में समाज दिन-दिन बढ़ रहा था। भले ही, उस समाज का नैतिक स्तर गिर गया, वह विचार-शून्य बन गया, परन्तु जिस दिन वह समाज महात्मा गांधी की चिता से धू-धू करती हुई लपटों को देख, फूट कर रो पड़ा, तो उसी ने अन्त में अनुभव किया कि हाय ! उन्हीं के अनुचर, उन्हीं के साथी आज गांधीजी की चिता पर सोने के महल निर्मित करना चाहते हैं। देश मरे या जिये, सभी अधिकार चाहते हैं। वैभव चाहते हैं। सोचता समाज, ऐसा क्यों ! क्या अभिकार मद में डूब गये लोग ! अथवा भ्रष्ट बन गये ! इतना सुनकर, यदा-कदा कह दिया जाता—'जी, देश को उठाने के लिये अधिक व्यक्ति नहीं होते। सेना का प्रधान सेनापति एक ही होता है। राजा एक। जिस राजा, सेनापति अथवा नेता में चरित्र-बल नहीं, उसका मानसिक धरातल ऊंचाई पर नहीं, वह न स्वयं उठेगा, न देश उठेगा। इस देश में एक व्यक्ति था,—वह कृष्ण-रूप गांधी जाने किस जन्म की तपस्या से पूर्ण बनकर इस देश में आया था। वह चरित्र का निर्माता था ! वह कर्मण्य, वह वृद्ध सन्यासी ! हां, निःसन्देह, गांधीजी ने अपने चरित्र-बल के सहारे पर देश को खड़ा किया था। सेवकों की सेना निर्मित की थी। उसकी वाणी जितनी झौंपड़ी वासी ने आदर के साथ सुनी, उतनी ही राजमहलों में रहने वाले राजा

और रानी ने भी सुनी । किन्तु वह तपस्वी गया, देश ने उसे लकड़ियों में जला दिया, तो सचमुच, जैसे अपना चरित्र, देश का मानसिक बल भी उसके साथ चला गया। देश खाली रह गया... नंगा...उजाड़...

'तो वह गांधी,—वह वृद्ध सन्यासी—वह जनता-जनार्दन का भक्त !' मानो देश की आत्मा पुकारती। वह देश की मिट्टी में महात्मा गांधी को खोज लेना चाहती। क्योंकि उसे भरोसा था, गांधी मरा नहीं, वह भारत से गया नहीं,—वह नहीं जा सकता। तपस्वी की तपस्या तो अधूरी रह गयी। वह पूर्ण होनी चाहिये। देश में राम-राज्य होना चाहिये। गांधी न रहा, तो उसका प्रतिनिधि भारत को मिलना चाहिये।

'वह तपस्वी ! वह देश का प्राण !' और तभी मानो कातर बनकर समाज पुकारता, व्यक्ति-समूह को सन्देह होता, वह तड़प जाता, तो क्या गांधी के साथ देश का प्राण भी चला गया। अब देश जीवित नहीं रहेगा ! अब नहीं उठेगा ! गांधी का जवाहर भी देश को नहीं मिलेगा। भारत के प्रधान-मन्त्री में क्या देश का लाड़ला जवाहर नहीं दीख पड़ेगा !

किन्तु ऐसे व्यक्तियों से कहा जाता—देश तो उठेगा; जरूर उठेगा। आज नहीं तो कल उठेगा। यह देश क्रांतियों का पुंज है न, तो कदाचित अभी और किसी एक बड़ी क्रांति का आह्वान करेगा !

क्या क्रांति ! खून ! बलिदान !—ओह ! तो अभी प्यास नहीं बुझी, इस देश की ! भारत-माता भूखी है ! तृषित है ! कितनी धारें यहां बही हैं ! इन्सान की लाशों के कितने अम्बार लगे हैं ! फिर भी भूख है इस देश की पृथ्वी को ! खून की प्यास है। राम ! राम !

लेकिन यह तो समाज की आशंका थी, अथवा भ्रांति थी! दुर्बल भावना भी हो सकती थी! स्वयं अभयबाबू और उनके समकक्ष नेता अब भी समाज के निम्नतम-वर्ग की वकालत तो करते। बड़े-बड़े भाषण देते। पूंजीपतियों को कोसते। सरकार को दोषी बताते। परन्तु न पीड़ित की पीड़ा देखते, न अन्धकार में पड़े हुए समाज के सम्पर्क में पहुंच पाते। कदाचित वे ऐसा करने का अवसर नहीं पा सकते थे। अभयबाबू के मकान का जो बाहरी बैठकखाना था, उसमें प्रायः नगर के गण्यमान्य व्यक्तियों का मेला लगा रहता। उस मेले में—नगर के नेताओं की उस भीड़ में—कभी-कभी रानी भी योग देती। उस बैठक में कदाचित ही संसार का कोई भाग उल्लेख न करने से अछूता रह जाता हो, कि जिसपर चर्चा न होती हो। उस बैठक में, अपने देश पर, देश के राजनीतिज्ञों पर भी टीकायें होतीं। उनके कार्यों की आलोचनाएँ की जातीं। अचरज की बात तो यह कि साथियों को बद-नाम करने की बातें भी उस मीटिंग में प्रायः सुनाई देतीं। प्रायः कांग्रेस की निंदा मुक्तकण्ठ से की जाती। अभयबाबू भी कांग्रेस के सदस्य थे, परन्तु उसकी बुराई करने में जैसे उन्हें अच्छाई दिखती थी!

उन्हीं दिनों की बात है कि अभयबाबू एक सभा में भाषण दे रहे थे कि तभी सभा-स्थल के एक भाग से आवाज उठी—'तुम डाकू हो, लुटेरे हो! मजदूरों के नाम पर तुम धनिक बने हो! निश्चय ही, उस सभा में ऐसा अवसर आ उपस्थित हुआ कि यदि समय पर पुलिस ने आकर हस्तक्षेप न किया होता और अभयबाबू को पुलिस की निगरानी में घर न पहुंचा दिया होता, तो कदाचित वे चुटीले बन जाते! नगर में झगड़ा होता। कुछ और व्यक्ति भी जख्मी होते। शायद किसी के प्राण चले जाते। क्योंकि उस सभा

में जहाँ उनके विरोधी थे, समर्थक भी कम नहीं थे। और संभवत: समर्थक अधिक थे। वे कांग्रेस और देश की वर्तमान राजनीति के विरुद्ध बोल रहे थे। वे देश के शत्रुओं का वर्णन. कर रहे थे। जनता को बता रहे थे, आस्तीन का साँप ही हमारा रक्त चूस रहा है...कांग्रेस और पूँजीवाद का समन्वय हो चुका है। उसी सभा में उन्होंने बताया कि पूँजीवाद क्या है—एक विचार,—एक शृंखला—जिसकी कठोर जंजीरों से यह मानव देर से से बँधा है!...पूँजीवाद एक ऐसी मनोवृत्ति है कि जो स्वेच्छा की चादर ओढ़कर इस विशाल व्यक्ति-समूह को एक दूसरे के प्रति सन्नद्ध बनाकर भी, पृथक करती है। मानवता की हत्या करती है! पूँजी-संकलन, पूँजी-वितरण, यह दो ऐसी परम्परायें हैं कि जिनकी धारा पृथक बह कर भी, एक बन जाती है। वह एक दरिया के समान समूचे देश का सिंचन करती हुई समुद्र में गिरती है और फिर वाष्प बन कर बादल का रूप धारण करती हुई पानी जमकर बरस पड़ती है। उन्होंने कहा, पूँजीवाद का अर्थ ही यह है कि भौतिकवाद का प्रचार हो। मनुष्य आवश्यकताओं का दास हो! पैसा उसका दर्शक हो! योरोप ने स्टीम का आविष्कार किया, तो कारखाने खोले। अपना तैयार माल विश्व के बाजार में प्रचारित किया। संसार का धन अनायास ही उसके पेट में पहुंच गया। योरोप मालदार बन गया। शेष संसार उसका दास और कृपा-पात्र हो गया। वह बोले—इस अर्थ में पूँजी का संकलन एक स्पर्धा है,—मानवता का पतन है! पूँजी ने संसार चमका दिया, सुन्दर बना दिया। परन्तु उसके उपभोग का अधिकार पूँजीपति को रहा। शेष मानव तृषित और क्षुभित ही बना रहा...मानो याचक! मानो दास! पीड़ाओं का क्षुब्ध-पुञ्ज! उस पूँजी का जन्मदाता मजदूर और किसान भूखा ही रहा!...

किन्तु उस भाषण के बाद जो दुर्घटना हुई, उससे अभयबाबू के मन पर तो विशेष प्रभाव पड़ा नहीं, उन्हें क्रोध आया और उन झगड़ालू व्यक्तियों को बुरा-भला कह कर अपना गुस्सा शान्त कर लिया। परन्तु रानी के मन पर सभा-स्थल का वह दृश्य जैसे साँप की लकीर की तरह खिंच गया। उसे बरबस ही याद आया कि कुछ वर्ष पूर्व, एक दिन, एक ऐसी ही संन्ध्या के समय उसके पति को लोग अपने हाथों पर उठा कर लाये थे। जो खून से भरे थे। पुलिस की लाठियों से घायल हुए थे। मगर आज वह जनता के वाक्यबाण सुनकर, हँसते हुए घर आ गये। वे बाण स्वयं रानी के कलेजे में चुभ गये। जिनकी मार से वह तड़प गयी। उस टीस से जैसे उनके मन की व्यथा और बढ़ गयी। वह बरबस कराह उठी! उसी दिन रानी को अनुभव हुआ कि उसके घर में पैसा तो आ गया, पति को सम्मान भी प्राप्त हो गया, किन्तु सच्ची जनता का विश्वास जैसे तिरोहित हो गया। अब जनता उसके पति को लुटेरा मानती है। डाकू मानती है। समाज-द्रोही कहती है। भला क्यों?

और मानो, अभयबाबू ने जिस आदर्श के मंच पर खड़े होकर वह सारगर्भित भाषण दिया, पूँजीवाद को मानव की हीन प्रवृत्ति उद्‌घोषित किया, किन्तु उसी से अपने पति को प्रभावित पाकर, रानी की आँखों के सामने पड़ा हुआ पर्दा फट गया और सत्य उसके समक्ष मूर्तिमान आकर खड़ा हो गया था...!

इकत्तीसवाँ अध्याय

कदाचित यही कारण था कि महेन्द्र अप्रत्यक्ष रूप से अभयबाबू का साथ छोड़ कर दूर होगया। वह अभयबाबू की नीति से सहमत नहीं बन सका। जिस रास्ते पर साथ चलकर, दोनों ने लम्बा सफर तय किया, उसी पथ पर महेन्द्र उनसे पृथक हो गया। वह स्वतः ही रास्ता काट कर आगे बढ़ गया। प्रत्यक्ष रूप से महेन्द्रबाबू ने देखा कि जैसे अभयबाबू थक गये। पास में रुपया आया, तो उस रुपये का मोह-जाल भी उनके मन पर फैल गया। पैसा आया, तो जीवन के प्रति ममता, भोग की लालसा और उसके प्रति समर्पण का भाव भी उस व्यक्ति के अन्तर में डोलता हुआ हुआ दिखाई दिया!

इस प्रसंग में, अचरज की बात तो यह हुई कि स्वयं रानी अपने भाई के विचारों से सहमत थी। और उसके भाई महेन्द्र का यह स्पष्ट मत था कि यह धोखा है, समाज के साथ पाप है! जिस समाज ने धूल में पड़े हुए अभयबाबू को अपने सिर पर उठा लिया, तो उसी समाज की भावनाओं के साथ खेलना न केवल अमानुषीय था, अपितु विवेक-भ्रष्ट व्यक्ति की चरित्रहीनता का भी द्योतक था! किन्तु रानी तो नारी थी। घर से बाहर निकल कर भी उसकी एक परिधि थी,—बँधी सीमा थी! वह पति की इच्छा के विरुद्ध आचरण करना अपने स्वभाव के भी विपरीत मानती थी। और महेन्द्र का मत यह था कि पूँजी-संकलन और है, जनता की सेवा करना और! दोनों में जब सादृश्य नहीं, एकता नहीं, तो पूँजीगत-मानव से न्याय की आशा भी नहीं की जा सकती!

किन्तु स्वयं महेन्द्रबाबू के मन में बात उठती कि यह समाज में चालित पूँजी—पैसा—यह सोना-चाँदी,—आखिर इतने सिर-मौर क्यों बन गये कि मनुष्य इन्हीं का दास हो गया! इस प्रसंग पर ही, उसने अनुभव किया कि पूँजी का संचरण करने वाली जिस मशीन ने आदमी को कठोर और पत्थर बना दिया, तो यह समझना अधिक दुर्बोध नहीं कि पैसे का उद्देश्य ही यह है, मनुष्य स्वार्थी हो, क्रूर हो और व्यक्ति को व्यक्ति से दूर कर देने की परम्परा का प्रचार करता हो! यद्यपि, एक बार, एक पुस्तक में, अथवा किसी व्यक्ति से उसने यह सुना, या पढ़ा था—कि पूँजी एक नियामत है, जो समाज के व्यक्ति को सामाजिक बनाती है और एक-दूसरे के सम्पर्क में लाने का प्रयत्न करती है। किन्तु तब की तरह, महेन्द्र अपने वर्तमान तक भी, इस मत से सहमत नहीं हुआ कि पैसा माध्यम बनकर, प्रेम, सौहार्द्र और एकता का प्रचार करता है। उसने तो अनुभव किया, यदि पैसा न होता, तो आदमी अधिक सन्तुष्ट और सुखी रहता। भले ही, सजा हुआ संसार न दिखाई देता, विद्युत का प्रकाश भी न होता, स्टीम की शक्ति और विज्ञान का चमत्कार भी न देखने को मिलता, परन्तु अँधकार में पड़ा हुआ मानव रोटी तो पाता,—जीवन की सन्तुष्टि से सुखी तो होता!

लेकिन इतना कह कर भी, महेन्द्र किसी निर्णय पर नहीं पहुंच रहा था। इसका एक कारण यह था कि जिस इन्सान की वकालत वह कर रहा था, वह इन्सान स्वतः ही अपने इतिहास में कभी प्रगतिशून्य अथवा मूक नहीं रहा। इन्सान जिस युग में प्रमादी और कर्महीन रहा, तो तभी उसका पतन हुआ। अपने स्वभाव से संघर्षशील मानव शान्त नहीं रहा। मानो जीव-जीवान्तरों की सृष्टि में, इन्सान नाम के जिस प्राणी की प्रकृति ने उत्पत्ति की, तो

महाशक्ति की उस अमर सृजनात्मक कल्पना को पाकर मानव इतना तो समझ ही गया कि वह विशिष्ट है,—उसका अधिकार अमर है। अतएव, जंगलों और पहाड़ों में रहने वाला इन्सान जिस प्रकार क्रमशः प्रगति-पथ पर आगे बढ़ता गया, तो उसी को लक्ष कर, महेन्द्र सोचता, वाह-वाह! क्या ही अजीब परम्परा इस मानव ने ईजाद की! अपने लिये स्वतः ही पथ प्रशस्त किया और आगे बढ़ने में समर्थ हुआ। अपने मन की इस अवस्था में डूबा हुआ महेन्द्र, ऐसी कल्पना तो किसी एक दिन भी नहीं कर सका कि सृष्टि का नाश हो,—मानव का नाश हो,—उस नाश अथवा महानाश को कल्पना से ऊपर उठा हुआ महेन्द्र विशाल सृष्टि में जैसे एक भी मानव ऐसा नहीं पा सका कि जिसका संहार हो,—अन्त हो!

निःसन्देह, महेन्द्रकुमार ने अपने अन्तर में इन विचारों को प्रश्रय नहीं दिया, वह ऐसी शंका भी नहीं कर सका कि एक दिन प्रलय होगी, सृष्टि नष्ट हो जायेगी। उसके सामने तो बात थी कि परिवर्तन होंगे, होते रहेंगे। क्रूरता और बर्बरता बढ़ेगी तो प्रतिकार और बलिदान भी होंगे। त्याग और आदर्श की भावनायें जीवित रहेंगी। और इस भटकते हुए—अशांत बने हुए—इन्सान को जीवन देती रहेंगी।

पिछले दिनों जब महेन्द्र और जेबुन्निसा के विवाह की बात प्रायः पक्की हो गयी और रानी तथा अभयबाबू की दृष्टि में पूर्ण संभावना बन गई कि महेन्द्र अकेला नहीं रहेगा,—जेबुन का पति बन जायगा; तो तभी, हास-परिहास के उस अवसर पर, चुटकी लेते हुए अभयबाबू ने कह दिया—जेबुन्निसा के पिता की एक बड़ी जायदाद इस नगर में मौजूद है। सुनता हूँ रुपया भी बैंकों में जमा है। 'उन्होंने आँखों से हँसते हुए कहा—'सुन्दर और भाव-

नामयी पत्नी पाकर महेन्द्र को जायदाद और रुपया भी मिलेगा। भाग्य खुल जायगा। यह छोटा-सा जीवन समाज की ऊँचाई पर पहुंच जायगा।'

बात सुनकर, रानी ने आँखें चढ़ा ली —यदि जेबुन न मिले, तो क्या मेरा भैया भूखा रहेगा!' उसने कहा—'चुनाव जेबुन ने किया है। भैया उससे कुछ मांगने नहीं गया।'

अभयबाबू ने मानो चौंक कर कहा--'न, न, यह माँगने का प्रश्न नहीं, रानी! कहता हूँ, भाग्य जब खुलता है, तो सभी-कुछ आ जाता है। जेबुन्निसा सरीखी पत्नी को क्या सुगमता से पाया जा सकता है?'

रानी फिर बोली-'और भैया का मिलना क्या सरल दीखता है?'

अभयबाबू ने हँस दिया—'हाँ, हाँ, अपना सोना सभी को खरा लगता है।'

उसी समय वहाँ पर बैठा हुआ महेन्द्र अखबार को मेज पर रख कर बोला—'लेकिन मुझे यह नहीं सूझता कि इस चुनाव में, अथवा विवाह के निमित्त अन्य चुनावों में देखा क्या जाता है! क्या पैसा? क्या रूप?' उसने कहा—'मेरी दृष्टि में यह दोनों ही परम्परायें भ्रामक हैं--अपने-आप में हीन हैं। मुझे तो लगता है कि पूँजी का श्राप इस इन्सान के चारों ओर घूमता है। इस विवाह सरीखे सांस्कृतिक और धार्मिक अँग पर इसका भी प्रभाव पड़ा है। जिस प्रकार चुनाव करते हैं, वह गलत परम्परा है।' उसने कहा—'हमारी यह कैसी विवशता है कि लालच और स्वेच्छा की मनोवृत्ति ने हमारा विवेक भी छीन लिया है! पैसे के कारण ही सुबोध और सरल बालाओं का जीवन खतरे में पड़ चुका है...जाने कितनी बहिनों ने आत्मघात किया है। हाय! हम दूसरों को छलने चले थे, परन्तु अपने हाथों हमने अपना ही

सर्वनाश कर लिया है। हमारे नैतिक और सामाजिक कामों में भी पैसा प्रधान बना है !'

अभयबाबू ने कहा—पूँजी चाहे पाप हो, या पुण्य; तुम्हारा काम उसी से चलता है। पूँजीहीन मानव, इस विश्व में देर से पराश्रित रहा है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र को भी पैसे के लिये काशी नगरी में बिकना पड़ा था। स्त्री और पुत्र को भी बाजार की दर पर चढ़ा दिया था ! स्पष्ट है कि पैसे के लिये मानव दास बना है। पूँजी का मनुष्य-जीवन में श्रेष्ठतम स्थान रहा है।'

इतना सुना, तो खेद पूर्ण बन कर महेन्द्र लाल हो गया। उसकी आँखें चढ़ गयीं, स्वर भारी हो गया। वह बोला—'मुझे पता है कि पैसा इस सृष्टि में क्या करता आया है। जिस युग में मानव का बाजार के चौराहे पर जानवरों के समान क्रय-विक्रय होता था, वह भी पढ़ा है। किन्तु उस दास-प्रथा का सूत्र आज भी मिलता है। सभ्य देशों में उसे आज भी प्रश्रय दिया जाता है। जिस मनुष्य समाज में एक दिन बाल, वृद्ध, नर-नारी बेचे जाते थे, मजदूर उसी का तो एक नमूना है। पूँजीपति कम श्रम करता है और अधिक पाता है। मजदूर के शोषण का लाभ वही उठाता है।' उसने मानो चीख कर कहा—'महाशय, यह पाप यदि मनुष्य-समाज में न होता, तो मनुष्य देवता होता। ईर्षा और प्रतिस्पर्धा न होती। जानवर के समान इसका बध भी न किया जाता। यह पूँजी का ही श्राप हुआ कि वन्दना करने वाला बधिक बन गया...भेड़िया...'

रानी बोली—'एक बार बाजार में देखा था मैंने, कि कसाई गाय के बदन पर मांस देख रहा था। जरूर, वह इतना परख रहा था कि इसमें कितना गोश्त होगा...उसे कितना लाभ हो सकेगा !' उसने तुरन्त ही आतुर और कातर स्वर में कहा—'दास-प्रथा का जन्म भी इसी वृत्ति पर टिका है। मैंने पढ़ा है कि इन्सान और

उसके स्त्री-बच्चे भी जब बेचे जाते थे, तो खरीदार उनका खून देखता, शरीर दाब कर गोश्त देखता...नारी अथवा युवा लड़की की सुन्दरता को परखता, तो जैसे उस विक्रेता का यही प्रधान कर्तव्य बना होता था। वह उन दासों से मनमाने काम लेता। जानवरों के समान पेट के लिए टुकड़ा डाल देता।' उसने कहा—'यह प्रथा आज भी है। जमींदार और राजा दास-दासियां रखते हैं। लड़की के विवाह पर दहेज में देते हैं। वह उनकी इच्छा, चरित्र सभी का भक्षण कर लेते हैं!'

महेन्द्र ने कहा—'पूँजीवाद ने जिस पूँजी का प्रचार करके और समाज को विवशता का दास बना कर, निरा पंगु और हीन बना दिया है, यही तो एक प्रधान पाप है कि जिसके बोझ से आदमी सिसकता है...आत्म हत्या, चोरी और लूट करता है, ओह! सोच नहीं पाता मैं, कि पूंजी के संतुलन, वैभव और पराक्रम ने किस-किस पाप का सृजन नहीं किया है। देवता ही बन कर आया था यह आदमी, नारी की कोमल कोख से पैदा हुआ था कि पूँजी का प्रश्रय पाकर इतना क्रूर बना कि मा का भी कातिल बन गया... पितृ-द्रोही हो गया! आदमी सौगात में पाये हुए देवत्व से अनायास ही गिर गया! अभयबाबू, यह आज की समस्या नहीं है, पुरानी है। सहस्रों वर्षों से चली आई है। जो मेहनत न करके सुगमता से अधिक धन पाता है, मैं उसका श्रम नहीं समझता। वह क्या पूँजी का सदुपयोग कर सकता है? वह उसे समाज की निधि नहीं मानता, अपनी वस्तु मानता है। इसीलिए दुरुपयोग करता है।'

मानो बरबस ही, अभयबाबू ने कहा—'भाई, परिस्थिति बड़ी है। मनुष्य को दास मानती है। वही तो मनुष्य का जीवन बनाती और बिगाड़ती है!'

अभयबाबू से इतना सुना, तो महेन्द्र चकित रह गया। वह जैसे अपने कानों पर भरोसा नहीं कर सका। उसने जाने कितनी बार स्वयं अभयबाबू के मुँह से ही सुना कि परिस्थिति क्या है,—जैसे जीवन की अँगड़ाई; समय की एक मांग! परंतु उसको तोलना और स्वीकार करना, न करना इन्सान का ही काम है। कोई व्यक्ति परिस्थिति के ढाँचे में ढलता है और कोई अपने जीवन के गर्भ में स्वयं परिस्थिति को ढाल लेता है। परन्तु जब उसने उन्हीं के मुँह से ऐसी कमजोर बात पाई, तो वह मन में झल्ला गया। क्रोध उसकी आँखों के द्वार पर आ गया। बरबस, उसने अपना मुँह रानी की ओर फेर लिया। जैसे उसने कहना पसन्द किया कि यह व्यक्ति सचमुच ही भ्रष्ट हो गया है....पूँजी का दास बन गया है! एक बार नशा किया, तो अब मुँह से लग गया है। जैसे जीवन का संतोष और सुख पा गया है!

महेन्द्र के मन की बात पकड़ कर ही, रानी बोली—'जब मनुष्य जीवन का मोह करता है, तो निश्चय ही, परिस्थिति को बड़ा महत्व देता है। हमारा यही ह्रास है! यही पतन! अन्यथा, आदमी क्या, हाड़-मांस का बन कर भी, कुछ विचारों का घरोंदा है!

इतना सुना, तो अभयबाबू हो-हो करके हंस दिये—'भई, वाह! बहिन और भैया ने क्या किनारा काटा है! और दिखता नहीं कि जीवन का दरिया अभी बड़ा है, गहरा है। जरा हाथ-पैर थके नहीं, सांस फूला नहीं, कि बस,—हां, इस दरिया की लहरों में सो जाना पड़ता है!' वह बोले—'भाई, आदर्श और व्यवहारिकता में सदा भेद रहा है। मैंने बड़ा लम्बा सफर किया है। आंखों से असलियत को देखा है। जब-जब पूंजी और श्रम का युद्ध हुआ, तो पूंजी का ही पलड़ा भारी रहा है। पूंजीपति क्या कभी ठगा गया है। उसका

स्तर तो सदा ही ऊंचा रहता है।

महेन्द्र झल्ला उठा—'जी हां, उसका पलड़ा ऊंचा रहा है... स्तर भी ऊंचा।' उसने कहा—'तो इसमें आपत्ति कौन करता है! और मुझे तो आश्चर्य तब होता है कि जब मनुष्य को इतना सोचता पाकर भी, संसार के वैभव और सुख-सम्पदा को अपनी गोद में भर लेने की इच्छा से, लिप्त हुआ पाता हूं। बताइये तो, आपने क्या इस जिन्दगी को दूर तक ले जाना है। आपने भी कोई नयी बात तो की नहीं, मरने के बाद पत्नी और बच्चों के लिए सभी की तरह दस-बीस लाख जोड़ कर छोड़ जाना पसन्द किया है। मानो आपकी शक्ति का यही मूल्य है। शायद आप समझते हैं कि आपके मरने के बाद बच्चा भूखा मरेगा। वह बेकार है! पंगु है! उसे अपना सफर आपकी स्मृति और पैसे पर ही चलाना है!' वह बोला—'अभयबाबू, आपसे ही सुनता आया हूँ कि जीवन,—यह इन्सानी जिन्दगी—एक अध्ययन है,—सुन्दर और गम्भीर पाठ हैं कि जिसे सभी पढ़ते हैं,—पढ़ते जाते हैं। परन्तु अब आपने भी उस पाठ को छोड़कर उसी रास्ते पर चलना पसन्द किया है कि जिस पर पूंजीवाद चलता है, तो मुझे आश्चर्य होता है। मैं तो कहता हूँ यह पैसा वही व्यक्ति पाता है कि जिसका हृदय कठोर है! नग्न है! क्रूर है!'

सुना, तो एकाएक लाल बनकर, अभयबाबू बोले—'महेन्द्र!'

गम्भीर बनकर महेन्द्र ने कहा—'काश, मैं और अधिक कहने की सामर्थ्य पाता! मैं आपके इस नये बने हुए महल को गिरा देने की भी क्षमता रखता!' वह लाल बन गया। उसकी आंखों में खून भी उतर आया।

कांपते हुए स्वर में रानी बोली—'भैया!'

किन्तु महेन्द्र का मुंह अतिशय गम्भीर था। वह सचमुच ही,

क्रोध में भर गया। जो बात देर से उसके मन में छुपी हुई थी, अवसर पाकर, उसी को बाहर निकाल देने के लिए वह व्यग्र बन गया। उसी अवस्था में, उसने फिर कहा—'मैं जल्दी यहां से जा रहा हूँ। कहीं भी जा रहा हूं। मैं आपसे कहे देता हूँ कि जेबुन्निसा अथवा उसके पैसे के प्रति तनिक भी मैं मोहित नहीं हूँ। मैं भूखा हूं, तो ऐसा ही बने रहने में गर्व मानता हूँ।'

अभयबाबू बोले—'तुम युवक हो,—नौजवान हो! इसीसे मगरूर हो! दिखता है कि तुम आंधी से लड़ना चाहते हो। दस वर्ष पूर्व यही मैं चाहता था। परन्तु आज वास्तविकता को लक्ष कर, मैं कुछ और देखता हूँ। मैं समझ चुका हूँ, भूखा व्यक्ति आदर्श की पूजा नहीं कर सकता। वह समाज अथवा देश को कुछ भी नहीं दे सकता!'

महेन्द्र ने अपने स्वर में दृढ़ता और अपूर्व संयम का भाव ले कर कहा—'इधर कई वर्ष से आपने मजदूरों के लिए जिस कोआ-परेटिव बैंक की स्थापना की, उसमें कई लाख रूपया जमा हुआ। घर में बैठ कर, मैं पूछता हूं, बतायेंगे, उसमें अब कितना रूपया है? और जो घट गया, वह कहां चला गया? आप कहेंगे तो नहीं परन्तु मैं कहता हूँ, वह आपके पेट में चला गया! काश, मैं इस पेट को फाड़ देता! मैं इतना क्रूर बन जाता कि अपनी बहिन का सोहाग अपने हाथों से ही छीन लेता! और फिर भी, आप परि-स्थिति का बहाना करते हैं! पैसे की आड़ लेते हैं! यह क्यों नहीं, कहते कि पैसे से प्राप्त होने वाले विलास, वैभव ने आपको भी ग्रस लिया है...अजीब बात है, मनुष्य जिस वस्तु में आनन्द पाता है, उसीके द्वारा उसका संहार होता है! वह उसे स्वीकार करता है!' इतना कहा और महेन्द्र खड़ा हो गया। वह तुरन्त बाहर

चला गया। उसके पीछे ही, देर तक मौन बने हुए, मानो जीवन के अन्धकार में डूबे हुए अभयबाबू ने सांस भरी और ऊपर काले हो आये आसमान की ओर मुंह करके छोड़ दी। इसी प्रकार रानी ने भी सांस भरी और छोड़ दी। अवस्था यह हुई कि न पति ने कुछ कहा, न पत्नी ने! मानो दोनों ही विपरीत! दोनों ही हीन और कायर बने हुए अपने अतीत में डूब गये थे!

दूसरे दिन का जब प्रातः हुआ तो महेन्द्र के कमरे में रानी के नाम एक चिट्ठी मिली। वह स्वयं नहीं मिला। महेन्द्र नगर से बाहर चला गया। और यह बात उसी दिन हुई कि जब महेन्द्र विवाह की बात पर सहमति देकर जेबुन्निसा के यहां से लौटा था। रानी को लिखे अपने पत्र में जो अन्तिम पैराग्राफ था तो उसी में अभय-बाबू का उल्लेख करके उसने कहा, तुम मेरी बहिन हो,--अभय-बाबू की पत्नी,--तो यदि तुम अपने इस भावनापूर्ण नारी के जीवन में भैया और पति को अन्धकार में भटकते हुए, देखकर दिशा दे सकीं, तो सचमुच, तुम इस एक जीवन में पूर्ण ब·ोगी। ऊंचाई पर देखने वाले तो बहुत हैं, दूसरों का बध करके पैसा पाने वाले भी कम नहीं! यही पूंजीवाद की देन है! परन्तु अभय-बाबू जिस संकल्प से भ्रष्ट हो चले हैं, उनको उसकी याद दिलाना तुम्हारा काम है। तुम्हारा उत्तरदायित्व बड़ा है। पथ कठोर! जीवन विषय! जिन्दगी के पूरे सफर में सभी प्रकार की आपदायें उठाकर भी, तुम अपने पति को दिशा का संकेत दे सकीं तो याद रखना, यह महेन्द्र तुम्हें अपने जीवन में बहिन तो मानता ही है, मा भी स्वीकार करेगा। आज तक तुम अभयबाबू की पत्नी थीं, अब एक बच्चे की मा हो। तो मा के उस अमर उत्तरदायित्व को पाकर अभयबाबू की ओर भी देखो। उन्हें परिस्थितियों का दास बनने से रोको।

रानी ने उस पत्र को पढ़ा और अभयबाबू की टेबुल पर रख दिया कि जिससे वह भी पढ़ लें और चाहें तो पथ-निर्देश के रूप में स्वीकार कर लें। किन्तु वह पत्र पढ़ कर भी अभयबाबू ने रानी से कुछ नहीं कहा, अपितु हुआ यह कि पत्र उन्होंने मेज की दराज में रख दिया और ताला लगा दिया।

बत्तीसवाँ अध्याय

देर से चली आई, अपने अन्तर की वेदना को, महेन्द्रकुमार जब शान्त नहीं कर सका, तो उसके लिए यही श्रेयस्कर था कि अपना मार्ग बदले। फलस्वरूप, जब वह दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षेत्र में अनायास ही पहुंच गया, तो उसने अनुभव किया कि भगवान की यही प्रेरणा थी, मेरे लिए यही अच्छा है। सबसे अधिक सन्तोष की बात महेन्द्र के लिए यह हुई कि बीमार और भूखे मनुष्य-समाज में बसकर, यह भी उसे समझने का अवसर मिला कि व्यक्ति भूखा और बीमार क्यों है! भाग्य और भगवान भरोसे की बात तो वह देर से सुनता आया, परन्तु उस क्षेत्र में बसे हुए उस नर-कंकालों की पीड़ा को लक्ष करके, वह यह समझ सका कि भाग्य और भगवान का बहाना किया गया है...दुर्बल और हीन मानव को ठगा गया है और सताया गया है! निदान, उसकी दृष्टि में बीमारी कोई ऐसा रोग नहीं, जो असाध्य हो और आसमान से अकाल-वृष्टि बनकर बरस पड़ा हो! जिस पेट की क्षुधा से पीड़ित बनकर सैंकड़ों व्यक्ति मर रहे थे, उनकी उस निरालम्ब अवस्था को लक्ष करके भी महेन्द्र के मन ने यह चीत्कार किया—'यह मानव का स्वार्थ है...दम्भ का नग्न-रूप!'

लेकिन उस दम्भ और स्वार्थ को नष्ट करने का कोई ऐसा सरल तथा सुबोध मार्ग महेन्द्रकुमार को नहीं सूझ रहा था कि जिस पर मानव चले और अन्धकार से निकल कर प्रकाश की ओर देख सके, वस्तुस्थिति यह थी कि जिन गांवों में महेन्द्र अपना कार्य कर रहा था, उन नर-नारियों के जीवन में उसे कहीं भी ऐसा प्रकाश

और आत्म-सम्मान का भाव नहीं दीख पड़ा कि जिसका सहारा पाकर वह समाज उठे और चले। वह जैसे मृतप्राय: समाज था! सदियों से हीन और कायर बना दिया गया नर-समूह! जीवन में गिड़गिड़ाना और दांत निभोरना ही उसका जन्मसिद्ध स्वभाव बन गया। जमींदार के चरणों की धूल चाटना, हाकिम हुक्कामों को झुककर सलाम करना और सेठ-रईसों को 'अन्नदाता' शब्द से उद्‌बोधित करना ही मानो उस समाज का पैतृक दृष्टि-लक्ष बन चुका था!

फलस्वरूप, उस क्षेत्र में सेवा और उपचार-कार्य करते-करते महेन्द्र उस समाज का विशिष्ट अंग तो बन गया, परन्तु वह स्वयं उन गांवों के लिए किस प्रकार अधिक उपादेय हो, यह प्रश्न उसके लिए विचारणीय हो गया। वह चाहता था कि उन व्यक्तियों को भी मनुष्य बनने के लिए कहे। उन्हें भी अपने अधिकार की बात बताये। उनके जीवन में कितना गौरव है, कितना सम्मान है, यह मन्त्र घर-घर जाकर सुनाये।

उन कई सौ गांवों के बीच में जो दस-बीस सेठ और जमींदार थे, महेन्द्र उनकी दृष्टि में आ चुका था। वह प्राय: उन लोगों के पास आता-जाता था। उन्हीं में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे, जो अपने स्वार्थ को लक्ष कर उन किसान-मजदूरों को भी उठता हुआ देखना चाहते थे। किन्तु उनमें जो दकियानूसी विचारों के व्यक्ति थे, अपनी आंखों में महेन्द्र को कांटे के समान भी देखते थे! वे समाज को सुनाकर कहते, ऐसे व्यक्तियों ने ही धर्म और व्यवस्था का नाश किया है! यह महेन्द्रबाबू भगवान की महत्ता को भूल कर, मनुष्य को बड़ा मानता है...सबको समान देखना चाहता है,—मूर्ख! महेन्द्र इस प्रकार की बातों को सुनता वह कह देता, इन्हें यही कहना है! मनुष्य के स्वभाव में यही तो एक दुर्गुण है

कि स्वार्थ नहीं छोड़ता। दूसरा भूखा रहे, परन्तु अपना पेट भरना चाहता है। लेकिन ज्यों-ज्यों महेन्द्रकुमार गांवों के उस विशाल-समाज में घुसता जा रहा था, वहां की दयनीय अवस्था का अध्ययन कर रहा था, तो इतना समझने का उसे अवसर मिला कि निरन्तर की पीड़ा, भूख और दुःसह यातनाओं को सहता हुआ वह इंसानी-समूह, सहारा मांगता, दया मांगता! वह देखता कि सदियों से भूखा, प्रताड़ित मानव आत्म-हीन तो बना ही, रोगों का घर भी बन गया है। मानो दुर्बल प्राणी की ओर से प्रकृति ने भी उसे अपना अभिशाप दे दिया है। और जब समाज में स्वार्थ है, दम्भ है, क्रूर भाव है, तो उसका ठीक उपचार करने के लिए एक ऐसे शल्य-शास्त्री की आवश्यकता थी कि जिसके द्वारा समाज का सड़ा हुआ अंग काट दिया जाय, दुर्गन्ध साफ हो जाय! किन्तु इतना समझकर भी महेन्द्र जैसे अपने अन्तर में ही कोलाहल पाता, विद्रोह पाता और उस कठोर अन्तर्द्वन्द्व के समूह में भिंचता हुआ एकाएक कहता—'देश में कम्युनिज्म आना चाहिए! समाज को सम बनाने के लिए कठोर पग उठाना चाहिए!' किन्तु इतना सोच-कर भी, महेन्द्र कम्युनिज्म के प्रति अधिक नहीं झुक रहा था। वह एक विदेशी भावना को पाकर अपने को हीन मानता। अतएव, वह कहता—'एक दिन इस भारत में बुद्ध-धर्म का विकास हुआ था, जिसका मूल सिद्धान्त ही मानव-प्रेम था। भारतीयों के अन्य धर्म-शास्त्रों में जिस व्यवस्था का उल्लेख है, उससे भी सदा यही ध्वनित किया गया। किन्तु अपने-आप इतना उल्लास पाकर भी, वह सोचता,—हाय! जिस देश ने अपने पुराने आदर्शों को स्वीकार नहीं किया, वह बाहरी प्रेरणा को ही किस प्रकार ग्रहण करेगा! न, यहां कम्युनिज्म भी सफल नहीं हो सकेगा!'

महेन्द्र फिर कहता, हमें शल्य-चिकित्सक की आवश्यकता तो है, इस

के अंग की चीड़फाड़ करना भी जरूरी है, परन्तु जिस कम्युनिज्म का आश्रय लेकर देश उठना चाहता है, उसमें भी भला स्थायी संगति कहां है ! सत्य कहां ! सम दर्शन कहां ! व्यवहारिकता कहां ! इस विश्व के बड़े कुटुम्ब में समानता का अधिकार चलेगा, तो प्रगति का मार्ग भी रुक जायगा। मनुष्य के मन में ईमानदारी नहीं, तो सन्तुलन कहां रहेगा ! निदान वह कहता—तो हो क्या ? क्या ऐसे ही विश्व चलेगा ! संसार इसी प्रकार आग की भट्टी में जलता रहेगा ! वह कहता, हमारा पहिला और अन्तिम लक्ष तो यह होना चाहिए कि देश और समाज को जिस राजकीय-सूत्र से चलाया जाता है, वह व्यवस्थित हो, ईमानदार हो और अपने कर्तव्य में पूर्ण हो। निश्चय ही, महेन्द्र जन-सेवा कार्य के अपने बीते हुए समय में, यह भलि-भांति देख सका कि राज्य के कर्मचारी ईमानदार नहीं—उनमें कर्मण्यता की भावना नहीं। देश के प्रति वफादारी नहीं। वे सभी समाज को लूटते हैं। देश का जो धनिक-वर्ग है, पैसे के लालच में, उसके हाथमें भी खेलते हैं। अन्यथा, समाज का मुनाफाखोर व्यक्ति आखिर इतना छोटा जुर्म तो करता नहीं कि क्षमा कर दिया जाय ! वह चोर और डाकू से भी अधिक क्रूर है ! वह अपने स्वार्थ के फलितार्थ, हजारों मनुष्यों के प्राणों का ग्राहक बन जाता है ! उसी के कारण देश नंगा रहता है, मकानों से बाहर पड़ा हुआ है ! जीवन की जो मामूली आवश्यकताएं हैं, जब वही ठग ली जाती हैं, वस्तुएं चोर बाजार में बेची जाती हैं, तो ऐसे देश का कौन मददगार होगा। मा जब डायन बनती है, तो बच्चे की क्या प्राण-रक्षा हो सकती है ! अतएव सोचता महेन्द्र, समाज के ऐसे डाकुओं को, सरकार के ऐसे कर्मचारियों को बाजार के चौराहों पर खड़ा किया जाय और जनता के सामने ही उनका बध कर दिया जाय !

निःसन्देह, महेन्द्रकुमार के मन में यह विचार दृढ़ होता जा रहा था कि यदि राज्य का रक्षक,—चाहे सिपाही, थानेदार, डिप्टी या मिनिस्टर—ईमानदार हो, तो देश अँधेरे में नहीं जायगा। समाज के स्वार्थियों को भी चोरी करने का अधिक अवसर नहीं मिलेगा।

महेन्द्रकुमार सेवा-कार्य करने के साथ जनता में ऐसे विचारों का भी प्रचार कर रहा था कि उसकी दिशा साफ है। वह जिन व्यक्तियों के बीच में आकर बसा है, वे ईमानदार और नेक हैं। वे मूर्ख हैं, दरिद्र हैं, परस्पर ईर्षालु भी बन गये हैं, परन्तु देश की वास्तविक आत्मा तो वे हैं...जनार्दन वे! इसका परिणाम यह हुआ कि महेन्द्र उन कई सौ गांवों में ऐसा बन गया कि जैसे उस समाज का प्राण! उस क्षेत्र में किसी बड़े राजा या जमींदार को इतना सम्मान नहीं मिला कि जितना महेन्द्र कुछ समय के अन्तर्गत ही प्राप्त करने में समर्थ हो गया। वह इसलिये भी सन्तुष्ट था कि वहाँ नारों का कोलाहल नहीं, झूठे आदर्श की पुकार नहीं, इन्सान का नैतिक पतन भी नहीं!

किन्तु, समाज की जिस गन्दी राजनीति के कुचक्र को महेन्द्र नगरों में सभी ओर देख सका, उन गाँवों में भले ही, वह साफ दृष्टिगोचर न होती हो परन्तु इतना अवश्य था कि गन्दी राजनीति की दुर्गन्ध वहां भी थी। महेन्द्र के प्रति वहाँ भी दुर्भावना पैदा हो गयी थी। सरकारी अधिकारियों, समाज के पण्डितों, सेठ जमींदारों की दृष्टि में महेन्द्र भी खटक रहा था। वह अछूतों को सवर्णों के समान अधिकार दिला रहा था। किसान-मजदूरों को उनकी आत्मा का सम्मान और अधिकार बता रहा था। अतएव, वह स्वेच्छाचारियों की दृष्टि में अच्छा कर्म सम्पादित नहीं कर रहा था।

एक अवसर की बात थी कि महेन्द्रकुमार ने जिस गाँव में अपना स्थायी निवास बना रखा था, वहीं के जमींदार ने बेगार न देने की अवस्था में एक चमार की युवा लड़की को पिटवा दिया। अवस्था यहाँ तक पहुंची कि उस लड़की को थाने के सिपाहियों द्वारा भ्रष्ट कराने का भी प्रयत्न किया गया। लड़की का पिता महेन्द्र का भक्त था। महेन्द्र के समक्ष जब बात रखी गयी, तो वह इतना झल्लाया कि मामला ऊपर अधिकारियों के पास ले गया। उसे लड़की पर भी क्रोध आया। उससे कहा, जमींदार को पीट देना था। सिपाहियों के मुँह पर भी तमाचा मार देना था। किन्तु महेन्द्र ने देखा कि ऊँचे अधिकारियों के पास उस मामले को ले जाना भी बेकार रहा। सुना गया कि जमींदार ने लड़की के मुँह पर पर अपने हाथ का तमाचामार दिया। और अधिकारियों के मुँह रुपयों का तमाचा मारा। थाने के सिपाहियों का पक्ष थानेदार ने लिया, क्योंकि दोष उसके सिर भी आता था। यों, मामला दब तो गया, परन्तु महेन्द्र से न केवल जमींदार चिढ़ गया, वरन थाने का पूरा काफिला भी उसके विरूद्ध बन गया। चमार की लड़की का नाम था, गंगा। वह युवा तो थी ही, सुन्दर और स्वस्थ भी थी। चूंकि वह एक विभिन्न परिवार से सम्बन्धित थी, इसलिए फटे हुए कपड़े पहन कर जंगल जाती, वहां खेतों में मजदूरी करती, गांव के युवक उसकी ओर इशारे करते, जिन्हें देखकर गंगा कभी मुंह चढ़ाती—कभी माथे में सलावट डाल कर घर लौट आती। जब जमींदार की घटना घटी, वह समस्त गांव में फैली, तो स्वभाववश गंगा एक दो बार महेन्द्र के पास आई और महेन्द्र को भी लोगों ने चमार के घर आता-जाता हुआ देखा। इसका परिणाम यह हुआ कि जमींदार ने अपने व्यक्तियों द्वारा यह प्रचारित कराना आरम्भ कर दिया कि

महेन्द्र और गंगा का सम्बन्ध अच्छा नहीं...महेन्द्र नेक नहीं! बात धीरे-धीरे चल रही थी। वह एक-दूसरे के कानों में पहुंचाई जा रही थी। जैसे राख के नीचे दबी हुई आग धीरे-धीरे सुलग रही थी। उसने हवा का स्पर्श पाते ही, अपना मुँह खोला और पतंगों के रूप में चारों ओर फैलना आरम्भ कर दिया। हरिजनों में जब यह बात रोष के रूप में परिणत हुई, तो उन्हें लगा कि यह समाज का सेवक बना हुआ महेन्द्र हमारी जाति की लड़की को भ्रष्ट करना चाहता है...भगाना चाहता है! निदान, इस प्रतिरोध का फल यह हुआ कि एक दिन सन्ध्या समय के झुटपुटे में जब महेन्द्र दूसरे गाँव में से आ रहा था, तो उसे कुछ व्यक्तियों ने घेर लिया। उस पर लाठियों का प्रहार किया गया। उन व्यक्तियों ने जब देखा कि महेन्द्र गिर गया, कदाचित मर गया, तो वे भाग खड़े हुए। उसी सन्ध्या में गाँव भर में यह शोर मच गया। महेन्द्र चारपाई पर उठा कर उसके स्थान पर पहुंचाया गया। भाग्य उसका कि मरा नहीं, बच गया। गाँव का अधिकांश समाज उसके घर पर आकर एकत्र हुआ। वह त्राहि-त्राहि करने लगा। पुलिस में रिपोर्ट कर दी गयी। दूसरे दिन थानेदार आ गया। इतने समय में महेन्द्र कुछ स्वस्थ भी हुआ। वह उठ नहीं सका, कराह कर रह गया। थानेदार ने पूछा—'जिन व्यक्तियों ने प्रहार किया, उन्हें जानते तो होंगे ही? बताइये!'

जिस समय थानेदार पूछताछ कर रहा था, अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त चमार की लड़की गंगा भी थी। वह महेन्द्र के सिर पर हाथ रखे बैठी थी। उसी को लक्ष कर, महेन्द्र ने थानेदार से कहा—'मैं उन्हें जानता हूँ, उनके रोष का कारण भी जानता हूँ।

थानेदार ने पूछा—'कौन थे, वे लोग?'

महेन्द्र ने कहा—'यह गंगा,—वह बोला—'यह मेरे पास आती

है, आज भी आ गयी है, तो लोग समझते हैं कि यह किसी गंदी भावना को लिये आती है...मैंने कोई भ्रष्ट बात भी इसके सामने रख दी है !'

'तो कौन-कौन थे, वे व्यक्ति ! क्या चमार ? क्या जमींदार के व्यक्ति ?' थानेदार ने पूछा।

सुनकर, महेन्द्र रूखे भाव से मुसकरा दिया—'भाई, जो कुछ हुआ, भ्रम में हुआ ! किस-किसने किया, यह क्या मुझे बताना शोभनीय होगा ? न, मैं तो समाज का सेवक हूँ, समाज मुझे कोई दण्ड देता है, तो मुझे वह भी स्वीकार करना पड़ेगा । यहां पर मेरा काम समाप्त हो रहा है। कुछ शेष है, वह समाप्त होते ही, मैं यहाँ से विदा हो जाऊँगा। गाँव के अन्य व्यक्तियों के समान जमींदार भी मेरा भाई है । वह भावना और भगवान को मानता है।'

थानेदार अभी नया था। युवक था। वह महेन्द्र के विषय में सुन चुका था। अतएव वह आस्था लिये था। बोला—'आप जिन-जिन व्यक्तियों से आहत हुए हैं, उन्हें दण्ड मिलना चाहिये। पुलिस का काम व्यवस्था रखना है।'

महेन्द्र बोला—'हाँ, मैं भी यही मानता हूँ। परन्तु अपनों के सामने झुकना क्या बुरा है ? इस गाँव के व्यक्ति मेरे सखा हैं, मेरे मददगार हैं। इनके जीवन की पीड़ा और व्यथा से ही तो मैंने इस बड़ी जिन्दगी का अध्ययन किया है। ये सभी मेरे गुरु हैं।'

थानेदार ने साँस भरी और उठ खड़ा हुआ। जब वह चला, तो उसने लोगों को सुनाया—'कुछ व्यक्तियों का पाप गाँव भर का बन गया। महेन्द्रबाबू देवता हैं।'

और यह भी एक अपूर्व अचरज की बात थी, कि थानेदार के

समक्ष ही गंगा की आँखों के गिरे हुए आँसू उसके गुलाबी गालों पर उतर आये, और बह गये। थानेदार ने देखा, तो मौन रहा। परन्तु महेन्द्र ने देखा, तो वह आतुर बन कर बोल पड़ा—'अरी, गंगा!'

गंगा ने झटका-सा खाकर, चारपाई की पट्टी पर अपना सिर रख दिया और फूट कर रोते हुए कहा—'आह, बाबू!'

—और महेन्द्र मौन था,—वह जैसे किसी अज्ञात-लोक में पहुंच गया था!

तैंतीसवाँ अध्याय

जमींदार के व्यक्तियों द्वारा चोट खाकर महेन्द्रकुमार का शरीर तो स्वस्थ हो गया, परन्तु उसका मन जिस प्रकार घातक प्रहार से चुटीला बन गया, वह अपनी पूर्वावस्था में नहीं आ सका। यद्यपि, महेन्द्रकुमार का यह विचार था कि वह उस ग्रामीण-क्षेत्र का कार्य समाप्त करके अपने नगर जायेगा। माता-पिता के पास रहेगा। वहां कुछ शान्ति पायेगा। क्योंकि वह थक गया था। अथक परिश्रम ने उसका शरीर चूर-चूर कर दिया था। प्रतिदिन मीलों पैदल चलना, घंटों भाषण देना, समूह और व्यक्तियों को समझाना, यह एक ऐसा कार्य उसने कन्धों पर ले लिया था कि जिसकी दुरूहता का बोझ बरबस मन और मस्तिष्क पर पड़ता गया। किन्तु जिस प्रकार उसके ऊपर कुछ व्यक्तियों ने आक्रमण किया, वह मानो किसी जहरीले सर्प के समान अपने दांत गड़ा कर भी अन्तर्ध्यान नहीं हुआ। वह आक्रमण तब भी उसे प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था। वह मानो चीखकर पुकार रहा था और महेन्द्र को बता रहा था कि इस अमानुषिकता और वर्बरता का शिकार, तुम्हें तो अब बनना पड़ा, परन्तु यहां एक तो नहीं, पूरा जन-समाज है...गांव का किसान और मजदूर, सदियों से इसी दासता के लौह-आवरण से ढ़का है...बाहरी समाज क्या इसकी चीख सुन पाता है! उस करुण-ध्वनि को बीच में ही दबा दिया जाता है!

महेन्द्रकुमार के मन की उस चोट को अनायास बढ़ाने का भी प्रयत्न किया गया। उस घाव को सूखने नहीं दिया। और यह काम गंगा का था। उस यौवनमयी और पीड़ाओं के बोझ से दबी हुई

गंगा ने दिन और रात के अनेक क्षणों में, महेन्द्र को सुनाया, अपनी आंखों से रोकर कहा कि संसार से अलग, इन गांवों में, राम ही तो रक्षा करता है, हम लोगों की ! हमारी कोई सरकार नहीं... कहीं पुकार नहीं। उसने बताया, गांव का जमींदार ही हमारा अन्नदाता है...वह जब तुम्हें मारने का प्रयत्न कर सकता है, तो हम लोगों को तो जैसे झींगुर मानता है...चुटकी से मसल देने वाला मच्छर...

और सचाई यह थी कि जब-तब गंगा ने महेन्द्र से लौट जाने की बात सुनी, तो उसके मन में जैसे आंधी उठती। अन्तर में जहरीला धुआं घुटता और उसके प्राणों को मार देना चाहता। उसके अन्तर का उद्वेग आंखों में छलछला आता और वह उन्हीं आंखों को महेन्द्र के मुंह पर टिकाकर कहती—बाबू, जाते हो, जाओ ! एक कहानी रह जायगी कि एक आये थे, महेन्द्रबाबू, इन गांवों का सुधार करने, जमींदार के आदमियों ने जब घायल किया, तो लौट गये, जैसे भाग ही गये, इस गांव से ! और वह तभी तड़प कर मानो झुंझलाकर कहती—'पर मैं कहती हूँ, क्या हम आदमी नहीं...हमें तुम्हारी दरकार नहीं !' वह कहने लगती—'न, बाबू ! तुम न जाओ ! यहां आये हो, तो रहो ! जो कुछ लेकर आये हो, वह हमें दो ! इन भूखों को दो ! इन अन्धों को सीधे रास्ते का संकेत दो !' तब गंगा इतना ही कहकर सन्तोष न पाती, वह आगे कहती—महेन्द्रबाबू, शहरों की बात मैं जानती नहीं, सुनती हूँ वहां थाना-कचहरी सभी-कुछ हैं। पर इन गांवों में तो कुछ भी नहीं ! जिसकी लाठी उसकी भैंस की मिसाल ही यहां पुजती है। मैं सोचती हूँ कि क्या यहां के इन्सान की जिन्दगी भी ऊपर उठ सकती है और उसकी कीमत समझी जा सकती है ? वह बताती, एक हिरिया नाम की चमार की लड़की इसलिए कुए में

गिर कर मर गयी थी कि वह जमींदार की इच्छा पूरी नहीं कर सकी...एक बूढ़ा तोता चमार इसलिए मरा कि उसने तहसीलदार के घोड़े को बेगार में घास खोद कर नहीं ला पाई। वह हण्टर और ठोकरों से मारा गया था! वह कहती, इतनी बात तो मेरे सामने की है, इस गांव की है। वैसे जितना और देखने चलोगे, तो हर गांव में कोई-न-कोई बात आये दिन होती रहती है...

इस कथा-वार्ता के फलस्वरूप, गंगा की उस प्रेरणा और प्रार्थना का परिणाम यह हुआ कि महेन्द्र लौट जाने के विचार को त्याग कर और अधिक उत्साह तथा मन के साथ अपने काम में लग गया। उसने निश्चय कर लिया और अनुभव किया कि यहां भी उसका परिवार है, यहां भी अपने हैं। और जब उसे काम करना है, तो एक स्थान पर बैठ कर करे। नियम-बद्ध बनकर करे। निदान, उसके कार्य की रूपरेखा यह थी कि वह ग्राम-वासियों को इस बात के लिए प्रेरित करे और उन्हें बताये कि जब गांव एक है, पृथ्वी के उस छोटे-से भाग पर सभी का अधिकार है, तो विनाशक और संहारक बनना पाप है, अनैतिक कर्म है! समाज और धर्म हमें यह नहीं बताता कि मनुष्य के द्वारा ही आर्थिक शोषण हो, मनुष्य का संहार हो!

महेन्द्रकुमार के लिए हर्ष और सन्तोष की बात यह हुई गंगा उसके संकेत पर अपना जीवन प्रशस्त कर रही थी। पढ़ने लगी थी। उसने हिन्दी की दो-तीन किताबें पढ़ ली थीं। जिसका परिणाम यह हुआ कि वह महेन्द्र की कार्यक्षमता और उसकी भावना को समझने लगी थी। वह अपने घर का काम समाप्त करके महेन्द्र के पास जाती और उसके कार्य में भी हाथ बंटाने का प्रयत्न करती। निश्चय ही, उस सरल गंगा के मन में एक जिज्ञासा जाग उठी थी। वह किसी भी अबोध बालिका के समान महेन्द्र से प्रश्न करती तथा उनके उत्तर मांगती। एक दिन की बात

कि जब वह संध्या समय महेन्द्र के मकान पर आई, तो महेन्द्र को चारपाई पर बुखार से पीड़ित पाकर इतनी विह्वल हुई कि रोने लगी और चारपाई की पट्टी पर अपना सिर रखकर इस प्रकार महेन्द्र को देखने लगी कि जैसे वह सुन्दर पंछी अब नहीं रहेगा... उसके सामने से उड़ जायगा...

किन्तु उसकी भाव-मुद्रा को लक्ष करके महेन्द्र बोला—'बुखार है, गंगा! आज आया है, कल उतर जायगा। मैं आज धूप में अधिक चला। थक भी गया!'

गंगा ने कहा—'तुम मेरा कहा नहीं मानते। रोकती हूँ, तो तब भी धूप से नहीं बचते!'

सुन कर, महेन्द्र मुसकरा दिया—'गंगा, मरना तो महत्व की बात नहीं। आसान है। जीवन पाना कठिन है।'

बात सुनी, तो गंगा तपाक से बोल दी—'और तुमने एक दिन मुझी से कहा था कि मरने का अर्थ ही यह है कि नया जीवन पाये, आदमी। नया रास्ता। नया संसार! 'वह एकाएक ही आतुर बन कर बोली—'तो क्या तुम्हें नया रास्ता बनाना है। मुझे यही लगता है!'

महेन्द्र बोला—'न, गंगा! मुझे मरना क्या अच्छा लगता है!'

गंगा ने पूछा—'पर आदमी मरना क्यों चाहता है?'

इतना सुना, तो महेन्द्र एकाएक गम्भीर बन गया। गंगा की उन भाव भरी आँखों में अपनी दृष्टि डालकर उसने कहा—'गंगा, यह भी एक ऐसी स्थिति है कि जिसे सुगमता से नहीं समझा जा सकता। वैसे इतना जानता हूँ कि व्यक्ति का मस्तिष्क जब अधिक दुर्बल बनता है, विपत्तियों अथवा चिंतन का बोझ पड़ता है, तो हृदय भी मौन हो जाता है। उस समय व्यक्ति मरने की बात सोचता है। सरल और सुप्राप्य रास्ता पकड़ लेता है।'

गंगा ने कहा—'और पीड़ा—चिन्ताओं का बोझ ?'

महेन्द्र ने कहा—'यही तो आज के युग की समस्या है। अधिकार की भावना ने सभी को ग्रस लिया है।' वह बोला—'कल ही पास के गाँव में झगड़ा हुआ है। एक आदमी मर गया। कुछ घायल हो गए। पुलिस ने कुछ आदमियों को गिरफ्तार कर लिया।' इतना कहकर महेन्द्र ने साँस भरी और कहने लगा—'सुना है, दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की ओर से कई सौ रुपया थानेदार की जेब में चला गया !'

गंगा ने पूछा—झगड़ा क्यों हुआ ? क्या खेत पर ? नहर में पानी पर ?

अपने होठों पर विषाक्त-मुसकान लाकर महेन्द्र बोला—'झगड़ा क्यों हुआ, यह बताते भी मुझे लज्जा आती है !'—उसने कहा—'दो मकानों के बीच में जरा-सी जगह पड़ी थी। उसी पर झगड़ा हुआ। एक कहता था, मेरी है और दूसरा अपनी बताता था।'

गंगा ने कहा—बस ! रे, परमात्मा !

महेन्द्र ने कहा—'हाँ, गंगा ! जहाँ इतनी-सी बात पर आदमी को मार देने को बात उठती हो, वहाँ क्या जागरण आ सकता है ! ऐसे स्थान का व्यक्ति क्या समझदार बन सकता है !'

गंगा ने साँस भर कर कहा—'बाबू, धन और जमीन का झगड़ा तो चलता है। सभी जगह देखा जाता है। पहिले भी चलता होगा !'

महेन्द्र ने कहा—'हाँ, पहिले भी चलता था। महाभारत का युद्ध भी इसी कारण हुआ। उस युद्ध में संसार का एक बड़ा भाग मिट गया था !'

गंगा अपनी रुकी हुई साँस छोड़ कर, पैर के अँगूठे से जमीन

फिर रोदने लगी और बोली—'तो बाबू, ऐसा कब रुकेगा! क्या रुकेगा ?'

महेन्द्र ने उत्साहहीन बन कर कहा—'हाँ, यह प्रवाह क्या रुकेगा! 'वह बोला—'मनुष्य तभी शान्त रह सकेगा कि जब समानता हो, आवश्यक पूर्ति के साधन हों।' उसने कहा—'लेकिन ऐसा होना भी सुगम नहीं होगा। विश्व को अपना रूप ही बदल देना होगा। आज हम पूँजीपति की जिस स्वेच्छित मनोवृत्ति को देखते हैं, उसी का अवशेष तो जन-समाज में पाते हैं...निम्नवर्ग को भी वैसा ही स्वार्थी देखते हैं। सामन्तशाही की भूख एक बड़े जमींदार में ही नहीं, मजदूर और किसान मे भी पाते हैं। वह भी अपनी जमीन के छोटे टुकड़े पर जान देता है। उस जमींदार के लिए दूसरे के प्राण लेता है...राम-राम! कितनी विषमता है, इस नर-समाज की कि चन्द दिन का मेहमान बन कर भी, विश्व को अधिक-से-अधिक अपनी मुट्ठी में बाँध लेना चाहता है!' कहते हुए महेन्द्र का स्वर भारी हो गया। बुखार से उसका मुँह तप रहा था। अंतर के क्रोध से वह और गहरा हो गया। उसी अवस्था में उसने कहा—'मार्क्सवाद का सिद्धान्त ही यह है कि धर्म धोखा है, जीर्ण भावना है...अपनी आवश्यकताओं का दास बना हुआ मनुष्य, मानसिक भूख मिटाने के लिये कभी भगवान का आश्रय लेता है और कभी तलवार को चलाता है। इस मनुष्य का दम्भ क्या कभी स्थिर रहता है। धर्म हमें विवेक तो सिखाता है, परन्तु उसकी वास्तविकता को कभी ग्रहण नहीं किया जाता। स्वार्थ के स्वर में मनुष्य का विवेक खो जाता है!'

गंगा ने कहा—'तो ऐसे ही चलेगा, सब-कुछ!' वह बोली—'तुम तो कहते हो, समय बदलेगा। मनुष्य बदलेगा। सतयुग आयेगा। तो ऐसे क्या आयेगा!'

महेन्द्र उठ कर बैठ गया। उसका बुखार उतर चला था। काफी पसीने आ चुके थे और उसका मन हल्का हो गया था। सिरहाने रखा हुआ तकिया उसने घोंटों पर रख लिया और दोनों कोहनियों को उसी पर टिका कर वह गंगा की ओर देखता हुआ बोला—'गंगा, सतयुग तो आयेगा। अशांत और संदिग्ध मानव शान्ति पायेगा। परन्तु समय तो लगेगा। जरूर, यह मनुष्य सभानता की ओर बढ़ेगा। एक बार फिर यह समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब समझ सकेगा।'

'तो कैसे ? किस प्रकार ?' गंगा ने कहा—'आदमी तो मर रहा है, पिसा जा रहा है...यह चिन्ताओं का बोझ...'

क्षण भर रुक कर महेन्द्र बोला—'इस अवस्था के अन्तर में ही तो विद्रोह है, प्रतिकार है,—आदमी की आग है !'

चकित स्वर में गंगा बोली—आग,—भभकती हुई ज्वाला,—ओह !

सुना तो महेन्द्र मुसकरा दिया—'जिस परिवर्तन की बात मैं कहता हूँ, उसके अन्तर्गत ही सब-कुछ है। क्रान्ति का नाम ही यह है ! वह नर-समाज का आपरेशन करती है। शरीर की गन्दगी निकाल देती है।'

देर से, अपने मन में उठती हुई शंका को लेकर गंगा बोली—'पर बाबू, जो गरीब हैं, आज रोटियों के मोहताज हैं, वे धन पायेंगे, शक्ति पायेंगे, तो क्या वे अपने नीचे के व्यक्ति को आज के धनवान की तरह हलाहल नहीं करेंगे—उसे मारेंगे नहीं !' उसने कहा—'मैं कहती हूँ, यह मनोवृत्ति कैसे बदलेगी ! नीयत क्या सुधर जायेगी ? प्रतिस्पर्धा, तब भी क्या प्रतिक्रिया न बन सकेगी ?'

महेन्द्र ने सुना और मुग्ध बन गया—'तुम बड़ी समझदार हो,

गंगा ! ठीक कहती हो !' वह बोला—'लेकिन जिस परिवर्तन पर मेरा लक्ष्य है, उसका उद्देश्य ही यह है कि मानव के मन की उस विशाक्त जड़ को उखाड़ दे कि जिसके साये में देर से यह मानव स्वार्थी और स्वेच्छाचारी बना हुआ है। केवल अपमान ही देखता रहा है।' उसने कहा—'जब तक हम इस वसुन्धरा की सम्पदा को, मिल-बैठ कर बाँटने और अपना कार्य सम्पादित करने तक ही उसका मूल्य न समझेंगे तब तक क्या मानव अपना सन्तुलन कर सकेगा ! संघर्ष करने की भावना का भी तभी लोप होगा । एक शब्द में कहूँ, तो बात यह है कि इस नर-समाज को सहस्रों वर्ष पीछे देखना पड़ेगा। अपने पुरखों का मन्त्र पढ़ना पड़ेगा। आज के युग में, हम जंगलों और पहाड़ों में रहने की तो कल्पना नहीं कर सकते, इस वैज्ञानिक युग की ओर से आँख भी नहीं फेर सकते। परन्तु जिस भौतिकवाद की ओर मनुष्य बढ़ रहा है, शक्ति और धन का आश्रय लेकर नित नये वैभव की कल्पना कर रहा है, उससे, अवश्य ही, हमें मुँह मोड़ना पड़ेगा। हम मानव में भगवान के दर्शन चाहते हैं, तो मानव बन कर ही, उसके निकट पहुँचा जा सकेगा, गंगा !'

लगता था कि गंगा ने महेन्द्र का वह उपदेश सार रूप में भले ही समझा, परन्तु उस 'सार' में कितना भारीपन था, यह कदाचित उसकी समझ में नहीं आ रहा था। इसलिये, उसने हँसती हुई आँखों के साथ महेन्द्र की ओर देखा और उठ कर अपने घर लौट जाने का विचार किया।

चौंतीसवाँ अध्याय

उस रात जब गंगा अपने घर पहुंची तो पुरवे के अन्दर पहुं-चते ही, एक युवक ने उसे टंकोर कर कहा—ओ, तुम हो, गंगा ! वह लाठी जमीन में टेककर गंगा के सामने खड़ा होगया और बोला—'सुनाओ, अब क्या इच्छा है ? उस बेचारे परदेशी बाबू को चारपाई पर डलवा दिया, अब क्या...हां,...और वह जोर से हो-हो करके हँस दिया।

गंगा ने बात सुनी और उसकी ओर देखा। तुरन्त ही कड़क कर कहा—हरखू !

हरखू ने फिर उद्धत हुए व्यक्ति के समान कहा—'और तू सोचती होगी, कि मैं कुछ नहीं जानता। कुछ नहीं समझता। अरी, नादान लड़की !' उसने लाठी उठाई और बोला—'इतना बताता हूँ, ऐसा ही रहा, तो और कुछ भी हो सकेगा !'

कोई और समय होता, तो सचमुच ही, गंगा सहम जाती। परन्तु उसके मस्तिष्क में तो अभी महेन्द्रबाबू की बातें भरी थीं। वह खिज गयी । अज्ञात अवस्था में ही, उसका हाथ उठा और तैश में जोर से तमाचा हरखू के मुँह पर पड़ गया। तमाचा खाते ही हरखू तिलमिलाया, चमका। वह उत्तर देता, कुछ कहता कि तभी गंगा ने आगे पैर बढ़ा कर तेज चाल से अपने घर के अन्दर प्रवेश कर लिया। घर में पहुंचते ही, मा ने कहा—'अरी, गंगा !'

गंगा क्रोध में थी, बोली नहीं। वह धम्म से चारपाई पर गिर गयी।

मा ने कहा—अभी हरखू आया था। वह कुछ कह रहा था।

तपाक से गंगा ने कहा—मा, वह बदमाश है—गुण्डा है !

मा ने कांपते हुए स्वर में कहा—पर बेटी, हम तो गरीब हैं, हमें भगवान को सिर झुकाने के साथ इस आदमी का भी—

चीख कर गंगा बोली—मा, यह आदमी, कुत्ता कहीं का !

बेटी को गुस्से में देख कर, मा मौन रह गयी। जैसे सकपका गयी।

गंगा बोली—'आदमी का वश नहीं चलता कि भगवान बन जाये। आकाश के तारे तोड़ लाये। बड़ा घमण्डी कहीं का !'

मा ने कहा—'लेकिन तू तो सोच कि क्या करना है। क्या ऐसे ही रहना है। अब तो बिरादरी के लोगों ने भी कहना शुरू कर दिया। जमींदार ने खेत के डोले से घास खोदने के लिये भी रोक दिया।'

गंगा झटका-सा खाकर उठ बैठी—'वह यही करेगा, मा ! वह पापी है,—इन्सानियत की झूठन है !'

सूखे दांतों से मा हँस पड़ी—'आज तुझे गुस्सा चढ़ा है !'

गंगा ने कहा—सच, ही गुस्सा चढ़ा है ! कम्बख्त हरखू मुझे भी मिल गया। मैंने तमाचा मार दिया। जानती नहीं क्या, वह भी मुझ पर आंख रखता है। बेईमान कहीं का,...निर्लज्ज !'

मा बोली—'वह हमारी बिरादरी का है !'

सुनकर, गंगा मौन रह गयी। वह मन में कहने लगी एक दिन कहते थे महेन्द्रबाबू, जातियों का विभाजन भी पूंजीवाद ने किया है। नारी को दास भी इसी वर्ग ने बनाया है।

गंगा ने होठों से मुसकराया—'नारी,—दास—हाय ! रे, परमात्मा !

हां, सचमुच उस समय गंगा का स्वर भारी हो गया। आंखें जलने लगीं। छाती धड़कने लगी। चारपाई पर पड़ी हुई वह जैसे

उड़ने लगी। अन्तर का उद्वेग आंखों में आया और गालों पर बह चला। गंगा रो पड़ी। जब उसके रोने का स्वर मा के कानों में पहुंचा, तो तभी वह पास आई और गंगा के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—'अरी, गंगा! मेरी बच्ची!'

गंगा ने आहत स्वर में कहा—मैं दुःखी हूं—बेचैन हूं!

मा ने कहा—तू क्यों है, ऐसी! मेरी पगली बिटिया! उठ! मुंह-हाथ धो। रोटी खा!'

गंगा बोली—'मा, महेन्द्रबाबू के पास जाने से मुझे मत रोकना। तू मुझ पर सन्देह न करना। जिस गंगा में मैं गोता लगाना चाहती हूँ, उसके किनारे से खेंच मत लेना।'

मुसकराकर मा बोली—अच्छा। अच्छा!

प्रसन्न होकर गंगा बोली—हां, बस, मेरी अच्छी मा!

मा ने फिर कहा—'लेकिन गंगा, अब तू सयानी हो गयी है। दूसरे घर जाने वाली है।'

तुनक कर गंगा बोली—'मा, यही तो तेरे दिमाग में उठता है। तुझे परेशान करता है।' और उसने गम्भीर बनकर कहा—'बेटी अच्छी नहीं लगती, तो क्यों नहीं इसका गला घोंट दिया जाता!'

गंगा से इतना सुना, तो मा सांस भर कर रह गयी। वह जैसे अपनी बच्ची की मानसिक पीड़ा भी समझ गयी। निदान, तारों भरे आसमान की ओर देखकर अपने-आप बोली—जो भाग्य में नहीं, सुगमता से प्राप्त नहीं, उसी को पाने चली है, मेरी बच्ची ...यह गंगा!

किन्तु उसी समय गंगा के मन में बात आई, कि हाय! आज वह महेन्द्रबाबू के पास होती। उन्हें बुखार है। बात करती और शान्ति देती। परन्तु जब अपनी अवस्था देखी, गांव की सुनी

हुई बात समझी, तो जैसे वह बलखाकर रह गई। वह तड़प गयी। इसलिए गंगा सोचने लगी कि काश, वह लड़का होती। वह नारी है न, तो पाप का यह बोझ अपने सिर पर न उठाये फिरती। अपनी मां के समान वह परेशान थी। अनेक बार महेन्द्रबाबू से सुन चुकी थी कि दुनिया की यही रीति है, नारी इसी दृष्टि से देखी जाती है कि पर-पुरुष से, अविवाहित अवस्था में किसी जवान से मिल नहीं सकती। उस अवस्था में ही गंगा ने अपनी छाती दाब ली थी। उसकी दृष्टि आसमान की ओर थी। वह कल्पना-लोक पर जाने कहां—की—कहां उड़ी जा रही थी। महेन्द्र उसकी दृष्टि में योगी या सन्यासी नहीं था। परन्तु वह उसके तईं कितना पूजक, श्रद्धालु और परम बन गया कि सोच नहीं पाई गंगा कि इस महेन्द्र नाम के आदमी में भी कहीं ऐसा छिद्र है कि जिसमें से उसकी दुर्बल आत्मा का कोना दीख पड़ता हो। उसकी इच्छाओं का आभास मिलता हो, और यों अकेले में, दिन में, और रात में, गंगा वहां बैठी है, महेन्द्र की बात सुनती रही है। उसे याद आया कि एक बार महेन्द्र ने कहा था, आज के समान पहिले मनुष्य इतना ईर्षालु और सन्दिग्ध नहीं था। जिस प्रकार आज एक नारी, एक व्यक्ति को पति मानती है, तो पहिले समय में प्रायः कई व्यक्तियों के बीच में एक ही नारी को पत्नी मान लिया जाता था...गंगा कांप गयी! देर हुई कि मा अपनी चारपाई पर पड़ गयी। उसी समय गंगा के सामने बात आई कि पिछले वर्ष ही, सन्देह में, गांव के पण्डित ने अपनी पत्नी का प्राण ले लिया था। कहीं वह कोठे पर खड़ी थी। उसका मुंह किसी व्यक्ति की ओर था। वह हंस पड़ी थी और पड़ौसी के कहने पर, उस जल्लाद पण्डित ने घर में आते ही, अपने कठोर हाथों से उस दुर्बल नारी का गला घोंट कर मार दिया था। गंगा के मन में आया कि, हाय!

बेचारी इतनी हीन और दुर्बल है, नारी ! इतनी पराश्रित ! ऐसी याचक ! वह कहने लगी कि पण्डित को पाऊं, तो दांतों से चबा जाऊं ! और देखती गंगा, कि वह भी शिकार का एक टुकड़ा है, जैसे तालाब की मछली, इस गांव में जाने कितनों ने इस मछली को फंसाने के लिए जाल लगाया है...री, गंगा !

निःसन्देह, गंगा के मन में अतिशय क्षोभ उतर आया। उसे अपना समस्त जीवन ही करुण और वेदना से पूरित दिखायी दिया। उसने यह भी देखा कि ठाकुर की स्त्री कितनी सुन्दर, भली थी बेचारी ! परन्तु वह इसी अपराध पर कि उसकी कोख से बच्चा नहीं हुआ, कम्बख्त ठाकुर ने दूसरा विवाह कर लिया। उस सुन्दर नारी को झूठा टुकड़ा समझ कर ही फेंक दिया...घर में से निकाल दी, बेचारी ! पगली बन गयी। दर-दर भटकती हुई, अन्त में बीच रास्ते पर पड़ी हुई मर गयी...

गंगा बार-बार करवट बदल रही थी, वह बेचैन थी। मन की अवस्था अत्यन्त दयनीय बन गयी थी। नारी की अवस्था के जितने विविध चित्र उसकी आंखों के सामने आ सके थे, उन्हीं में, गांव के लाला की पुत्री की वह अवस्था भी थी कि पैसे की कमी के कारण लाला की लड़की इसलिए कुएं में डूब मरी कि पिता निर्धन था, वह किसी लड़के वाले को दहेज में दस-बीस हजार रुपये का सामान नहीं दे सकता था। और लड़की यौवन की ड्योढ़ी से भी उतर चली थी। वह पिता-माता के लिए लांछना, श्राप और आपत्ति की वस्तु बन रही थी। सोचा गंगा ने हाय ! वह चर्चा भी महीनों रही। दूर-दूर तक फैल गयी।

उसी समय, गंगा ने अपनी बन्द आंखें खोल दीं और बोली—ठीक तो कहते हैं महेन्द्रबाबू, जब तक पैसा है,—चांदी-सोने का व्यापार है, आदमी उठ नहीं सकता ! समान नहीं बन सकता।

मनुष्यता पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। इस समाज में नारी का सम्मान भी तभी होगा कि जब पैसे के तराजू पर उसे नहीं तोला जायगा! प्रेमिका के अतिरिक्त नारी को मा, बहिन भी तभी समझा जायगा।

तदन्तर ही गंगा चौंक गयी। वह उठकर बैठ गयी। उसका पिता घर में आया और बोला—'महेन्द्रबाबू की तबीयत खराब है। लोगों ने उन्हें शहर लौट जाने को कहा है।'

गंगा ने पूछा—'चाचा, उन्हें बुखार है? क्या और कुछ... चाचा!'

चाचा ने कहा—'बेटी, मैं बैठा था, तो उल्टी हुई। उन्हें थकान भी अधिक आगई।'

गंगा उठ खड़ी हुई और बोली—'तो मैं जाऊँगी, चाचा!'

चकित भाव में मा बोली—'इस रात में...अकेली...'

किन्तु गंगा ने चाचा की ओर देखा—चाचा!

चाचा ने कहा—'उन्हें तकलीफ तो है। तेरा वहाँ जाना भी ठीक है।'

और मा कुछ कहती, गंगा के चाचा से कुछ कहती कि तभी गंगा तीर की तरह घर से बाहर हो गई। वह गाँव के अन्धेरे गलिहारे में अपना घाघरा हाथ से पकड़े हुए ऐसे जा रही थी कि जैसे भाग रही हो। जब महेन्द्रकुमार के पास पहुंची, तो वहाँ और भी आदमी थे। गंगा सीधी महेन्द्र की चारपाई के पास जाकर खड़ी हो गई। वहीं बैठ कर उसने महेन्द्र के सिर पर हाथ रखा और कहा—बाबू!

महेन्द्र ने कहा—हूँ!

'सिर दबा दूँ। तेल मल दूँ।'

महेन्द्र ने कहा—'तू अब भी आई है, गंगा ! तू लौट जा !'

गंगा ने सुना और आदमियों की ओर देखा। एक वृद्ध ने कहा—अरी हां, गंगा ! अब रात है, सुबह आना।'

गंगा बोली—'मैं इसे पाप नहीं मानती, बाबा !'

बाबा ने कहा—'दुनिया तो मानती है। वह बोले—'समझती है महेन्द्र बाबू अकेले हैं। अरी, गांव भर के हैं पगली !'

इतना सुना और सिर झुकाये, गंगा ने यह स्थान छोड़ दिया। उसने फिर अपने घर का रास्ता पकड़ लिया।

जब वह घर पहुंची तो चाचा ने कहा—'जमींदार अभी ताक में बैठा है। मैंने सुना है कि वह—'

बीच में बात रोक कर गंगा ने कहा—'चाचा, भगवान सब देखता है !'

चाचा ने कहा—'पर यह आदमी तो भगवान के भी कान काटता है। विषैला साँप बना है।' वह बोला—'महेन्द्रबाबू इस गाँव में क्या आयें जैसे भावना आगये। सभी गाँवों में इन्हीं की चर्चा है। किसान और मजदूर खुशी मनाते हैं और जमींदार अपने रास्ते का कांटा समझते हैं।'

बात सुन कर, गंगा ने अपना मत नहीं दिया। वह अपनी चारपाई पर पड़ गयी। जब प्रातः हुआ, एक और नया सबेरा हुआ, तो आँख खोलते ही, चाचा ने देखा कि गंगा वहां नहीं थी। वह उठ कर गाँव में चला। महेन्द्र के स्थान पर पहुचा तो गंगा महेन्द्र की चारपाई की पट्टी से सिर लगाये सो रही थी। महेन्द्र सो रहा था। इतना देखा, तो वह वृद्ध चमार मानो अपने-आप में ही खो गया। वह लौट आया। घर जाते ही, उसने गंगा की मां से कहा—'एक बात कहता हूँ, मानना, आज से गंगा के विवाह की बात उसके सामने न रखना। अब उससे कुछ न कहना।'

गंगा की मा ने बात का मर्म नहीं समझा। परन्तु न अपना मत दिया और न बात का खुलासा ही सुनना पसन्द किया।

दूसरे दिन महेन्द्र स्वस्थ हो गया। बुखार उतर गया। ग्रामवासियों ने हर्ष मनाया। उस दिन एक अजीब ही दृश्य था कि लोग महेन्द्र के द्वार पर उछले, कूदें और गाने लगे, तो गंगा ने जाने किस भावना से प्रेरित बन कर नाचना आरम्भ कर दिया। वह प्रथम दिन था कि जब गंगा ने सामाजिक रूप से जैसे इस बात को प्रगट कर दिया कि यह महेन्द्र है, तो वह है; नहीं तो उसका जीवन मिट्टी अथवा पत्थर का टुकड़ा ही दीखता है। उस भाव भरे दृश्य का परिणाम लोगों को जहां असंगत लगा, संगत भी लगा। गंगा का जीवन एक घरकी सीमा को लांघ कर सामूहिक बन गया, उस आत्मोल्लास के प्रदर्शन के बाद जब गंगा बैठी, तो महेन्द्र ने उसे लक्ष करके कहा, दिखता है, मुझ-से यह गांव नहीं छूट सकेगा...तेरा यह पागल प्रदर्शन भी मेरे लिए उपहास और चर्चा का विषय बन जायगा।

इतना सुना, तो गंगा के मन पर जैसे आघात पहुंचा। तुरन्त ही उसकी आंखें भर आईं। वे गालों पर ढुलक आईं। किन्तु अवसर की बात यह हुई कि वह भवनावादी महेन्द्र भी गंगा के उन आंसुओं को देखकर स्वयं ही द्रवीभूत बन गया। वह रो पड़ा। उसी अवस्था में बोला—'दुखियों की इस नगरी में बसा हुआ मैं, सभी ओर अपने जन पाता हूं, मैं अपने ही एक बड़े कुटुम्ब में आ बसा हूं, गंगा! उसने कहा—'मैं गरीबी का नग्न रूप यहीं देखता हूं। उस दिन स्कूल में गया था। जो बच्चे घर के थे, अच्छा खाना लाये, वे सबको दिखाकर खा रहे थे। हँस रहे थे। किन्तु गरीब और निर्धन परिवारों के बच्चे अपनी रूखी और सूखी रोटियां छिपा कर खा रहे थे। उन बच्चों के मुंह भी

सूखे थे। उसने अतिशय विह्वल बनकर, कातर हुए स्वर में कहा—'गंगा, सच, बड़ी पीड़ा है। दिखता है इस मानव का रूप ही बदल गया है। सोच नहीं पाता कि किस प्रकार इसका सुधार हो सकता है!'

उसी प्रकार आंसू बहाती हुई गंगा बोली—'जब आवाज उठी है, तो जरूर कोई सुनेगा। तुम्हारा ऊंचा स्वर इन पथरीली दीवारों से जरूर टकरायेगा!'

महेन्द्र ने कहा—'मैं समझ नहीं पाता कि जब इतना दुराव है' इतना छिपाव है तो किस भारी नींव पर दुनिया का बोझ टिका है!'

गंगा बोली–'भगवान की दया है। कुछ सन्तों की कृपा है। उसने कहा–'एक दिन कहते थे न तुम, जिस देश में राम, कृष्ण, बुद्ध, गाँधी सरीखे महामानव अवतरित हुए, वह क्या मर सकता है। आज मैं भी कहती हूँ, यह देश नहीं मरेगा। स्वार्थियों का अन्त होकर रहेगा। उनका मुँह काला होगा। गाँधी का त्याग और बलिदान क्या मर जायगा!'

उसी समय गंगा ठिठक गयी। उसने देखा कि गाँव का जमींदार कुछ व्यक्तियों के साथ वहाँ आया। वह आते ही, गंगा और महेन्द्र को रोता पाकर किंचित जैसे चकित रह गया। तदनंतर बोला—'बाबू, तुम्हें बुखार आया! मैंने तो अभी सुना तो दौड़ आया। बोलो, शहर से डाक्टर बुलाऊँ? अन्य कोई सेवा?'

महेन्द्र ने कहा—'मैं अब ठीक हूँ। आपका धन्यवाद करता हूँ।'

जमींदार बोला—'मौसम खराब है। तुम्हारे लिए स्वास्थ्य का ध्यान रखना भी आवश्यक है।' और उसने जैसे उपहास के स्वर में कहा—'यह चमार की लड़की गंगा तो तुम्हारी चेली बन गयी है। अच्छा है, तुम्हारे सहयोग से इसका भी उद्धार हो जायेगा।'

उसी समय एक व्यक्ति ने कहा—'आज रात भर यहाँ रही। महेन्द्रबाबू के लिये बड़ी ममतामयी साबित हुई।'

इतना सुनते ही, गंगा ने मुँह उठा कर देखा कि बात कहने वाला और कोई नहीं, उसके रूप का लोभी उद्धत हरखू हाथ में लाठी लिये बात कह कर अपनी मूँछों पर बल दे रहा था।

जमींदार ने कहा—'अच्छा है, बुरा क्या है। आदमी ही आदमी के काम आता है।' वह बोला—'लेकिन मैंने महेन्द्रबाबू और गंगा को एक साथ रोता भी पा लिया। मैं समझ गया, दो शरीर और एक प्राण का किस्सा साफ ही दिख गया...जैसे मन ने मन की बात को सुन लिया, एक ने दूसरे का दर्द पहचान लिया...

तदुपरान्त जमींदार अपने साथियों सहित वहाँ से चला गया।



पैंतीसवाँ अध्याय

कई मास बाद तक, अपने मन और मस्तिष्क से निरन्तर संघर्ष करने के बाद जेबुन्निसा इस परिणाम पर पहुंची कि वह महेन्द्रबाबू के साथ विवाह नहीं कर सकेगी। वह देर तक इस विषय का भी अध्ययन करती रही कि विवाह क्यों है? क्या अर्थ है? अनेक तर्क करने के बाद भी जेबुन्निसा यह नहीं स्वीकार कर सकी कि विवाह केवल सांस्कृतिक और सामाजिक रीति है। वह कहती कि विवाह एक मनोरंजन है,— मन की सन्तुष्टि! अतएव, इतना भी जेबुन ने अपने अन्तर में पाया कि मनोरंजन करने की साध उसकी भी है। वह निश्चय ही, ऐसी कल्पना करती कि जब उसने सुन्दर और भावनामयी जिन्दगी पाई है, तो उस पर राख क्यों आरोपित करे! इस सुन्दर जीवन को मलिन क्यों बनाये! यह तो पाप है। इच्छाओं का दमन करना शरीर और मन की स्वाभाविक गति को रोक देना है। ऐसा कठिन योग उसके लिए संगत कहां है!

किन्तु जेबुन्निसा के मन की यह भी एक कठिनाई थी कि कई मास बीत जाने पर भी, महेन्द्र उससे आकर नहीं मिला। पिछले दिनों, जब वह रानी से मिली, तो केवल उसका तात्पर्य ही यह था कि महेन्द्र के समाचार पाये। परन्तु वहां जाकर उसे ज्ञात हुआ महेन्द्र आया और लौट गया। कदाचित यह प्रथम अवसर था कि जब महेन्द्र दूर से आकर भी जेबुन से बिना मिले लौट गया। निःसन्देह, जेबुन्निसा ने इतनी सी बात को कम हल्की नहीं स्वीकार किया। उसने इतनी-सी बात में अपना अपमान भी मान लिया। इसका परिणाम यह हुआ जेबुन का मन महेन्द्र की ओर से फिर चला

बैरिस्टर तालाब के किनारे बैठे उस पंछी के समान जेबुन पर निरन्तर दृष्टि लगा रहा था। उसने अवसर पाया तो तुरन्त आगे बढ़ चला! वह जेबुन के पास तक आ गया। जातीयता की दृष्टि से वे दोनों समीप थे, सम्पन्नता के नाते से भी पास थे। बैरिस्टर का मुसलिम समाज में मान था। वह महेन्द्र से अधिक सुन्दर, शिक्षित और व्यहारिक भी था।

परन्तु इसके अनन्तर भी, जेबुन्निसा के मन में जो एक गहरी रेखा खिंच गयी थी और वही बीते समय की याद बार-बार दिलाती थी। वह अपने-आप में इतनी स्पन्दित होती थी कि बरबस, चेष्टा करके भी, पिछली याद को नहीं भुला सकी। साथ ही, अपने यौवन और सुन्दर काया की मांग से भी अपना मुंह नहीं फेर सकी। कितनी चांदनी रातें, कितने एकान्त और सुवासित क्षण, उसने महेन्द्र के साथ बैठ कर बिताये। उन क्षणों में समर्पण के जितने भाव वह व्यक्त कर सकी, वह क्या भुला देने की बात थी! निश्चय ही, बीते समय की वह अवस्था जेबुन्निसा के मन में, अवसर पाते ही, बिजली के समान चमकती और उसे चौंका जाती।

फलस्वरूप, जेबुन्निसा की मनःस्थिति शनैः-शनैः विकृत हो रही थी। वह ऐसीबन चली कि जब भी देर तक अपने भविष्य पर विचार करती जीवन-साथी चुनने की बात मन में उठती हुई पाती, तो वह दो नावों पर पैर रखती हुई, इस प्रकार लड़खड़ाती कि लगती, अब गिरी, अब गयी,—गहन जल के बीच! सचमुच ही, जेबुन्निसा की यह बड़ी कठिनाई थी कि वह महेन्द्र को अपने उस सुनहरे जीवन में एकाएक नहीं भूल सकती। अम्मा, सम्बन्धी, समाज, और जाति अवश्य ही उसे अपनी ओर खींच रहे थे, वे बार-बार कह रहे थे, अपनी सीमा को तोड़ना गुनाह है...मुहम्मद रसूल के उपदेशों को भूलना अपनी हत्या करना है। किन्तु इतना सुन-

कर भी, जेबुन सोचती,—और स्वयं मैंने महेन्द्रबाबू को जितने वचन दिये, उनका क्या होना है ! वे क्या व्यर्थ ही गये ! मैंने झूठ ही कहे ! एक व्यक्ति को ठगने के लिये कहे ! परन्तु हाय ! जेबुन इस बात पर भी अपना निर्णय नहीं दे सकी। वह नहीं समझ सकी कि उसके अन्तराल में डोलता हुआ यौवन का भार आज की तरह कल भी, इसी प्रकार नहीं बना रहेगा। एक दिन यह यौवन चला जायगा। बुढ़ापा आयेगा। और जो सबसे अधिक चिन्ता और आत्मघात की बात वह सोचती, वह यह कि जिन भावनाओं का सामंजस्य अपने लेखों, भाषणों और तर्कों द्वारा संबोधित किया, वह क्या निरर्थक ही गया। वह देखती कि अन्य युवतियों के समान वह वेगवती नहीं है, भारी नहीं है, अज्ञान और मूर्ख भी नहीं। वह अपने को समझने की क्षमता रखती है। विश्व को अपनी आँखों से देख सकती है। और जिन अनेक बातों में आज वह अपने को पारंगत हुआ पाती है, अथवा जिस पथ से वह उन्हें पा सकी है, अब उस पथ को,... उस पथ की साधना को भूल जाना क्या उसके लिए लज्जा या क्षोभ का विषय नहीं है !

अपने हृदय की इस अवस्था में डूबी रह कर ही, एकाएक, एक दिन जेबुन को मा की मृत्यु देख कर आघात पहुंचा। उस दिन अवश्य ही, उसने अपने को अकेली और एकाकी पाया। उसकी अम्मा की मृत्यु का समाचार पाकर जिस प्रकार नगर के अन्य व्यक्ति आये, तो सहानुभूति प्रदर्शित करने रानी और अभयबाबू भी आये। रानी को देख कर, सचमुच ही, जेबुन रो पड़ी। वह इतनी कातर हुई कि बरबस, रानी की आँखें भी भर आईं। जब कुछ देर बैठ कर अभयबाबू चलने के लिये प्रस्तुत हुए तो जेबुन ने कहा—'न, न, अभी बैठिये ! देखते तो हैं आप, अब मैं अकेली हूँ,—इस भरी दुनिया में एकाकी बन गयी हूँ !'

अवसर की बात कि उस समय जेबुन का पुराना परिचित मित्र बैरिस्टर भी वहां बैठा था। वह पहिले से आया हुआ था। जब जेबुन ने अपने को एकाकी होने की बात कही, तो उसने तुरन्त ही कहा—'यहां सभी अकेले हैं.. ये नाते-रिश्ते तो ऊपरी हैं, दुनियादारी में बाँधते हैं, अन्यथा यहाँ तो सभी अकेले बनकर आये हैं और चले जाते हैं।'

जेबुन ने बात सुन ली, किन्तु उलट कर अपनी बात नहीं कही। वह रानी से बोली—'दिखता है, तुम भी इस दुनियादारी के तेज प्रवाह में बह चली हो! भला बताओ, कभी इस ओर आती हो!'

रानी बोली—'अब थक गई हूँ। अब शान्त रहना ही सुख-कर मानती हूँ। कहीं आना-जाना भी कम कर चुकी हूँ।'

इतना सुनते ही, बैरिस्टर ने चुटकी ली—'देश स्वतन्त्र हुआ है, तो जिम्मेदारियां भी बढ़ गयी हैं। आप लोगों के कन्धों पर ही यह बोझ की गठरी रखी गयी है!'

बैरिस्टर ने जिस अभिप्राय से बात कही, निःसन्देह रानी, अथवा अभयबाबू ने नहीं समझी, किन्तु जेबुन समझ गयी। वह तुरन्त ही बोली—'भाभी अथवा भैया के कन्धों पर कोई बोझ हो, या न हो, परन्तु यह निश्चित है, उन लोगों से अधिक जिम्मेदारियां हैं कि जिन्होंने कभी कोई बात महसूस ही न की! जीवन में आराम पाया। रुपये से खेल खेलना पाया!'

सुनते ही बैरिस्टर हँस दिया—'और आज वही खेल उन जुम्मेदार व्यक्तियों ने खेलना शुरू कर दिया है।' वह बोला—'सच ही कहा है किसी ने, रुपया ऐसा चुम्बक है कि हर कोई इससे लग कर खिंच आता है। और जब रुपया आता है, तो भोग और इच्छाओं का भार भी अपने-आप फैलता है। शराब का

बहिष्कार भी किया जाता है, अन्न बचाने का नाटक प्रदर्शित होता है, परन्तु बड़ी-बड़ी दावतें, उनमें शराब.. हो, हो,...ही, ही...'

जेबुन्निसा चिढ़ गयी—'आप गलत सोचते हैं। वह बोली—'देश में एक ऐसा भी गिरोह है कि जो देश-सेवकों को बदनाम करना चाहता है। जो कल जेलों में थे, चने खाते थे, आज उन्हीं को शासन की कुर्सी पर बैठे देख कर वह समाज जलता और कुढ़ता है। बताइये, यह आत्म-हीनता नहीं तो और क्या है! आप सदियों से गुलाम रहे हैं न; तो दासता का प्रभाव मन और मस्तिष्क पर बुरी तरह पड़ चुका है। आप दूसरों की लातें खा लेंगे, परन्तु अपने व्यक्तियों की टेढ़ी आँख से देखना भी आपने स्वीकार नहीं किया है।' उसने कहा—'गुलामी की दौड़ में, जिस समाज ने देश के साथ बगावत की, अपना स्वार्थ सिद्ध किया, विदेशियों की चाटुकारी की, आज वही लोग तो विद्रोह की आग फैला रहे हैं वे शासकों को दावत देते हैं, उनकी तारीफ करते है और अवसर पाते ही, जन-समाज में उन शासकों को बदनाम करने का प्रयत्न करते हैं...वे...'

बरबस, जेबुन्निसा का मुँह लाल बन गया। उसे सचमुच ही क्रोध आगया। किन्तु अपनी आँखों और होठों से मुसकराकर बैरिस्टर बोला—'इतना मानकर भी, मैं यह देखता हूँ कि किसान, मजदूरों का पार्ट लेने वाले आज न किसान हैं, न मजदूर हैं। वे बंगलों में रहते हैं, मोटरों में घूमते हैं। उन्हीं के पास जब सम्मान के साथ लाखों रुपया जमा मिलता है, तो दिमाग के तन्तु अपने-आप खड़े हो जाते हैं...बात तो साफ है, वह रुपया सरमायेदारों से पाते हैं...और उस दल का काम ही यह है, पैसा मुँह पर मारता है और कहने वाले की जबान बन्द कर देता है...बड़ा चालाक!'

इस बात को सुनते ही, जेबुन्निसा ने समझा कि उसके यहाँ आये अभ्यागत रूप में अभयबाबू और रानी का बैरिस्टर अपमान कर रहा है। अतएव, उसने बात को सत्य मानकर भी पर्दा डाला–'आपका मत है कि वे भूखे मरें, पैदल गले फिरें।' भाउसने कहा–शासन चलाने के लिये कुछ प्रदर्शन भी किया जाता है। लौकिक रिवाज और शिष्टाचार भी निभाया जाता है। नीयत की बात और है, रहन-सहन और जिन्दगी को देखने का ढंग क्या बदला जाता है...वैसे अवसर पाकर सभी का स्तर ऊँचा उठ जाता है।

मैं कहती हूँ, इससे भी बुरा क्या है। अजीब बात है, जो कल चने खाता था, जेल में गया था, तो आज भी, आपकी आँखों ने उसे विभिन्न देखना पसन्द किया है!'

बैरिस्टर हँस दिया—'मैं इतना नहीं कहूँगा। परन्तु सचाई यह है, जिस दुःख से हम दुःखी नहीं, उसके समीप नहीं तो उसके प्रति त्याग और समर्पण का भाव प्रदर्शित करना, मुझे खेल सदृश लगता है। यही तमाशा है। हम समाज से जिस चरित्र-निर्माण की बात कहते हैं, उसके लिये हमको स्वयं ही प्रमाण बनना पड़ता है। महात्मा गांधी को देश ने इसीलिये सम्मान दिया। उनकी वाणी अपनी वाणी थी,—आत्मा की आवाज थी! उस महा-मानव ने जो प्रकाश हमें दिया, उसे प्राप्त करने के लिये वह अपने जीवन से लड़ा था,—त्याग किया था।'

गम्भीर स्वर में रानी बोली—'मैं इस बात से सहमत हूँ। हमारे नेता लोग यदि चरित्र हीन हैं, सामन्तवादी हैं, तो वह देश का निर्माण न कर सकेंगे। किसान और मजदूर को न उठा सकेंगे।'

तदन्तर ही, बैरिस्टर ने गम्भीर बन कर कहा—'बहिनजी, मैं जानता हूँ कि मैंने कुछ नहीं किया। घर वालों का रुपया पाकर

आकाश में ही उड़ता रहा। परन्तु समाज और देश के जिन व्यक्तियों ने त्याग और तपस्या की, उन्हें क्या भुलाया जा सकता है। आप और श्रीमान अभयबाबू को यह नगर इसी दृष्टि से देखता है। मुझे पता है कि आप दोनों ने कम परिश्रम नहीं किया। आपने अपने नगर का स्तर ऊँचा उठाया, यहां के समाज को बल दिया।' वह बोला—'परन्तु अब क्या होगा, यह चिन्ता है। इतिहास बदल रहा है। जो दौड़ रहे थे, समाज को आगे ले जा रहे थे, वे रुक गये हैं। जैसे थक गये हैं। वे आराम की साँस ले रहे हैं। झोंपड़ियों की कल्पना छोड़ कर, वे विशाल बंगलों में हवा खा रहे हैं।' एकाएक चिन्तित और अधीर स्वर में बैरिस्टर ने फिर कहा—'यही एक समस्या है! देश की प्रमुख चिन्ता है। जब देश का चरित्र नहीं रहेगा, नेता नहीं रहेगा, तो क्या देश उठेगा! इस पाई हुई स्वतन्त्रता को कैसे जीवित रखा जा सकेगा!'

अभयबाबू ने साँस भर कर कहा—'विश्वास कीजिये, देश उठेगा। आगे बढ़ेगा। मौजूदा स्थिति का रूप भी स्थायी न रह सकेगा!'

बैरिस्टर ने कहा—'लेकिन आज जिन देश सेवकों की टोलियां सरकारी कार्यालय में जाकर ऊँचे-ऊँचे सौदे करती हैं, रुपया कमाती हैं, मैं देखता हूँ कि यह भी देश की लाज पर एक बड़ा धब्बा है। मुझे लगता है कि मुल्क का मुँह काला किया जा रहा है। शर्म तो मुझे तब आती है कि जब उन्हीं को पागल की तरह देश की जड़ खोदते पाता हूँ कि जिन्होंने देश के फूटे भाग्य को अपने लहू और गोश्त से बनाया था...भारतमाता की मांग में रोली की जगह अपना खून भर दिया था...'

रानी ने साँस भर कर कहा—'यही देश का दुर्भाग्य है! हमारा पतन सन्निकट है!'

अभयबाबू बोले—'स्वार्थ बोलता है। सभी पर सवार है।'

बैरिस्टर ने कहा—'जो स्वार्थ को कोसते थे, पूँजीवाद को बदनाम करते थे, उन्हीं के द्वारा उसका पृष्ठ पोषण करते देख, मेरा सिर लज्जा से झुकता है। लगता है कि जैसे छाती में कोई घूँसा मारता है। जिन्होंने सदा साम्प्रदायिक भावनाओं को नफरत की निगाह से देखा, उन्हीं के द्वारा आज उसे उकसाया जा रहा है। बैरिस्टर कहने लगा—'अभयबाबू, सच ही मानिये, मुसलिम नेताओं ने देश का बँटवारा तो कर लिया, परन्तु मुसलिम-समाज के रास्ते में किस प्रकार के कांटे बो दिये, आगे चलने वाला समाज उनसे बच नहीं सकेगा। मुझे लगता है कि मुसलमान को कहीं स्थान नहीं रहा.. पाकिस्तान में नहीं...हिन्दुस्तान में भी नहीं रहा...

अभयबाबू ने कहा—'यह अँग्रेजी राजनीति का खेल था। दुर्भाग्य देश का कि इसे दोनों सम्प्रदायों ने स्वीकार कर लिया।' वह बोले—'लेकिन यह स्थिति भी अधिक दिन नहीं चलेगी। दोनों जातियों को एक दिन समीप बैठने की आवश्यकता अनुभव होगी।'

रानी बोली—'अनुभव तो आज भी यही किया जाता है। मुसलमान और हिन्दू परस्पराश्रित हैं। भाई हैं। एक ही पृथ्वी की मिट्टी से दोनों बने हैं।

उसी समय जेबुन ने कहा—'अजीब बात है कि देश एक, हवा एक, और फिर भी जातियों के नाम पर यहाँ का इन्सान संघर्ष करता है।'

अभयबाबू ने कहा—'हमारा यही पाप है। इसीसे दूसरों ने लाभ उठाया है।'

बैरिस्टर ने कहा—'अवस्था खराब है,—खुदा मालिक है!'

रानी बोली—'परेशान न बनिये, देश उठेगा। जाति उठेगी। मुझे भरोसा है।'

बैरिस्टर ने कहा—'कल क्या हो, यह तो नहीं जानता, परन्तु आज तो देश जहन्नुम में जा रहा है। इंसान भूखा और नंगा है।'

अभयबाबू ने कहा—'परिवर्तन हुआ है। जो गये, उन्होंने यहाँ छोड़ा क्या,—देश को नंगा बना दिया!'

उसी समय रानी उठी, अभयबाबू उठे।

बैरिस्टर ने खड़े होकर हाथ मिलाया—'आपसे आज मिलकर बड़ी खुशी हुई। आप नगर की शोभा हैं।'

जेबुन ने रानी को लक्ष्य करके कहा—'फिर भी आना, भाभी!'

रानी ने कहा—'तू आना।'

और तब, बरबस ही, जेबुन के मन में आया कि वह महेन्द्र-बाबू के विषय में पूछे, परन्तु न जाने क्या सोच कर, उसने मुँह में आई हुई अपनी बात को रोक लिया।

छत्तीसवाँ अध्याय

जिस रहस्यपूर्ण और नाटकीय ढंग से अभयबाबू का जीवन-क्रम चला, जिन्दगी की गाड़ी का पहिया कभी धीरे घूमा, कभी तेज चला, उसके लिए मानो स्वयं अभयबाबू का उत्तरदायित्व तनिक भी नहीं था। जिन्दगी का जितना सफर उन्होंने पार कर लिया, पीछे फिर कर, जब भी उसे देखते, तो उन्हें लगता कि सचमुच, एक भयानक और करुण स्वप्न ही उन्होंने देखा, जो अब पीछे छूट गया। कैसा कठोर पथ था, उनका! मानो निरा ऊजड़ और विषम! परन्तु उस पथ को पार करते समय उन्हें जैसा चौरस और साफ मार्ग दिखायी दिया, ऐसा क्या हर किसी को उपलब्ध था! वह एक दिन गुजारे लायक पैसे पाते थे। दिन भर ज.-तोड़ कर मशक्कत करते थे। परन्तु आज पैसा है कि जैसे पानी के तेज प्रवाह की तरह उनकी ओर बहता हुआ आता है। एक दिन वह नगर में अपरिचित और तुच्छ व्यक्ति के समान, विशाल नगरी के एक कोने में आ पड़े थे, परन्तु आज वह सभी के लिए परिचित हैं, नगर के नेता हैं। सम्माननीय हैं।

किन्तु धन और यश पाकर भी, मानो अभयबाबू को चैन नहीं मिला। आत्मा में शान्ति नहीं। जैसे किसी चोर के समान मन में कम्पन हो,—पुलिस द्वारा पकड़े जाने का भय हो। प्रश्न होता कि ऐसा क्यों? स्पष्टतः उनके सामने भय का कोई कारण तो दृष्टि-गोचर होता नहीं था। परन्तु वास्तविकता यह थी कि उनके अन्तर में ही प्रतिष्ठापित चौकीदार मानो बार-बार संकेत करता और खबरदार रहने के लिए बाध्य करता रहता। लेकिन इस

'खबरदारी' और 'जागते रहो' के साथ वह चौकीदार कुछ और भी कहता। वह मानो बताना चाहता कि ऐ इन्सान ! तू जल गया है...पथ-भ्रष्ठ हो गया है...

और यह भी सचाई की बात थी कि जब रानी के समक्ष, अपने निकट के सम्बन्धी महेन्द्रबाबू ने अभयबाबू को टंकोर कर उनके लिए पथ-भ्रष्टता की बात कही, तो वह मानो उनके अन्तर को कील गयी। वह बात किसी हथोड़े के सदृश्य खुट-खुट करती हुई अभय-बाबू को व्यथित भी बना गयी। किन्तु महेन्द्र की बात का समर्थन स्वयं रानी भी कर सकी, उसकी पुनरावृत्ति जेबुन्निसा के घर पर भी हो सकी, तो उस अकल्पनीय तेज हवा का झोंका खाकर अभयबाबू का मन स्वस्थ होने की अपेक्षा विचलित ही बन गया। उन्हें लगा कि जैसे उनके अन्तर के चौकीदार का संकेत बाहर से भी मिल गया। वह संकेत महेन्द्रबाबू ने दिया, रानी ने दिया। अन्य मित्रों ने भी दे दिया।

इस विषम मनःस्थिति का परिणाम यह हुआ कि अभयबाबू सुख और सम्मान पाकर भी शान्त नहीं रह सके। वे उद्वेलित बन गये। उनका कायर मन कांपने लगा। समाज से भय लगने लगा। स्वभाव में चिड़चिड़ाहट आ गयी। आये दिन रानी से मतभेद रहने लगा। उनका एक ही पुत्र था, तो वह भी मानो पिता के विपरीत जाने लगा। उनका रुपया, सम्मान सभी भोग रहे हैं, सभी सुख पा रहे हैं, परन्तु यह भी कितनी दयनीय अवस्था थी कि आत्मीय और मित्र उनसे अपना स्वार्थ पूरा करते हुए भी जैसे दूर हट रहे थे...उन्हें हीन और कायर भी स्वीकार कर रहे थे !

फलस्वरूप, अभयबाबू के मन की जैसी भी अवस्था थी, वह केवल भ्रमवंश अथवा काल्पनिक तो थी ही नहीं, वह सचाई पर आधारित थी। जिसका सबसे उज्जवल प्रमाण यह था कि नगर

का धनिक-समाज, अधिकारी, समाज अथवा शिक्षित-समाज भले ही अभयबाबू के सामने अपना सिर झुका देता,—परन्तु जिस समाज का आश्रय पाकर, उसे साथी बनाकर, अभयबाबू ने अपना मार्ग प्रशस्त किया, वह समाज अब सचमुच ही उनसे दूर रहना चाहता। मानो वह अभयबाबू से डरने लगा। उन्हें डाकू अथवा लुटेरा मानने लगा। यह भी कैसी विषम परिस्थित थी कि जिस समाज ने एक दिन अपना हृदय अथवा सर्वस्व अभयबाबू के हाथों में समर्पित करके अपने को सुरक्षित समझा, वह नर-समूह अब उन्हें शत्रु मानता,—अपने शत्रु का मित्र मानता! नगर का मजदूर-समाज जो कभी भी जीवन का प्रकाश नहीं देख सका, पृथ्वी माता से उत्पन्न हुए अन्न को पाकर अपना पेट नहीं भर सका, जीवन की ऊँचाई की कल्पना नहीं कर सका, वही मजदूर-समाज अब अभयबाबू को देखकर जैसे छाती पर घूंसा खाता और तिलमिला जाता। उसके हृदय में कारखाने की चिमनियों से निकलते हुए धुएं के सदृश्य जैसा जहरीला धुआं घुटने लगता। वह मजदूर वर्ग उस पीड़ा से तड़पता और हा-हा खाकर कहता—कितने सलोने और सुन्दर बनकर आये थे यह अभयबाबू,—जैसे जीवन के साथी,—हमारी पीड़ाओं के समूह, कि अवसर पाते ही बदल गये। हमारे नेता क्या बने, हमारे ही कन्धों पर चढ़ कर, इतनी ऊंचाई पर पहुंचे कि सेठों की मण्डली में जा मिले...जिस वर्ग ने हमारा सर्वस्व अपहरण किया, उसी के साथी बन गये...

कदाचित्त यही कारण था कि अब मजदूर-वर्ग उनकी बात नहीं सुनता। वह कुछ कहते, तो उस पर ध्यान नहीं देता। अभयबाबू चिल्लाते, चीखते, तो वह मजदूर-समाज मानो चिढ़ कर मुंह फेर लेता और कभी मुंह पर भी कह देता, बाबूजी, बड़े जख्म हो गये हैं, इन इंसानों के बदन पर, अब नमक न छिड़किये! इन्हें

परेशान न कीजिये...इन्हें मरने दीजिये! जैसा भाग्य है, उसी पर छोड़ दीजिये!

इतना सुनते, तो अभयबाबू मानो अपने-आप ही तड़प जाते। आंखें देखतीं की हां, ये परेशान तो हैं। अभी अन्धेरे में पड़े हैं। देश स्वतन्त्र हुआ है, कुछ भूखे मालदार बन गये हैं, पर ये मजदूर—ये भाग्य के हीन—क्या नीचे से ऊपर उठ सके हैं, या उठाये गये हैं! निदान, इतना सोचते ही, अभयबाबू का मन जैसे सिकुड़ जाता। वह अपने-आप ही चीत्कार से भर जाता। ऐसे अवसर पर उनमें जिस प्रकार की अन्तर्वेदना परिव्याप्त होती, वह निश्चय ही, अभयबाबू के कोमल और छोटे-से मन को दबा लेती और भींच देना चाहती। वह आसमानी बिजली उस व्यक्ति के अन्तर में कौंधती, तो लगता यह, कि जैसे अभयबाबू का गोश्त, हड्डी और मज्जा सभी की सब उस बिजली की आग से जलतीं और राख हो जाना चाहतीं।

इस प्रकार देखते और स्वीकार करते अभयबाबू कि हां, देश स्वतन्त्र हुआ है तो क्या, चोरों का गिरोह बढ़ गया है। डाकू बढ़ गये हैं। समूचा देश ही मानो लुटेरों और डाकुओं का घर बन चुका है। उन डाकुओं में सभी हथियार नहीं चलाते। कुछ कलम चलाते हैं, कुछ मस्तिष्क की तलवार चलाते हैं। लक्ष्य सभी का एक है,—स्वार्थ एक! देश के बदन पर जो हड्डियां हैं, और उन हड्डियों में जो थोड़ा-बहुत गोश्त चिपता हुआ है, सभी के तेज दांत उस गोश्त को उखाड़ कर और हड्डियों को कट-कट चबाकर अपना पेट भरना चाहते हैं। देश के नेता, साहूकार, जमींदार, कारखानेदार और सरकार के महकमे का कोई भी हवलदार केवल रुपया चाहता है...सोने-चांदी के भवन निर्मित करना चाहता है...

—तो नितान्त अधीर और कठोर बनकर, कहते अभयबाबू—

देश नहीं रहेगा...यों स्वतन्त्र नहीं रहेगा...यहां चरित्र नहीं, भ्रातृत्व नहीं...आत्म-बल नहीं, यह जीवन क्या टिक सकेगा ! न, यह जरूर अकाल-मृत्यु के मुंह में चला जायेगा...

किन्तु अभयबाबू के मन की यह अवस्था स्थायी तो थी नहीं। मानो उस पर मुलम्मा चढ़ाया जाता। वह चमकता और अवसर पाते ही उतर जाता। हृदय की लालसा और वासना का रूप किसी भी मदहोश राक्षस के समान उनके सामने आकर खड़ा हो जाता और उस भावना को ढक देता। तब वह कहते—देश का किसान, देश का मजदूर, स्वतः ही इतना अविवेकी, अदूरदर्शी और पतित बन चुका है कि उसे अन्धकार से बाहर लाना कठिन है। मजदूर को चाहिए शराब, जुआ और नारी का सम्भोग ! वह कहते, किसान आज तक नहीं समझा, वह समझ नहीं सका कि जिस पृथ्वी पर मेहनत करके वह अन्न प्राप्त करता है, तो उसका मूल्य क्या है। किसान मूर्ख है ! अन्धकार में ही पड़ा रहना पसन्द करता है। वह आपस में लड़ता है, जानवर बना रहता है। हल के साथ काम करने वाला तो बैल सदृश ही बन गया है। वह सरकारी आदमिओं के कोड़े खाता है और गिड़गिड़ाता है...बेचारा !

लेकिन अभयबाबू के मन का यह भी एक पहलू था, उनका यह पुराना विश्वास था कि मजदूर और किसान जिस दुर्गति को प्राप्त हुआ है, अनायास ही नहीं हुआ। ऐसा बनाया गया है। वह केवल जानवर रहने दिया गया है। साम्राज्यवाद और सरमायेदारी के मिले-जुले गुट्ट ने मजदूर और किसान का शोषण करके ही वैभव का किला निर्मित किया है...

परन्तु यह विचार,—मन का यह उद्गार—अब नहीं दीखता। दीखता भी हो, तो वह देर तक टिका नहीं रहता। जैसे उसका

स्थान छिन गया। अभयबाबू का मन चांदी और सोने की कल्पना में डूब गया !

निदान, अभयबाबू के मन की ऐसी परिस्थिति के बीच में ही, रानी के पास महेन्द्र के जितने पत्र आये, कदाचित उनमें से किसी एक का भी उसने अभयबाबू से उल्लेख नहीं किया। अपने एक पत्र में रानी ने महेन्द्र को लिखा था कि जेबुन्निसा अपनी जाति के पूर्व परिचित बैरिस्टर से विवाह करने का निश्चय कर चुकी है। उसकी जीवन गति भी बदल चुकी है। उसी पत्र में रानी ने महेन्द्र से प्रश्न किया—क्या, तुमसे जेबुन्निसा का मतभेद हो गया ? किस बात पर तुमने जेबुन को असन्तुष्ट कर दिया ? उसने लिखा था, जेबुन तुम्हारे लिए उपयुक्त थी,—जीवन में अच्छे साथी का काम दे सकती थी।

किन्तु अपने पत्र में उत्तर देते हुए महेन्द्र ने लिखा, मैं आज तक नहीं समझा कि जेबुन्निसा का मुझसे किस बात पर मतभेद हुआ। सोचता हूं, उसने जैसा निश्चय किया, वही उसके लिए उपयुक्त था। और मुझे साथी चाहिए, इतना मान कर भी, मैं यह नहीं सोच पाता कि विवाह करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। जेबुन का विवाह हो, तो मेरी ओर से भी मुबारिकबाद भेज देना। रुपया तो मैं उपार्जित करता नहीं जो बाजार से खरीद कर कोई कीमती साड़ी उसे भेंट करता, परन्तु मेरी परम भावना को पाने का अधिकार जेबुन्निसा को सदा रहेगा।

रानी ने अपने एक पत्र में अभयबाबू का उल्लेख करते हुए लिखा था कि आजकल इनके मन और मस्तिष्क की गति बदल गयी है। शान्त स्वभाव चिड़चिड़ा बन गया है। जब हम गरीब थे, कठिनाई से जीविका चला पाते थे, तो तब की शान्ति आज जैसे स्वप्न हो गयी है। सोचती हूँ, ऐसी अवस्था से तो अच्छा

यही है कि यह रुपया चला जाय, पुराना समय आ जाय, तो मेरे लिए और इस घर के लिए शान्तिप्रद होगा।

महेन्द्र ने, उत्तर में, अभयबाबू का उल्लेख करते हुए लिखा था, जीवन में मेरे एक आत्मीय सहायक के रूप में मुझे मिले, सचमुच गंगा-जल के समान—सत्य के प्रतीक,—परन्तु आज उन्हीं को दुर्गन्धपूर्ण और स्वार्थपूर्ण प्रवाह में बहता हुआ पाकर मेरा मन खिन्न बन गया है। बरबस ही, आत्मा में चीत्कार पैदा होता है। मैं इसे अपने दुर्भाग्य के साथ देश का भी दुर्भाग्य मानता हूँ कि जिसने अभयबाबू सरीखा साफ व्यक्ति पैदा करके भी उन्हें अवसर पाते ही अनेक वासनाओं का दास बना दिया। वे या तो पहिले न होते, या आज सरीखे न होते; तभी ठीक था। यों, मनुष्य अपने जीवन का तो दुरुपयोग करता ही है, आने वाली सन्तानों के मार्ग पर भी कांटे बिछाता है,—इन्सान के इतिहास का मुंह काला करता है। मेरी दृष्टि में अभयबाबू ने यही पाप किया!

कई मास बाद, एकाएक ही, जाने किस विचार से प्रेरित होकर रानी से अभयबाबू ने पूछा—आज किसका पत्र आया? क्या महेन्द्रबाबू का? क्या लिखा? लौटने के लिए लिखा? और उन्होंने अपने-आप ही कहा—'महेन्द्रबाबू ने उस क्षेत्र में जाकर जितना काम किया, उतना एक मनुष्य क्या एक जीवन में कर सकेगा! सच, तूफानी काम किया। देश के सभी पत्रों ने उनकी प्रसंशा का यशोगान किया है।' और तभी उन्होंने सांस भरकर कहा—'ठीक ही किया, महेन्द्रबाबू ने! वह जवान हैं। उनमें नयी भावना है, नया जोश है! यह विश्व,—हमारा देश—नौजवानों के कन्धों पर ही टिका है। युवकों की ओर ही देश आशा की दृष्टि से देखता है।'

तत्क्षण ही, मानो चिढ़ कर रानी बोली—'और बूढ़ों को जीवन का स्वार्थ दीखता है!'

किन्तु अभयबाबू ने बात के मर्म तक पहुंच कर भी कह दिया—'बूढ़े तो अशक्त होते हैं। वे केवल मस्तिष्क से ही काम ले सकते हैं। लेकिन त्याग और आदर्श के नाम पर जलती हुई आग में कूदना नौजवान ही जानता है। नौजवानों के खून से यह देश कई बार स्नान कर चुका है...उसी लाल-लाल और चमकते खून ने समय-समय पर बसुन्धरा के चरणों को पखारा है...भारत देश अपने युवक और युवतियों से सदा गौरवान्वित हुआ है!'

रानी बोली—'महेन्द्र भैया बीमार हैं।'

अभयबाबू ने चिन्तित स्वर में कहा—'जरूर होंगे। दुर्बल तो अतिशय हो गये होंगे। कहो, तो मैं जाऊँ? यहाँ लाने का प्रयत्न करूँ?

रानी ने कहा—'भैया आ रहे हैं। जल्दी ही आने वाले हैं। वह अपना काम समाप्त कर चुके हैं। लिखा है, वह दूसरा क्षेत्र चुनेंगे। वह किसान-मजदूरों में अपना जीवन लगा देंगे।'

'और विवाह?—जेबुन्निसा?'

तुरन्त ही, मानो झल्लाकर रानी बोली—'तुम रुपया क्या पा गये, सब ओर जीवन का सुख देखते हो, नारी देखते हो!' उसने कहा—'भैया ने लिखा है, वह विवाह आवश्यक नहीं मानता। समाचार पत्रों में जिस चमार की लड़की गंगा का समाचार छपा, भैया ने उसका विवाह करा दिया।'

इतना सुना, तो अभयबाबू के मत नहीं दिया। मानो उन्होंने अपनी कमजोरी को बरबस स्वीकार कर लिया।

रानी फिर बोली—'जेबुन्निसा धनवान की पुत्री है, मुसलमान है, वह क्या मेरे भैया के साथ इस प्रकार गाँव और नगरों में भटक सकती है? वह तो आराम चाहती है!'

अनायास अभयबाबू ने कहा—'वासना,—जीवन की पूजा ! धन का भोग !'

'ओह !' मानो छूटते तीर के सदृश बनकर ही रानी ने कहा—'तो यही जीवन का भोग है...यह कीचड़...संडाद...'

साँस भर कर अभयबाबू मुसकरा दिये—'तुम पर बुढ़ापा आ गया है।' उन्होंने कहा—'देखा तो है ही कि यौवन अँधा होता है,—प्रणय की माँग करता है। यह इन्सान का जीवन 'सेक्स' की पूजा में लीन बन कर ही, अपने दिन काट देता है। और सेक्स का क्षेत्र कितना विस्तृत है, इसका तो तुम्हें पता है।' वह बोले—'नारी, हीन बनकर भी, मनुष्य अकेला है। सूना है !'

रानी ने मानो कठिन स्वर में कह दिया—'यह तो देखी-सुनी भावना ने अपना विधान बना लिया है। मैं सोचती हूँ, दोनों को अकेले रहना आता है। न नारी सूनी है, न मनुष्य सूना है। बेकार मनुष्य ही वासना और भोग की कल्पना करता है। हमारे देश के आदमियों के पास काम कम है, तभी तो फुरसत का समय इन अश्लील कामनाओं में कटता है। इसीलिये जनन शक्ति का विस्तार बढ़ चला है। देश में अन्न नहीं, वस्त्र नहीं, रहने को स्थान नहीं और इस पुरुष-नारी-वर्ग ने सन्तान उत्पत्ति का वेग तीव्र कर दिया है...लगता है कि नारी ने जानवर की स्थिति को लांघ लिया है...'

उस समय अभयबाबू गंभीर थे। वे बाहर जाने के लिए प्रस्तुत थे। जब जाने लगे, तो बोले—'आज फिर इस नगर के ऊपर काले बादल मँडरा रहे हैं। मिलों की हड़ताल का आज आठवाँ दिन है।'

रानी ने कहा—'लेकिन तुमने तो त्याग-पत्र दे दिया। मिल-मालिकों की वकालत करना स्वीकार कर लिया।'

मानो तमाचा खाकर, अभयबाबू बोले—'न, रानी ! मैं वका-

लत किसी की नहीं करता। इतना अवश्य है, अब मैंने मजदूर-वर्ग से अपना संबन्ध तोड़ लिया।'

रानी बोली—मैं पूछती हूँ, क्यों? प्रतिष्ठा के लिये? धन पाने के लिए?

आतुर स्वर में अभयबाबू बोले—'मेरे मन को परेशान मत करो, रानी! मैं स्वयं चिन्तित हूँ। मैं अपने पाप को मौन रह कर ही भोग लेना चाहता हूँ।'

किन्तु रानी ने तेज स्वर में कहा—'पाप,—जीवन का पाप,—इन्सान का पाप!' वह बोली—'तुम भी वही निकले, जो मनुष्यों के जीवन से खेलते हैं, उन्हीं की हड्डी चबाते हैं!'

'ओह! राम मेरे! 'अभयबाबू ने आँख मींच ली—'तुम कठोर हो...मुझे मार देना चाहती हो! मेरी मौत...'

किन्तु रानी ने उन्हें घूरा—'मरना सभी को है। मुझे भी मरना है। सोचती थी मैं, मेरा पति जनता का आशीष पायेगा, प्रेम पायेगा। परन्तु आज तो मैं प्रत्यक्ष देखती हूँ कि तुमने लांछना पाई, घृणा पाई। मैं बाजार में निकलती हूँ तो लोगों की आँखें देखती हूँ, कानों से सुन भी लेती हूँ—'यह है रानीदेवी,—अभयबाबू की पत्नी! एक दिन नंगे पैरों घूमती थी, आज मोटर में चलती हैं, अमीरों की दलाली करके, अपने पति के साथ देश और समाज को ठगती हैं,—यह नारी,—नारी का कलंक!'

चीखकर, अभयबाबू बोले—'वे बदमाश हैं—चोर!'

किन्तु रानी ने धीमे स्वर में कहा—'जाने कौन हैं वे!' वह बोली-'तुम मेरा अंत करदो। जहर ला दो। मुझे अपने जीवनपर लज्जा है!'

'जीवन से लज्जा,—क्षोभ,—ओह!' मानो बरबस ही, अभयबाबू के मुँह से निकला। उनके पैर उठे और बाहर चल दिये। वह चले गये। उस अवस्था में रानी के पास ठहर नहीं सके। मानो वे अपनेआप ही लजा गये! अथवा क्षोभ से भर गये।

सैंतीसवाँ अध्याय

गंगा के लिए यह कितने दुर्भाग्य की बात थी कि महेन्द्रकुमार की प्रेरणा पर वह एक उच्च वर्ग के युवक की पत्नी बनी और विवाह के दो मास बाद ही, विधवा हो गयी। किन्तु उस गांव के लिए यह भी अचरज की बात हुई कि गंगा अपने सुन्दर पति को खोकर भी दुःखी नहीं हुई। उसके हास्य प्रिय मुंह पर विषाद की रेखा नहीं दीख पड़ी। अपितु, विधवा बनने के बाद ही, जन-कार्य में गंगा की रुचि और अधिक बढ़ गयी। वह महेन्द्रकुमार का बाँया हाथ बन गयी। जब गाँव के किसी पुरुष अथवा स्त्री ने उसके वैधव्य पर चिन्ता व्यक्त की, तो गंगा तुरन्त ही हंस देती—यही होना था...ऐसा ही होता है, इस दुनियां में। वह कहती--विवाह करना था, कर लिया। मुझे क्वांरी से विवाहित बनाना भी लोगों ने आवश्यक समझा था, सो पूर्ण हो गया। अब क्या! भाग्य तो भगवान ने बनाया, मुझे वही मिलना था!

किन्तु गंगा के उस वैधव्य पर, जितना दुःख महेन्द्र को हुआ, वह भले ही व्यक्त नहीं हुआ, परन्तु अपने-आप में भारी था। गंगा की उस अवस्था को देख कर, महेन्द्र ने विवाह की परिपाटी को एकाएक ही जैसे नितान्त बेकार मान लिया। इसके विपरीत, वह गांव का जमींदार था कि जिसने गंगा को जीवन की भरी दोपहरी में लुटती हुई पाकर खेद प्रगट नहीं किया, अपितु उसका अन्तर्मन प्रसन्न हो गया। क्योंकि गंगा उसके मार्ग में कांटा थी। उसके कारण ही, जमींदार की प्रतीष्ठा कम हो गई थी। अतएव, उसके मन में बात उठी कि गंगा अब झुकेगी। जीवन के बोझ को अकेली नहीं

उठा सकेगी। किन्तु तुरन्त ही, उसे अपनी उस दुर्भावना को भी छोड़ देना पड़ा। गंगा को उसने पूर्ववत हंसती हुई प्रसन्न पाया।

लेकिन इतने समय में, उन गांवों में एक अनोखी, नयी और तेज वायु चल पड़ी थी। बेगार बन्द हो गयी थी। अछूतपन मिट गया था। कुए और मन्दिर सभी के लिए खुल गये थे। जमींदारी छिनने लगा था। समाज की इस नई परम्परा को स्वीकार करने का उत्तरदायित्व जिन व्यक्तियों पर था, उन्होंने इच्छा न रखते हुए भी, दूसरों को अधिकार देना स्वीकार कर लिया था। उस समाज की अजीब अवस्था थी।

परिस्थितिवश, इकरार भी नहीं होता था और इन्कार भी नहीं। सरकारी कानून और मानवोचित मांग ने उनका पल्ला पकड़ लिया था। फलस्वरूप, समाज के उस कठोर और पत्थर हृदय वर्ग में शासक और शासितों के प्रति अधिकाधिक रोप बढ़ रहा था। सबसे बड़ी चिन्ता और दुराशा की बात तो यह थी कि वह रोप महेन्द्रकुमार के प्रति अधिक जागरूक बन चला था। सामन्त-शाही प्रवृत्ति के समर्थक जमींदार और ताल्लुकेदार तथा रईस एकान्त रूप से इस अवसर की खोज में रहते कि महेन्द्र उनके रास्ते से हट जायें......अथवा हटा दिया जाए। किन्तु महेन्द्र के सामने समस्या यह थी कि वह जब-जब उस ग्रामीण क्षेत्र से लौट जाने की बात सोचता, तो वहां का काम उसे फिर रोकता और वह स्वयं उसे पूर्ण करने की बात सोचने लगता।

सचाई यह थी कि महेन्द्रकुमार उस ग्रामीण-क्षेत्र के प्रति इतना मोहित और गर्वित बन गया कि स्वतः ही वहां से दूर हो जाने की बात एकाएक नहीं सोच पाता था। मानो वही उसके जीवन का दृढ़ संकल्प था। वही विजय। उस क्षेत्र में रहकर उसने जिस त्याग, शौर्य और अदम्य उत्साह का परिचय दिया, दीख यह पड़ा कि

स्वयं उसको पहिले अपनी शक्ति पर उतना भरोसा नहीं था। उस ग्रामीण समाज में, कि जिसने सदियों से परतन्त्रता का श्राप भोगा हो, विदेशी नौकरशाही का कठोर प्रहार उसी के ऊपर पड़ा हो, ऐसा समाज जिस प्रकार महेन्द्रकुमार के प्रति समर्पित हुआ, सचमुच ही अवर्णनीय था। स्वयं महेन्द्र को कौतुक का विषय लगता था। उसमें कितनी शक्ति है, कितनी अमरता है! वह स्वतः तो समझा नहीं, परन्तु गांव वालों ने समझ लिया। महेन्द्र जिस ओर जाता, जिस किसान के खेत पर निकलता, तो क्या मजाल कि वह उस खेत की प्राप्त सम्पत्ति का अधिकारी न बनता हो और उस अमर-फल का स्वाद न लेता हो।

किन्तु इतनी श्रद्धा और भावना पाकर भी, महेन्द्रकुमार ने उच्च वर्ग के मन को नहीं जीत पाया। वह उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। इसका मूल कारण था, उस समाज का स्वार्थ और दम्भ! वे भू-स्वामी, वे लक्ष्याधीश, कदाचित् इतना तो अवश्य समझते कि महेन्द्रकुमार उनसे जो कुछ कहता, उसका स्वार्थ कुछ नहीं। परन्तु महेन्द्र उन्हें भू स्वामित्व से हटा रहा था। वह कह रहा था, इस वसुन्धरा पर, इस पृथ्वी पर सभी का अधिकार है। यह सभी की मा है। इस मा का क्रय-विक्रय करना पाप है। मा के गर्भ से जनता को जो कुछ भी प्राप्त होता है वह भी सभी का है। अन्न सभी का—धन सभी का है।

देर से, आराम की नींद सोता हुआ समाज जब उस पुकार को सुन कर जागा, तो कुम्भकर्ण के समान, उसने भी विवेक से काम नहीं लिया। वह स्वार्थान्ध-समूह एकाएक ही तड़प गया और रोष से भर गया। वह ऐसे कांटों को जला देने की बात सोचने लगा कि जो उसके रास्ते में आ गये थे और चुटीला बनाने में समर्थ हो सकते थे। उस समाज को वेदना देते थे। इसी का यह परिणाम था कि

वह समाज स्वतन्त्र भारत के नव-विधान और जन-तंत्र के ध्येय का भी उपहास कररहा था। वह पुकारकर कह रहा था कि प्रजातन्त्र एक धोखा है...निम्न-वर्ग को प्रश्रय देने का अर्थ ही यह कि देश का कारबार नष्ट हो जाने वाला है.. बुद्धिहीन किसान और मजदूर चल नहीं सकता,—चलाया जाता है!

महेन्द्रकुमार जिस गाँव में ठहरा हुआ था, वहाँ का जमींदार भी यथेष्ट संपन्न व्यक्ति था। उसके पास बड़ी जमींन थी, पैसा था। उसका नाम जगतसिंह था। उस जगतसिंह के हाथ में शक्ति थी। अन्य ताल्लुकेदार और जमींदार भो साथ थे। वह सम्मिलित समूह सरकार के विरुद्ध भी कानून का आश्रय लेने की बात सोचता था। उसने प्रान्त के बड़े कोर्ट में मुकद्दमा भी दायर कर दिया था।

किन्तु महेन्द्रकुमार का रास्ता और था। उसकी वाणी सभी के लिये थी। वह महात्मा गांधी का प्रतिनिधि बनकर जैसे सभी प्रकार के प्रतिरोध को गौण मानता था।

एक बार शंकित बनकर, गंगा बोली—'तुम्हें देखती हूँ, तो भय लगता है। मुझे शंका है कि कहीं तुम्हें कुछ हो न जाय... देखते हो, समाज का स्वार्थ बड़ा है।'

बात सुनी, तो महेन्द्र हँस दिया—'यह बात तो पुरानी है कि स्वार्थ बड़ा है।' वह बोला—'परन्तु इस स्वार्थ का प्रतिरोध भी मनुष्य ने किया है। मनुष्य पत्थर से लड़ा है, लोहे से लड़ा है।'

क्षोभपूर्ण स्वर में गंगा बोली—'आदमी लोहा...पत्थर...'

महेन्द्र ने कहा—'हां, आदमी सभी-कुछ है। मोम भी है। अमृत और जहर भी है!'

गंगा बोली—'तो आदमी भी एक समस्या है!'

गम्भीर स्वर में महेन्द्र ने कहा—'परिस्थितियों ने आज के आदमी का निर्माण किया है।' उसने कहा—'वैसे सिद्धांत यह भी है कि आदमी अपनी परिस्थिति का निर्माता है।'

सांस भर कर गंगा ने कहा—'देर से मैंने तुम्हें यहां रोका है। मेरा भी स्वार्थ रहा है। पर सोचती हूँ, तुम्हारा यहां से हट जाना हितकर है। मुझे तो अब भय लगता है।'

बात सुनी, तो महेन्द्र फिर हँस दिया—'तो तुम्हें मेरा क़त्ल दीखता है! बताओ, कैसे दीखता है?' उसने कहा—'अरी, गंगा! आदमी तो अपने एक जीवन में सहस्रों बार मरता है। जिस मरने की बात तुम लेती हो, वह सदा ही बहुत छोटा प्रश्न रहा है। मैंने उस समस्या को भला कब महत्व दिया है!'

गंगा ने कहा—'यह जगतसिंह,—उसके साथी—डाकुओं का गिरोह!'

सुनकर, महेन्द्र की इच्छा हुई कि वह हँसता रहे। परन्तु वह गंभीर बन गया और दूर अन्तरिक्ष में अपनी दृष्टि लगाता हुआ बोला—'मेरी अच्छी गंगा, कभी मौत आये, तो मैं उसे भी गले लगा लूँगा। यह भी मेरे लिये हर्ष का विषय रहेगा कि मैं यहाँ आया, तो यहीं का बन गया। लौट कर नहीं गया।'

एकाएक गंगा ने कातर बनकर कहा—'ओह,—तुम!'

महेन्द्र ने प्रसंग बदलकर कहा—'आज मेरी जीजी का पत्र आया है। लिखा है, जेबुन्निसा का विवाह हो रहा है। इसी सप्ताह बैरिस्टर उसका पति बन रहा है।'

चकित बनकर, गंगा बोली–'वह जेबुन,–वह जेबुन्निसा!—तो?'

महेन्द्र ने कहा—'इस जीवन में प्रश्न के लिये स्थान नहीं, गंगा देवी! जीवन सपाट है, इसका रास्ता भी सीधा और साफ है।'–वह बोला–'जिन व्यक्तियों को जीवन दुरूह लगता है, विषम जान पड़ता है, मेरा तो मत है कि उन्होंने तो स्वयं अपने ही हाथों इस कोमल जीवन का गला घोंट दिया है। वह जिस भौतिकवाद में डूबते हैं, वहां चिन्ता और दुराशाओं को छोड़ कर भला

और क्या रखा है। चल जगत को उन्होंने जड़ बना दिया है, जैसे––पत्थर !'

गंगा ने कहा—'जेबुन्निसा को मैंने देखा, तो पाया कि नारी वह है, सफल वह ! पर आज ?—आज—?'

महेन्द्र फिर बीच में बोल दिया—'न, गंगा ! जेबुन्निसा का हृदय आज भी कोमल है, पवित्र है। तुम सोचती हो कि उसने मुझे भुला दिया है। न, उसने मुझे मुक्त करना पसन्द किया है। अपने आपको रास्ते से हटा लिया है। और मैंने उसे पाया है। उसका कोमल और पवित्र मन मैंने साफ देखा है।'

इतना सुनते ही, गंगा चिढ़ गयी—'तुम अधिक भावना प्रिय हो। वास्तविकता भला कहाँ देखते हो !'

चकित बन कर, महेन्द्र ने उसे घूरा—'अरी, गंगा ! भावना को छोड़ कर भला इस जीवन में और क्या है ! तू भी मिली है, तो भावना ने अपना काम किया है।'

एकाएक गंगा ने कहा––महेन्द्र बाबू...'

महेन्द्र बोला––'गंगादेवी, तेरे वैधव्य को देख कर, मैंने विवाह नाम की इच्छा को पूर्णतः छोड़ दिया है। अब मैं यहाँ से जाऊँगा। जीजी ने मुझे बुलाया है। अब मेरे जीजा अभयबाबू का स्वास्थ्य ख़राब हो गया है। और मैं कितने दिन से यहाँ हूँ, एक जगह पड़ा हूँ, सच, अब यहाँ से दूर हो जाना ही, मुझे शोभता है।'

गंगा ने बात सुन ली और ऊपर हरे आसमान में अपनी दृष्टि को लगा दिया। उसने तब अपना मत नहीं दिया। किन्तु जब महेन्द्र ने उसकी ओर देखा, तो तुरन्त उसकी ठोढ़ी पकड़ कर बोला—'पगली ! अभी कहती थी कि मैं यहाँ से चला जाऊँ। और जब मैं स्वयं जाने की बात कहने लगा, तो आँखों में आँसू

भर लायी।'—उसने कहा—'गंगा, अब तू यहाँ के स्कूल की मास्टरनी बन गयी है। प्रधान कार्यकर्त्री है। ऐसी छोटी बातों पर रोना भला क्या तुझे शोभता है! तेरे ऊपर बोझ है? तू तो समाज की उपदेशिका है!'

मन पर झटका-सा खाकर गंगा बोली—'बाबू, इतना समझ कर भी, मैं नारी हूँ, दुर्बल हूँ। मेरे सूखे जीवन में आकर तुमने जैसे चारों ओर फल-फूल के पौधे लगा दिये। हरियाली बहार ला दी। सोचती हूँ, तुम न होगे, तो यह बहार, यह पेड़ों की खुशबू क्या महँकेगी। न, यह तो सूख जायगी। यह गंगा मर जायगी।'

इतना सुना, तो ममता के प्रगाढ़ भाव में महेन्द्र ने गंगा के सिर पर हाथ रख दिया—'गंगा रानी! जीवन तो अपने पैरों पर चलता है। तुझे स्वयं ही चलना है। चली चल। आगे बढ़ी चल। तेरा जीवन तो स्वयं उजागर है। इस आँगन में प्रकाश है। तू अँधेरे में चलने वालों को प्रकाश देती चल। यही जीवन का कर्म है। यही स्वभाव है।' कहते हुए महेन्द्र अतिशय गम्भीर बन गया—'नारी के इस भावना पूर्ण जीवन में जो गति है, लय है और मधुरता है, वह क्या सब को मिलती है, सभी की आँखों से देखी जाती है। पर वह तू ने देखी और सुनी है। हाँ, गंगा! तू वही अपने समाज को दे। इस सुन्दर काया के नीचे जो हृदय है उसमें स्फुरण और चेतना है, उसे जन-जन में बांट दे!' वह बोला—'इस नारी और नर के समाज ने अपना पथ छोड़ दिया है। भोग और वासना ही कर्म बन गया है।'—उसने कहा—'चरित्र खोकर क्या हमने जीवन पाया है, रस पाया है!' कहते हुए महेन्द्र कातर बन गया—'गंगा देवी! मानव का यह जीवन, हाय! कितना पवित्र! कैसा उज्ज्वल प्राण! क्या सरलता से मिलता है। न, आज तो जिन्हें मिला है, उन्होंने भी उसका उद्देश्य भुला दिया है।' महेन्द्र के माथे में सलवटें पड़ गयीं। आँखें चढ़ गयीं।

और वह बोला—'इस ग्रामीण-क्षेत्र में आकर मैंने यही तो पाया। लोग समझते हैं, मैंने कुछ दिया। पर सचाई तो यह है, मैंने लिया। पीड़ितों की आह में भी मैंने जीवन का करुण चीत्कार देखा। जिन मुर्दों को मैं जलाने में सफल हुआ, तो उन सुन्दर शरीरों को अग्नि की भेंट करते हुए भी मैंने पाया कि इस जीवन में जो जीत गया, वही मानव बन गया,—महाप्राण हो गया! और यहाँ सभी महाप्राण हैं—भगवान के दूत हैं—मैंने उन जलते हुए शरीरों में जैसे यही पाया, भगवान पाया, मुसकराता हुआ, हँसता हुआ...'

और संन्ध्या के उस धूमिल प्रकाश में, डूबते हुए सूर्य को नमस्कार करने के सदृश, गंगा ने अपनी वे भरी हुई आँखें महेन्द्र के चरणों पर झुका दीं। उसने वे पैर पकड़ लिये—'तुम देवता हो,—मेरे हृदय के प्राण!'

किन्तु इतना सुन कर, महेन्द्र बोल नहीं सका। वह मौन बना हुआ, दूर अंतरिक्ष में डूबते हुए सूर्य की ओर देखता रह गया।

महेन्द्र के उन्हीं पैरों पर हाथ रखे हुए गंगा ने कहा—'एक बात कहती हूँ, मैंने अमृत का घूँट पिया है,—तुम्हें पाया है!'

किन्तु महेन्द्र ने उस ओर बिना देखे ही कहा—'गंगा, आदमी बड़ा दुर्बल प्राणी है। नारी चाहे तो इसे बलवान बना सकती है। जेबुन्निसा ने मुझे यही बल दिया! उसका यह आभार क्या यह मेरे भुलाये भूल सकता है!'

बात सुन कर, गंगा मौन रह गयी। उसने महेन्द्र के पैरों को शिथिल कर दिया। हाथ सरक कर जमीन पर आ गया। किन्तु महेन्द्र ने उसे ऊपर उठाया और उसके सिर पर हाथ रखते हुए

कहा—'गंगा, कैसा पवित्र संगम है यह, जाने कब-कब के बिछड़े हुए इस जीवन में आ मिलते हैं...और इस जीवनेत्तर विश्व में हम जिस संयोग की बात लेते हैं, आत्मदान का नया पृष्ठ पढ़ते हैं, उससे नित-नया जीवन पाते हैं,—पाये जाते हैं।' 'वह बोला—'इस गाँव में, जब मैं हँसते हुए, खेलते हुए बच्चों को देखता हूं, कुमारियों को कुएं पर पानी भरते, खेतों में काम करते, अल्हड़ भाव में गाती हुई पाता हूँ, तो सच, मैं भगवान की सजी हुई फुलवारी की मादक-गन्ध से झूम उठता हूँ...मैं इन सभी में भगवान पाता हूँ...उन्हें हँसता और मुसकराता पाता हूँ।' उसने कहा—'मैं उन व्यक्तियों को पागल मानता हूँ कि जो प्रलय की कल्पना करते हैं। मैं तो सजे हुए, भाव-भरे एक अभूतपूर्व विश्व की कल्पना करता हूँ, गंगारानी ! तुम भी यही कहो। यही मानो। तुम भी झूमो। तुम भी गाओ।'

गंगा आँखों से हँस दी, होठों से मुसकरा दी। वह तब एकांत भाव से महेन्द्रकुमार के उस प्रफुल्ल मुँह पर जैसे आत्मा के आल्हाद की छाया देखकर ही, अपने-आप में तन्मय हो गयी और उसी में डूब गयी।

अड़तीसवाँ अध्याय

किन्तु जीवन का वह पूर्ण सन्तोष पाकर भी महेन्द्रकुमार सुखी नहीं था। उसकी आत्मा में जो चिराग जल रहा था, उसके प्रकाश में वह देखता कि आदर्शों के उस युग में चलता हुआ व्यक्ति-समाज,—कृषक-समाज—धनिक-समाज—नर-समाज और नारी-समाज—मानो सभी एक सूत्र में आवद्ध होकर महान देश की काया को नोंच-नोंच कर खा जाना चाहते थे, वे गिद्ध सदृश बने हुए, केवल राष्ट्र की काया के ऊपर चिपटे हुए गोश्त पर अपनी दृष्टि लगाये थे। अपनी तेज चोंच से उसे खाना चाहते थे। कदाचित यही कारण था कि उस ग्रामीण-क्षेत्र में रहकर, महेन्द्रकुमार का यह निश्चित मत बन गया कि राष्ट्र को जहां शिक्षा की आवश्यकता है, वहां समाज के नैतिक और चारित्रिक विकास की भी जरूरत है। राष्ट्र का शासन जिस व्यक्ति-समूह के हाथों में हो, वह क्रूर और मदान्ध न हो, वरन शासित के रूप में कठोर अवश्य हो। उस शासक की दृष्टि इतनी तीव्र हो कि समाज की छोटी-से-छोटी बुराई को भी देख सकती हो। निश्चय ही शासक का अवलम्ब न्याय हो, परन्तु उस न्याय को जनता का कौन वर्ग मानता है और कौन नहीं; यह भी उस शासक को साफ दिखाई देता हो।

परन्तु महेन्द्रकुमार के लिए चिन्ता और खेद की बात यही थी कि न शासक का प्रबल और कठोर नियन्त्रण था और न जनता में सत्य तथा मानवीयता को मानने का भाव था। वह जनता कि जिसके लिए सदियों से भारतीय राष्ट्र के युवक और युव-

त्तियों ने अपना खून दिया, दासत्व की पीड़ा से सिसकती हुई माता के बन्धनों को अपने लहू से ढीला किया,—हाय ! उसी राष्ट्र का स्वतन्त्र-समाज अब अपनी स्वतन्त्रता का उपहास करता...शासितों द्वारा प्रचारित सत्य और न्याय को मानो किसी और युग की बात मानता ! और इसीलिए राष्ट्र के शासन का नियन्त्रण पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा रहा था। न केवल एक लक्षाधीश ही राष्ट्र की आत्मा को झिंझोड़ देने की कल्पना करता, अपितु, समाज के निम्न स्तर पर बैठा हुआ, जीविका-मात्र के हेतु चिंतित किसान और मजदूर भी अपने राष्ट्र के जीवन में कील ठोंक देना चाहता !

इसका प्रधान कारण था, राष्ट्रीय आत्मा का ह्रास ! उसका आत्म-पतन ! महेन्द्रकुमार ने उस ग्राम्य-क्षेत्र में रहकर पूर्णरूप से अनुभव किया कि भारत का यह समाज किसी एक दिन में ही इस अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ। सदियां गुजर गयी हैं। शनैः-शनैः राष्ट्रीय-आत्मा का खून चूसा गया है। विदेशियों ने भारत के मर्मस्थल पर प्रहार किया है। उन्होंने भारतीय ग्रामों का जीवन भ्रष्ट कर दिया है। उन्हें भूखा और नंगा कर दिया है। भारतीय आंगन खण्डहर मात्र रह गया है !

कदाचित यही कारण था कि गांवों में फैले हुए भ्रष्टाचार, अविवेक और नैतिक पतन के प्राबल्य को लक्ष कर, महेन्द्रकुमार न केवल शिक्षा पर जोर दे रहा था, बल्कि वह अपने प्रान्त की सरकार को बार बार लिख रहा था कि जीविका के हेतु सुव्यवस्थित किये जायें। भूखे और नंगों को अन्न और वस्त्र दिया जाय। जिन दिनों अकाल पड़ा और बीमारी फैली तो सरकार तथा अन्य भागों से प्राप्त हुई सहायता को उन गांवों में वितरित करते समय, महेन्द्र ऐसे कई उदाहरण पा सका कि लोगों ने उस प्राप्त हुई सहायता का भी ठीक प्रकार उपयोग नहीं किया। अधिकांश ने

सहायता झूठ बोल कर प्राप्त की। पाया हुआ अन्न और वस्त्र अन्यत्र पर्याप्त मूल्य में बेच दिया। महेन्द्रकुमार ने यह भी सुना और देखा कि उस सहायता का नियोजन करने वालों ने भी उसका दुरुपयोग किया। बीच में ही लोगों ने मुनाफा कमाया।

फलस्वरूप, इस प्रकार के विचार-क्षेत्र में रहते हुए, जहां महेन्द्रकुमार के मन को खेद होता था, वहां उसका मन इस बात को देखकर भी छटपटाता कि हाय ! मानव ही मानव का चोर है...मानव ही हत्यारा और क्रूर है ! भूखा और निरीह समाज भी चोर बाजारी का प्रदर्शन करता है...ठगी और लूट करता है...

उसी समय, एक अवसर की बात कि महेन्द्रकुमार सन्ध्या के झुटेपुटे में एक गांव से लौटकर अपने स्थान पर पहुँच रहा था। गांव के बाहर ही, रास्ते में, उसने कुछ व्यक्तियों को बातें करते सुना। एक कह रहा था—'वाह-वाह ! तुमने भी क्या तीर मारा, रे, रामू !'

उनके बीच में बैठा हुआ रामू नाम का एक जवान, जिसे महेन्द्र जानता था, बोला—'भैया, पैसा ऐसे ही आता है। महेन्द्रबाबू आदर्शवादी हैं न, तो कल जब जेब में पैसे नहीं थे, तो उन्हीं को जा पछाड़ा ! फड़फड़ाता हुआ दस रुपये का नोट ले आया। मैंने जाते ही, मुंह पर दीन भाव लाकर कहा—बाबू, कलसे अन्न नहीं मिला। पास में पाई नहीं। खेत में जो कुछ पैदा हुआ, जमींदार के पेट में चला गया...'

वाह-वाह ! शाबाश रामू ! अच्छा उल्लू बनाया।' मलखू नाम के व्यक्ति ने कहा—और वह गंगा,—चुड़ैल, रूप की परी !

तुरन्त ही रामू बोला—'मैं उसकी भी खबर लूंगा !' उसने कहा—'भैया, और अन्न की बात तो यह है, पटवारी और जमींदार की आंख बचाकर मैंने पहिले ही आधे से अधिक अन्न घर के

कोठार में जाकर रख दिया। भगवान की मौज है। पिछले दिनों अकाल की आड़ में जो-कुछ मिला, वह बेच दिया गया।' यह कहते हुए उसने प्याले में शराब ढाली और मलखू को बढ़ाते हुए बोला—'ले,पी! हराम की पी! उस बाबू के रुपयों की पी!' इतना कहा-सुना और उस मण्डली में जोर का ठहाका फूट पड़ा।

किन्तु महेन्द्रकुमार का मुंह पसीनों से भर गया। जैसे किसी ने उसके मुंह पर तमाचा मार दिया। वह तुरन्त वहां से चल, गांव में आकर कटी डाल के समान अपनी चारपाई पर गिर पड़ा। उसी समय उसे ध्यान आया कि कल जब रामू उससे सहायता मांगने आया, तो उसके पास केवल दस रुपये का नोट था। आज बिना पैसे के वह सवारी भी नहीं पा सका। दिन भर पैदल ही घूमता रहा। किन्तु महेन्द्र के मानस में जो आंधी उठ खड़ी हुई थी वह इतनी तीव्र थी कि बरबस, उसे जाने कहां से कहां उड़ाये लिये जा रही थी। आत्मा में टीस भर गयी। हृदय की सुप्त नाड़ियां तीव्र हो चलीं। मस्तिष्क विकृत। उसी अवस्था में महेन्द्र ने एकाएक अपने सिर के बालों में हाथ फेरकर कहा—हे, परमात्मा! वह बोला—क्या ऐसे ही इस देश का समाज उठेगा....इसे जीवन मिलेगा! निःसन्देह, महेन्द्र की इच्छा थी कि वह फिर लौट कर जायें और रामू के हाथ से शराब की बोतल लेकर फोड़ दे और उसके मुंह पर तमाचा मार कर कहे—'अरे, मूर्ख! धोखेबाज! किन्तु इसके अनन्तर ही, महेन्द्र का सांस जैसे रुक गया। वह सुन्न बन गया। आंखें सामने अन्धेरे में फैल गयीं और कहीं दूर से महेन्द्र को सुनाई दिया—रामू का पाप उसका नहीं है। उसे विरासत में मिला है। उसे प्रदान किया गया है। कृषक और मजदूर बेईमान नहीं, बनाया गया है। ऐसा सिखाया गया है, सरमायेदारी और बुर्जुआ-वर्ग ने जो कुछ किया, उसकी छाया-

मात्र ही यह रामू दीखता है...हृदयहीन गांव का किसान और मजदूर दीखता है...

लेकिन तुरन्त ही, महेन्द्र इस प्रसंग को छोड़ गंगा की बात पर टिक गया। उसकी छाती धड़क उठी कि जब उसे ध्यान आया कि रामू और मलखा गंगा की ताक लगाये हैं। जैसे महेन्द्र को इस बात का पता था कि न केवल गांव के कुछ लोग, अपितु स्वयं जमींदार, गंगा को भ्रष्ट करना चाहता था। इसी से, महेन्द्र के सामने बात थी कि वह गंगा को गांव से हटा दे। उसे शहर जाने के लिए कहे। तुरन्त जो परिस्थिति थी, वह तो स्वयं ही अपने-आप में इतनी दीन और कातर बनी हुई थी कि महेन्द्र शहर को गांव से अधिक भ्रष्ट और नारकीय क्रीड़ा का क्षेत्र मानता था। यही कारण था कि अपने विशाल देश को लुटेरों और डाकुओं का देश पाने लगा। जैसे सर्वत्र ही अनाचार और व्यभिचार पुकार कर रहा था। मानव उसीके प्रभाव में था। गरीब और अमीर सभी के मस्तिष्क पर ठगी और स्वेच्छा ने अपना आधिपत्य स्थापित कर रखा था।

देर रात तक, महेन्द्रकुमार अपने मानस में उठे विचार-व्यूह में फंसा रहा। उसे किनारा नहीं मिला। न गंगा के लिए वह कुछ स्थिर कर सका, न समाज-सुधार का कोई निश्चित कार्यक्रम खोज सका। क्योंकि देखा उसने, समाज की भूख को मिटाना आसान नहीं है। पेट की भूख मिटाई जा सकती है, परन्तु मानव के मानस में स्थापित स्वार्थ की भूख तो परमेश्वर के आशीष पर ही मिटती है। अथवा समाज शिक्षित हो। राष्ट्र-धर्म उसका ध्येय हो। और यह महान प्रवचन स्वीकार करने के लिए बड़ा समय चाहिए,—महान भावना चाहिए। वह जागृत भावना, जिस सूत्र से प्रतिष्ठापित हो, जिस नेता द्वारा प्रचारित हो, वह सचमुच ही महान

हो,—तेज-पुञ्ज हो ! वह राम हो, कृष्ण हो, अथवा गांधी हो। और देश में, महेन्द्र को ऐसा नेता कोई दीखता नहीं था। वह स्वयं भी काफी कमजोर था। उसकी शक्ति सीमित थी। उसकी कुछ इच्छाएं भी थीं, जिनका अभी दास बना हुआ था। वह चेष्टा करता था कि इच्छाओं को तोड़ दे, मन की आवश्यकताओं को मार दे ! कदाचित यही कारण था कि महेन्द्रकुमार ने लगभग एक वर्ष से सिर और डाढ़ी के बाल नहीं बनवाये थे। उसकी डाढ़ी बढ़ गयी थी। सिर पर बालों की जटा बन गयी थी। गाढ़े की मिरजई और घोटों तक की धोती तथा पैरों में चप्पल यही उसका अवशेष परिधान तथा आधार था। भोजन में जहां भी, जो-कुछ मिलता, वह पाता था। उसी से सन्तुष्ट होने का प्रयत्न करता था। सम्भवतः यही महेन्द्रकुमार का कर्मयोग पाठ था। वह इसी प्रकार योग-क्रिया की पाठशाला का पाठ पढ़े जा रहा था। किन्तु उस युवक के उस सरल रूप के अन्तर में जो आग धधक रही थी, वह काफी प्रचण्ड थी। उस आग में घी डालने की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु स्वयं महेन्द्रकुमार किस प्रकार देश का दुराचार अपने हृदय की आग में जला दे,—हाय ! यह विधि अभी उसके हाथों से दूर थी। निदान, उसकी प्रगति भी कुंठित बनती जा रही थी। मनोदशा स्वस्थ नहीं, तो कार्य की सन्तुष्टि भी उसे प्राप्त नहीं हो सकी थी।

नया प्रातः अभी ठीक से उग नहीं पाया था कि गंगा का पिता दौड़ता हुआ महेन्द्र के द्वार पर आया और चीख कर बोला—बाबू, मेरी गंगा !

महेन्द्र ने उस वृद्ध की आंखों में आंसू देखते ही रहस्य समझ लिया। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। साथ चल दिया। रास्ते में

वह गंगा के पिता से नहीं बोला। कुछ समझना भी नहीं चाहा। उसके घर पर जाते ही देखा कि भीड़ है। गंगा खून में लथपथ चारपाई पर पड़ी है। जैसे उसकी सांस टूटना चाहती है। महेन्द्र को देखते वह कराह उठी—मेरे परमात्मा।

देखते ही, महेन्द्र उसकी ओर झुक गया—मैं जानता हूँ यह किसने किया...उस पाजी को...

तभी, गंगा ने अपना हाथ उठाया और महेन्द्र के मुंह पर रख कर कहा—बाबू, ऐसा न कहना! भीख मांगती हूँ कि उसे क्षमा कर देना। और स्वतः ही उसने धीरे से कहा—वह जमींदार का नौकर रामू...

उस धीमी आवाज को महेन्द्र ने सुन लिया। वह बोला—'गंगा वह समाज का दोषी है! उसे सजा मिलनी चाहिये!'

गंगा ने फिर कठिनाई से कहा—'रोग का यह निदान नहीं है, मेरे बाबू! यह प्रायश्चित नहीं। गंदे पानी की धारा तो ऊपर से गिरती है! वचन दो, मुझे भूलना नहीं...उससे कुछ कहना नहीं!' और इसके तदन्तर ही गंगा ने दम तोड़ दिया। उसका सिर महेन्द्र के हाथों पर ही ढुलक गया। देखते-देखते वह सुन्दर पंछी दृष्टि से दूर जाकर तिरोहित हो गया!

उन्तालीसवाँ अध्याय

देर से, अभयबाबू को बात का पता था कि रानी जहाँ उनकी गति-विधि से सहमत नहीं थी वहां वह अपने मन के प्रतिकूल भी चलने में असमर्थ दीखती थी। कदाचित यही कारण था कि समाज-सेवा में वह फिर सम्पूर्ण शक्ति लगाकर सन्नद्ध हो चुकी थी। अभयबाबू ने देखा कि वह नगर के दलित-वर्ग और श्रमिक-वर्ग को न केवल प्रेरणात्मक सहायता प्रदान करती, अपितु शक्ति भर आर्थिक सहयोग भी देती। रानी अनेक बार अपनी साड़ियां और जेवर भी उस समाज में वितरित कर आई थी। और यह सब निश्चय ही अभयबाबू को पसन्द नहीं था। लगता था कि उस मानव में, जो महामानव बनने की कल्पना करता—अब ऐसा विचार शेष नहीं रह गया था कि वह अपना सर्वस्व ही समाज की झोली में डाल दे—अपने को समर्पित कर दे।

निदान, अभयबाबू के समान नगर के धनपति, उच्च अधिकारी प्रायः पति के समक्ष ही रानी की आलोचना करते और कहते, श्रम और बुद्धि के इस युद्ध में,—पूंजी और श्रम का अनुपात किसी अवस्था में भी नहीं भुलाया जा सकता। और आपकी पत्नी का मत कदाचित यही है कि श्रम बड़ा है,—बुद्धि, अर्थात पूंजी का अस्तित्व प्रायः बरबस ही स्वीकार कर लिया गया है। ऐसे व्यक्ति अभयबाबू को सलाह देते, कि वे रानी देवी को समझायें। समाज में फैलते हुए इस विरोधाभास का अन्त करें। पूंजी और बुद्धि नहीं होगी, तो श्रम अर्थात श्रमिक-वर्ग जीवित नहीं रह सकेगा। सहयोग आवश्यक है। आत्म-निर्भरता की जरूरत है। परन्तु इसके

यह अर्थ कदापि नहीं कि बुद्धि प्रबल हो, तो समाज का शोषण कर दिया जाये,—श्रमिक-वर्ग का अस्तित्व स्वीकार ही न किया जाय। रानी का यही मत था। शक्ति का दुरुपयोग करना तो क्रूरता है। दम्भ का खुलेआम प्रदर्शन करना न केवल अहंमन्यता है, अपितु बर्बरता है। किन्तु वे धनिक अभयबाबू से कहते, आप देखिये न, देश में यन्त्र न होंगे, पूंजी न होगी और कारखाने न खोले जायेंगे, तो देश चल नहीं सकेगा। आत्म-निर्भर बनकर ही हमारा देश स्वतन्त्र तथा दृढ़ रह सकेगा। रहा श्रम,—श्रमिक-वर्ग—उसको ऊपर उठाने के लिए हमने क्या नहीं किया;—क्या नहीं किया जाता! कारखानों की पूंजी से उन्हीं के लिए अस्पताल खुलते हैं। शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। उनके लिए विनोद और जीवन का स्तर ऊंचा उठाने का भी ध्यान रखा जाता है। फिर भी पूंजीवाद दोषी है, इसे दोष दिया जाता है,—भला क्यों? इसलिए कि इसके पास रुपया है? शक्ति है? वैभव है? अभयबाबू से कहा जाता, श्रीमान, पूंजी रहेगी, तो यह रहेगा। उच्च-वर्ग में ऊंचाई पर बैठने का आत्म-भावभी रहेगा। आप यह चाहें कि समाज एक ही धारा में बहे, एक ही प्रेरणा से प्रेरित रहे, तो यह कभी भी सुगम नहीं रहेगा। विभेद रहेगा। जीवन को देखने का भेद रहेगा।

वस्तुतः अवस्था यह थी कि अभयबाबू स्वयं इस बात के प्रतीक थे। वे समझने लगे थे कि जीवन को पाने और रखने की एक स्थिति नहीं। अनेक स्थितियों और विचारधाराओं में बहता हुआ यह सामाजिक प्राणी कदाचित आदि काल से ही अपने तईं जुदे-जुदे मार्ग प्रशस्त करता आया है। और यही इसकी उन्नति का रहस्य है।

कदाचित यही कारण था कि अभयबाबू अब निश्चित रूप से रानी की बात से सहमत नहीं हुए। जिसका परिणाम यह हुआ कि

उन्हीं के घर में विरोध और क्रांति का लावा सुलग रहा था। उस लावे से कब बड़ा विस्फोट हो जाये, ऐसा भी एक अकल्पनीय विचार बरबस ही, उनके मानस से आकर टकरा जाता। लेकिन इस आशंका से भयभीत बनने की बात तो दूर रही, अभयबाबू उस दिन भी अपने विचारों से नहीं हटे कि जब एकाएक ही, पुत्र सहित रानी ने पति का वह विशाल भवन त्याग दिया और नगर के एक छोटे भाग में थोड़े मूल्य पर किराये का मकान लेकर रहना आरम्भ कर दिया। यद्यपि, रानी का ऐसा प्रयत्न देखकर अभय-बाबू को सुख नहीं मिला। उनका मानस भी स्थिर नहीं रह सका। किन्तु विद्रोह की जिस साकार प्रतिमा से उनका सामना पड़ गया, उन्होंने तब भी मौन रहना ही उचित समझा। अवस्था यह थी कि यदि अभयबाबू पत्नी का साथ देते, तो वे नगर के बने हुए नेता के पद से हटाये जा सकते थे। वे समाज के उच्च वर्ग का विश्वास भी खो सकते थे। और वह विश्वास ऐसा था कि जो बरबस, उन्हें समाज और देश के आकाश पर उड़ाये लिये जा रहा था। निःसन्देह, वह गौरवान्वित पद था। उस पद को पाने के लिए कोई भी विचारक बड़ी-से-बड़ी कुरबानी करने की बात सोच सकता था। फलस्वरूप, वही गौरवपूर्ण पद अभयबाबू ने प्राप्त कर लिया था। उनका घर देश और समाज के नेतृत्व का केन्द्र बना हुआ था। वहां गुप्त बैठकें होती थीं, देश की भलाई के लिए विचार निश्चित किये जाते थे।

अस्तु, उन्हीं दिनों की बात है कि जब रानी ने पति और पति-गृह को त्याग दिया, तो यह समाचार जहाँ नगर के कोने-कोने में फैल गया, वहाँ जेबुन्निसा का मानस भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। अवसर की बात यह थी कि उन्हीं दिनों जेबुन्निसा

का विवाह कथित बैरिस्टर से होने वाला था। सुना गया कि उस विवाह-समारोह के लिए कुछ सामग्रियों का नियोजन भी सम्पादित हो गया। किन्तु जब जेबुन ने रानी के उस त्याग की बात सुनी, तो मानो उस सुसंस्कृत युवती का मानस अनायास ही उद्वेलित बन गया। उसने विवाह का प्रस्ताव रोक दिया। रानी के पास जाकर देखा कि सच, जैसे उसने सन्यास ले लिया। स्वतः ही स्वीकार कर लिया कि जीवन की ममता, त्याग और सेवा को ग्रहण करने का अर्थ ही यह है कि अपनी इच्छाएं मार दो। मन का कम्पन भुला दो। जब जेबुन्निसा रानी के पास पहुंची, तो उसे यह देखकर भी अचरज हुआ कि रानी के पास जो ढेर सारे पत्र आये हुए थे, उन सबका केवल एक ही भाव था,—एक ही स्वर, कि जीवन का त्याग बड़ा है...रानीने जिस त्याग का पाठ समाज को अर्पित किया, निःसन्देह, उस त्याग की आत्मा का अनुष्ठान सबसे बड़ा है। जेबुन्निसा को उस समय यह देखकर अतिशय अचरज हुआ कि उन साधुवादिता से पूर्ण पत्रों में संस्थाओं, वर्गों, नेताओं के तो पत्र थे ही, नगर और देश के उच्च सरकारी अधिकारी तथा चोटी के पूंजीपतियों के पत्र भी सम्मिलित थे। उन सभी पत्रों की एक ही वाणी थी। उनके आकाश का एक ही घोष था,—तुम महान हो,—तुम हो सफल क्रान्ति-दूत !

उन पत्रों में से अधिकांश पढ़ कर जेबुन्निसा ने साँस भरी और रानी की ओर देखा। किन्तु रानी ने उसकी दृष्टि को देखा और मुसकरा दिया। जेबुन ने कहा—'भाभी, मैं एक निवेदन भी करने आई हूँ। जीवन में आज फिर तुमसे कुछ मांगने आई हूँ।'

बात सुनी और रानी ने उसकी ओर देखा—'मेरे पास क्या है। कुछ है, तो तुझे लेने का अधिकार है।'

जेबुन ने कहा—'मैं पहिले यह नहीं समझी कि तुमने इतना बड़ा त्याग क्यों किया, किस प्रेरणा पर किया ?'

सुन कर रानी मुसकरा दी—'तू ने भैया महेन्द्र से पत्र-व्यवहार तो रखा नहीं। रखती, तो समझ लेती कि उसी की प्रेरणा तथा उद्बोधन से मैंने इतना सब किया है। जेबुन, भैया महेन्द्र ने यह नगर इसीलिये छोड़ा कि उसका बहनोई पथ-भ्रष्ट हो चला था। और मेरा यह भैया आज भी जीवन की पूजा का महान व्रत लेकर जनता-जनार्दन की सेवा में लगा है। जो कुछ कहा, उसे कर रहा है। वह अपने पथ पर चल रहा है। पिछले दिनों भारतीय सरकार की ओर से उसे एक उच्च पद पर बैठने का निमन्त्रण मिला, परन्तु भैया ने उसे अस्वीकार कर दिया...भैया ने साफ कह दिया, मेरे द्वारा काम करने का यह अर्थ कदापि नहीं कि सरकार मुझे कुछ दे। मुझे तो जनता-जनार्दन का आशीष पाना ही प्रधान पुरस्कार लगता है।'

तदन्तर ही, रानी ने पूछा—'और तेरा विवाह ? कब होगा ?'

जेबुन ने अपने स्वर पर जैसे भारीपन लाकर संयत होते हुए कहा—'मेरा विवाह नहीं होगा, भाभी !'

'विवाह नहीं होगा ! क्यों ?' चकित बनकर रानी ने कहा—'दिखता है, अभी तेरा लड़कपन नहीं गया।' वह बोली—'न, जेबुन ! विवाह कर! जल्दी कर। तेरा घर भी आबाद हो। आज की तरह सूना न हो !'

जेबुन ने कहा—'केवल विवाह इसका समाधान नहीं है, भाभी !'

रानी ने बात सुनी और एकाएक मत नहीं दिया।

जेबुन ने फिर कहा—'मेरे जीवन में एक हवा आई थी, जैसे आँधी उठी थी; उसी ने मेरा जीवन जाने कहाँ-से-कहाँ उड़ा दिया।'

इतना कहते हुए उसने सांस भरी—'और आज मैं उसी आँधी को अपने मानस में उठती हुई पाती हूँ। मैं उस तेज हवा का अस्तित्व आज भी स्वीकार करती हूँ, भाभी!' उसने कहा—'याद है न, जब तुम मुझे पहिले-पहिल मिली थीं, तो मैं सम थी,—सपाट! जीवन में अछूती। सच, मौन! परन्तु तुम्हारे सहयोग से, तुम्हारी प्रेरणा से मैं जाने क्या-क्या पा गयी। क्या-कुछ सीख गयी। एक अनोखी, अकल्पनीय भावना से भी अन्तभू त बन गयी। परन्तु आज जब तुम्हें नयी धारा में बहती हुई पाती हूँ तो मैं स्वतः अपने-आपको भी शान्ति से दूर हुई देखती हूँ।'

जेबुन से इतनी बात सुनी, तो रानी मुसकराई नहीं, वह मौन और गंभीर बन गयी।

जेबुन बोली—'भाभी, आज भी तुम मुझे सहारा दो। दुर्बल हूँ मैं, तो अपना यह महान सम्बल मुझे प्रदान करो!'

एकाएक रानी ने कहा 'परन्तु क्या...क्या जेबुन!'

जेबुन ने कहा—'एक सप्ताह के विचार मन्थन के बाद ही, मैं तुम्हारे पास आई हूँ। आज मैं भी शरणागत बनी हूँ। मैं समझी हूँ कि मेरा धन मेरा नहीं है। जनता का है। मेरा जीवन भी मेरा नहीं है।'

इतना सुन कर रानी ने साँस भरी—'जेबुन, इतना सोचता कौन है! वैसे तो हमारा कुछ भी नहीं है। सभी सामूहिक है!'

जेबुन ने कहा—'देश में अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। राजनीति के प्रभाव में जनता की दुर्दशा हो रही है। देश में और हमारे नगर में आये हुए शरणार्थियों की अवस्था सचमुच ही चिन्तनीय है, भाभी! मेरा विचार है कि अपना इतना बड़ा मकान शरणार्थियों को दे दूँ। मैं अपना अधिकार छोड़ दूँ। मेरे पास

जितना रुपया है, वह भी सरकार को सौंप दूँ। फिर मैं अकेली हूँ, निर्द्वन्द्व हूँ। पढ़ी हूँ। कहीं भी पेट का गुजारा कर सकती हूँ।'

उत्सुक दृष्टि से, मानो हर्ष के साथ रानी ने जेबुन को लक्ष किया। कुछ कहना भी चाहा।

किन्तु जेबुन ने कहा—'यह मेरा निश्चय अटल है, भाभी!

रानी ने कहा—'सचमुच! निःसन्देह!'

लाल बन कर जेबुन ने कहा—'मैं पठान की बेटी हूँ, भाभी! झूठ नहीं कहती!'

किन्तु रानी ने अपना स्वर साध कर कहा—'फिर सोच! जीवन की परिस्थति सोच, जेबुन! मेरी दिशा और है, तेरी और! मैंने तो पति के पाप का प्रायश्चित किया है!'

जल्दी में जेबुन ने कहा—'प्रायश्चित मैंने भी किया है। भाभी! महेन्द्रबाबू को एक बार वचन देकर फिर दूसरा जो निश्चय किया, वह सचमुच ही मेरे जीवन का गुरुतर अपराध था। नारी का पाप था!'

सहृदय भाव में रानी बोली 'न, वह विषय तो मेरे अधिकार का था। चुनाव का था। तुझे ऐसा ही शोभता था।'

तेज स्वर में जेबुन ने कहा—'तुम कुछ कहो भाभी, परन्तु वह मेरा अपराध था। लेकिन आज मैंने निश्चय किया है, भले ही, महेन्द्रबाबू मुझे पत्नी न स्वीकार करें, किन्तु मेरे लिए पति रूप में उनके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति अँगीकार करना सहज और सुप्राप्य नहीं हो सकेगा! कल ही मैंने अपनी संपत्ति के लिए सरकार को लिख दिया है। इस मास में ही, मेरा जीवन बदल जाना है। बीस हजार में मोटर खरीदी थी, अठारह में सौदा कर दिया है।'

उस समय रानी सचमुच ही जैसे कठोर रूप में गम्भीर थी। उसकी वाणी अवरुद्ध हो रही थी।

जेबुन ने कहा—'तुमने महान कर्म संपादित किया, भाभी! बड़ा त्याग किया। सुनती हूँ गुलाबसिंह मिल की हड़ताल को दूसरा महीना लगा है। मजदूर अब तक टिके रहे, यह तुम्हारा ही काम है। लेकिन होगा क्या! कैसे!'

रानी ने चिन्तित बन कर कहा—'यही एक समस्या है! जरूर इस समस्या के साथ मेरा जीवन भी समाप्त हो जाने वाला है!'

जेबुन बोली—'गुलाबसिंह मिल के मालिक देश के सबसे बड़े पूँजीपति हैं। सुनती हूँ सरकार के बहुत से काम उन्हीं के इशारे पर होते हैं। हमारे देश के नेता ऐसे ही पूँजीपतियों के हाथों में खेल गये हैं!'

उद्विग्न स्वर में रानी बोली—'यही चिन्ता है! समस्या है!'

चिन्तित बन कर जेबुन बोली—'लेकिन इस समस्या का अन्त क्या है!'

स्थिर स्वर में रानी बोली—'बलिदान—आत्म-त्याग!' उसने कहा—'जेबुन्निसा, देश स्वतन्त्र तो हो गया, परन्तु अभी आत्म-निर्भर नहीं बना। कहने को प्रजातन्त्र है, किन्तु समाज तो पूँजी-पतियों के हाथों में खेल रहा है। अभी उन्हीं का स्वार्थ सर्वोपरि है। वही बोलता है। और उसी जहरीले नाग को मारने के लिये त्याग की आवश्यकता है। बलिदानों की अभी देश को आवश्यकता है!'

सांस भर कर जेबुन बोली—'इस देश में बलिदानों की परंपरा है।'

रानी ने कहा—'और वह परंपरा जिस दिन रुकेगी, देश मर जायगा,—अकर्मण्य और बुजदिल बन जायगा! खून बहता

रहे,—युवक और युवतियों के मुण्डों से मा-भारती का शृङ्गार होता रहे, तभी तो जीवन मिलेगा,—नव-जागरण दिखाई देगा, मेरी रानी !'

जेबुन ने कहा—'भाभी, तुम्हारे कन्धों पर बड़ा काम है। प्रतिरोध भी तुम्हारे मार्ग में पथरीली चट्टान बन कर खड़ा है।'

रानी ने हँस दिया—'यही तो इस जीवन की परम्परा है, जेबुन्निसा !'



चालीसवाँ अध्याय

गंगा की वह मृत्यु जैसे उस गांव के लिए एक अभिशाप थी। दूर-दूर तक यह बात फैल गयी थी कि गंगा जमींदार द्वारा मरवा दी गयी। एक दिन जब महेन्द्र ने उस रामू चमार को अपने पास बुलाया और उसे गंगा का खूनी बताया तो तब, वह रामू सचमुच ही कांप गया। उसने साफ ही कह दिया कि यह जमींदार का काम था। उसी की प्रेरणा पर मेरे हाथों यह कुत्सित काण्ड हो गया। जमींदार गंगा को पाना चाहता था। उसे रुपया देना चाहता था। इस रहस्य को खोलने के साथ रामू ने यह भी स्वीकार किया कि इस काण्ड में केवल उसी का हाथ नहीं; अनेक व्यक्तियों का संगठित चक्र गंगा के पीछे लगा हुआ था। उस प्रसंग में ही, रामू ने बतलाया कि तुम्हारे लिये भी कई बार ऐसा प्रयत्न किया गया, परन्तु वह कार्य सफल नहीं हुआ।

परिणामस्वरूप, रामू, जमींदार व अन्य कई व्यक्तियों को पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया। मुकदमा चला और रामू तथा जमींदार को खून करने के अपराध में फांसी का दण्ड दिया गया।

इस कथा से, उन गांवों में जैसा आतंक छाया, वह इतना गहरा था कि जिसने भी सुना, सनाका खाकर रह गया। क्योंकि पहिले तो एक नारी के प्राण लेने का प्रतिकार यह हुआ कि दो के प्राण गये और कई व्यक्ति वर्षों के लिए जेलों में डाल दिये गये। उनका मुकदमे में जो व्यय हुआ उससे प्रायः सभी मोहताज बन गये। दूसरी बात इससे भी भयानक थी। गंगा सरीखी स्नेहमयी नारी को जिस गिरोह द्वारा मरवा दिया गया, उन घरों के शेष व्यक्तियों

को भी इसी लिए जाति से बहिष्कृत किया गया कि उनके पूर्वजों का कलंक सभी के लिए जातीयता के नाते लांछन बन गया था।

उसी समय महेन्द्र ने अनुभव किया कि दया और आदर्श का पाठ पढ़ने के लिए भी तैयारी की जाती है। शासन का कार्य व्यवस्थित रहे, इसके लिए कड़ाई की व्यवस्था ही अभी तक उपयुक्त दीखती है। देश जिस दिन उदार होगा, महान होगा, दीन और पराश्रित नहीं होगा; उस समय भले ही, अनाचार न हों, चोर न हों, खूनी न हों, परन्तु जब तक इस प्रकार का दूषित वातावरण है, तो शासन का कठोर दण्ड भी अपना काम करेगा। समाज अथवा व्यक्ति का शरीर सड़े, तो बड़ा आपरेशन ही उसके लिए अधिक सुखकर रहेगा।

इधर देर से, रानी के पत्र नहीं आ रहे थे। अभयबाबू के अनेक वक्तव्य भी अखबारों द्वारा महेन्द्र ने पढ़ लिये थे। वे सभी जैसे प्रतिकार की भावना से प्रेरित होकर प्रहारात्मक ढंग से लिखे गये थे। देश में, किस प्रकार लोग चोर बाजारी और जन साधारण की आवश्यकताओं का गला घोंट कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं, इसी के ऊपर अभयबाबू अपने वक्तव्य लिख-लिखकर सरकार और पूंजीपतियों के कान खोलने का प्रयत्न कर रहे थे। निश्चय ही, उन वक्तव्यों में, अभयबाबू पर्याप्त विक्षुब्ध और पीड़ा से भरे हुए लगते थे, जैसे वह कई वर्ष पूर्व की भाषा और भावना में बोल रहे थे। उन वक्तव्यों का गांवों में भी प्रचार हो रहा था। वे जगह-जगह पढ़े जाते थे। लोग आपस में बैठ कर उनका उल्लेख करते थे।

किन्तु गांवों के उस क्षेत्र में बैठा हुआ महेन्द्रकुमार वक्तव्यों की आवश्यकता अनुभव करके भी, इसलिए पीड़ा से भरा था कि वह स्वतन्त्र राष्ट्र की आत्मा में जिस ज्योति का प्रकाश पाना

चाहता, वह परम दृश्य अभी स्वप्नवत् था। उसके लिए विशाल त्याग की आवश्यकता थी। भारत माता महान बलिदान चाहती थी। लेकिन महेन्द्र देखता कि राष्ट्र सिसक रहा है, क्षुधातुर और नग्न-प्राय: मानव निरा विक्षिप्त बना हुआ, जैसे युग-युग से शापित बनकर अपना सिर धुन रहा है ! वह कराह रहा है। राष्ट्र की उस कसक में जितनी वेदना और पीड़ा भरी थी, जब भी, महेन्द्र उस ओर लक्ष करता, तो वह सहम जाता। वह किसी भी बाला को जब नग्न प्राय: देखता, तो स्वत: लज्जा से भर जाता। किसी बालक को भूख से प्लावित पाता, तो प्रत्यक्षत: अपनी आत्मा का चीत्कार सुन पाता। हाय ! जिस देश में दूध की नदियां बहती थीं, वहीं पर बूँद भर दूध का भी अभाव हो गया। पुष्टिकर भोजन तो मिलना दूर, जीवन भर रखने लायक उपालम्भ नहीं रहा। उन्हीं गांवों में महेन्द्र ने लोगों को छाल ओढ़ते और पेड़ों के पत्ते खाकर क्षुधा निवृत्ति करते पाया। एक गांव में महेन्द्र ने यह भी देखा कि मा अपने बच्चे को चार आने में बेच कर शेष बच्चों को आहार देने में समर्थ हुई थी। एक नारी को राख घोल कर बच्चे को पिलाते हुए भी वह देख सका था। देश की इस विपिन्न, असहनीय और दारुण अवस्था का दर्शन पाकर महेन्द्रकुमार अब इस योग्य तो रह नहीं गया था कि जीवन की ऊँचाई देखता। उसका विहाग सुनता ! उसके अन्दर तो अब ज्वाला ही शेष थी। जिस स्वेच्छाचारिता का शिकार वह मानव को बना हुआ पा रहा था, उसी विषैले नाग को मार देने की शक्ति प्राप्त करना उसका लक्ष था। यही कारण था कि अब वह दूर-दूर तक जाता। समाज से मानव का ध्येय प्राप्त करने की बात कहता। मनुष्य को मनुष्य बनने की सीख देता। जब रानी ने उसे वापिस लौट आने के लिये अनेक पत्र लिखे और अन्त

अभयबाबू के वक्तव्य भी उसे पढ़ने को मिले, तो वह जल्दी लौट चलने की बात को छोड़ कर अपने काम में अधिक स्फूर्ति और तन्मयता से लग गया था। वह प्रत्यक्ष देखता कि जीवन तो जाने वाला है,—जा सकता है! अतएव, जितना भी उसे सार्थक बनाया जा सके बनाया जाये। महेन्द्र का इस प्रकार जीवन की आन्तरिक इच्छाओं के प्रति वैराग्यपूर्ण विचार रखने का जो कारण हुआ, संभवतः उसका कारण थी, वह गंगा कि जिसे खोकर वह सचमुच ही अशांत बन गया था। लगता था कि उस परम भावमयी युवती को खोकर सचमुच ही, जैसे महेन्द्र के जीवन का आंगन सूना होगया। उसमें कोलाहल नहीं रहा। उस जीवन का अन्तर्नाद प्रायः समाप्त हो गया। महेन्द्र देख पाता कि जिस जाति में गंगा सरीखी नारी मारी जा सकती है, उसका सतीत्व छीनने का प्रयत्न किया जा सकता है, वहां क्या किसी का सुरक्षित रहना संभव है—शायद नहीं! कदाचित यही कारण था कि महेन्द्रकुमार गंगा को खोकर, निस्सहाय बनकर भी, जैसे बरबस, अपने कार्य में लगा था। वह आगे बढ़ता जाता था। उसका यह मत पूर्णरूप से सुरक्षित था कि अब देश का सुधार होगा, नागरिक सत्य और अहिंसा को स्वीकार करेगा, तो पहले गांव का नागरिक ही कर सकेगा। उसका यह भी मत था कि भारतीय-राष्ट्र का गांव ऊपर उठा, तो देश ऊपर उठेगा। क्योंकि अंग्रेज जाति ने भारतीयों के जिस मर्मस्थल पर चोट की, वह भारतीय ग्राम था। गांव उजाड़े गये और नगर बसाये गये। उन्हें अँग्रेजी शिक्षा-दीक्षा से प्रभावित किया।

परिणामतः महेन्द्रकुमार के प्रयत्न का ही यह फल था कि हजारों वर्ग क्षेत्र की भूमि को सरसब्ज बनाने के हेतु स्वयं किसानों ने नहर खोदी। पानी प्रवाहित किया। मार्ग निर्मित किये। कुए

खोदे। ऊजड़ भूमि को उपजाऊ बनाया। गांवों में चरखे और अन्य दस्तकारियों का तांता बिछ गया। कल जिसके पास काम नहीं था, वह अवसर पाते ही कार्य में व्यस्त दिखाई देने लगा। छूत अछूत का भेद उन गांवों से प्रायः मिटने लगा। महेन्द्रकुमार द्वारा जिस शिक्षा प्रणाली का उन गांवों में प्रचार किया जा रहा था, उसके लिये केवल पाठ्य पुस्तकों का आश्रय लेना ही पर्याप्त नहीं था, बल्कि इस क्रिया को गौण मान लिया गया था। पर्दे पर दिखाई जाने वाली तस्वीरों और व्याख्यानों द्वारा ही प्रायः वहाँ के नागरिक को सबोध और सबल बनाया जाता। उन सैंकड़ों गांवों में शायद ही कोई ऐसा बचा हो, कि जहाँ पर महेन्द्रकुमार ने स्वयं गांव की सफाई का काम अपने हाथ से करके न प्रदर्शित किया हो। यद्यपि, गंगा को खोकर उसका एक हाथ टूट गया था, परन्तु कार्य तो जीवित था, भावना अमर थी, हृदय की क्षमता भी जागरूक थी, इसलिए महेन्द्र अपने उन हजारों साथियों के साथ जीवन की रीति-नीति का भली प्रकार प्रचार कर रहा था। वह पूर्ण सफलता के साथ जन-साधारण को बता रहा था कि राष्ट्र-प्रेम और जाति-प्रेम पाकर हमारा देश ऊपर उठेगा। मानव भूखा नहीं रहेगा। न देश दुर्बल रहेगा। अब उसकी शिक्षा का आधार ही यह था कि मानव उदार हो, मानव सच्चा और सबल हो। भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा का विमल-स्रोत उसकी दृष्टि में वह जन-जन था, जो भारतीयता का प्रतीक बना हुआ भी जीवन के अन्धकार में पड़ा था।

उन गांवों में बैठा हुआ, वह परम साधु, वह कीर्तिवान्, कितना सफल, कितना तेज-पुंज बन कर जन साधारण में आविर्भूत हुआ, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। महेन्द्र उन नागरिकों का पथ-प्रदर्शक और गुरु था। वह अज्ञात सन्यासी,

वह जीवन का विमल पाठ, मानो सचमुच ही ग्रामीण नारी और पुरुष के लिये उजागर बन गया...उनकी श्रद्धा का पात्र हो गया! वह जहाँ जाता, समाज उसके चरण-पाँवड़ों में अपनी आँखें बिछा देता। वह समाज पुकार उठता—तुम हो, जन्म-सिद्ध...तुम हो जगत-सिद्ध!

और उत्तर में केवल मुसकराने अतिरिक्त भला उस महेन्द्र के पास क्या रखा था। वह सन्यासी नहीं था, लेकिन सर्वत्र यही समझा जाता था।

इकतालीसवाँ अध्याय

उन्हीं दिनों महेन्द्र को यह नया समाचार पत्रों द्वारा पढ़ने को मिला कि रानी ने पति-गृह का त्याग कर दिया। इस समाचार को पाकर महेन्द्रकुमार अतिशय उद्वेलित हो गया। उसका अन्तर कोलाहल से भर गया। नगरों में उस समय कितनी अशांति थी, यह तो वह अनुभव कर रहा था, परन्तु उस अशान्ति का ग्रास स्वयं रानी को बनना पड़े, ऐसी कल्पना स्वयं महेन्द्र नहीं कर सकता था। पत्रों में पढ़े गये अभयबाबू के वक्तव्य, यद्यपि इस बात के सूचक थे कि शान्ति नहीं, समाज में एकात्मीयता नहीं; परन्तु उन वक्तव्यों की आड़ में अभयबाबू सरकारी-वर्ग और पूंजी-वर्ग से कोई घनिष्ठ समझौता करके अपनी आत्मा बेच देंगे, कदाचित ऐसा भरोसा उसे नहीं था। और अब अवस्था यहां तक पहुंची, रोग इतना बढ़ गया कि स्वयं उसकी बहिन को घर त्यागना पड़ा, तो महेन्द्रकुमार ने अनुभव किया कि जरूर ऐसी क्रान्ति कर के भी रानी ने अपना लक्ष निर्धारित करते समय पति के कल्याण को प्रमुख महत्व दिया होगा। अभयबाबू जिस रास्ते पर बढ़ चले हैं, उससे मोड़ने के लिए ऐसे ही आवाहन पर उसे भरोसा था। कदाचित रानी का यह उद्बोधन सार्थक हो सकेगा।

उसी समय देर की प्रतीक्षा के बाद, महेन्द्रकुमार को रानी का पत्र मिला। उसका वही अन्तिम पत्र था। उस पत्र में लिखा था कि एक दिन तुमने अपनी बहिन से आशा की थी कि नारी के रूप में, अपने पति और भाई को प्रेरणा दूं। सो, उसी प्रेरणात्मक

प्रभाव को डालने के लिए मैंने यह पग उठाया है। घर त्याग दिया है। विनोद भी मेरे साथ आ गया है।

पत्र के अन्त में रानी ने जेबुन्निसा का प्रसंग लिया और लिखा कि जेबुन का त्याग मुझसे भी बड़ा है। उसने अपने पिता का धन और जायदाद का अधिकार सरकार के हाथों में सौंप दिया। अपना बड़ा मकान शरणार्थियों को दे दिया।

इसी वार्ता के अन्त में, बड़ी भावनात्मक भाषा में, रानी ने लिखा कि जेबुन्निसा का विवाह बैरिस्टर से नहीं हुआ, न होगा। उसका विवाह तुमसे हो चुका है। जेबुन का कहना है, नारी का वचन एक है, मन एक, आत्मा एक, तो भला अपनी काया के प्रति वह न्याय न करे, इसका जगह-जगह विक्रय करे, तो इतना अधिकार उसे कहां मिला है! नारी को ऐसा सुयोग भला कहां उपलब्ध हुआ है! अपने उस पत्र में रानी ने लिखा कि जेबुन का मन आज भी कोमल है, पवित्र है। वह तुम्हारी दृष्टि में फिसली, दूर हुई, इसका भी उसे पता है।। कदाचित लज्जा है इसीलिए जेबुन अब तुमसे कुछ नहीं कहेगी। हाथ तुम्हीं को बढ़ाना है। उसका कोई दोष हुआ, तो उसे क्षमा कर देना है।

अवसर की बात थी कि उस पत्र के तुरन्त बाद महेन्द्र को जेबुन्निसा का भी पत्र मिला। जो केवल गंगा की मृत्यु के प्रति समवेदना को लेकर लिखा गया था। अपने उस पत्र में जेबुन ने कहा, नारी के लिए यही श्राप है कि यह दुर्बल है, मनुष्य द्वारा कभी भी, युग-युगान्तर से चली आई परम्परा के अनुरूप सतायी जाती है। कदाचित आगे भी बर्बर पुरुष की कोप दृष्टि का इस नारी को शिकार बनना पड़ेगा। गंगा बहिन का जिस प्रकार बध किया गया, मानव की जिस दुर्भावनावश उसे जीवन से उठा दिया गया;

यह सचमुच मनुष्य-समाज के लिए एक बड़ा कलंक है। कृपया, मेरी समवेदना गंगा के माता-पिता को दे दीजिये। परमात्मा उस परम नारी की आत्मा को जल्दी इस देश में भेजे, यही मेरी आकांक्षा है।

पत्र के अन्त में, जेबुन ने रानी का उल्लेख किया और कहा, ऐसी आदर्शमयी और तेजोमयी भाभी का जीवन सचमुच ही मुझे महान दीखता है। भाभी ने बड़ा त्याग किया है। पति के कारण समाज की लांछना, प्रतारणा का उन्हें ही शिकार होना पड़ेगा, ऐसी आशा तो किसी को नहीं थी, परन्तु स्वतः ही भाभी ने पति का अपराध अपना ही स्वीकार किया, यह सचमुच ही आज की नारी के लिए एक अनोखी और अकल्पनीय परम्परा है। सुनती हूँ, यही भारतीयता है,—भारतीय नारी की दार्शनिकता है। एक दिन किताबों में पढ़ा था कि पति के लिए नारी ने कैसा और अनुभूति-पूर्ण आत्म-त्याग किया, परन्तु आज तो मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि नारी का त्याग, नारी का व्रत और नारी का जीवन-तप, आज भी अपने कुल, पति तथा पुत्र के लिए सुरक्षित दीखता है।

उसी पत्र में, जेबुन्निसा ने लिखा कि भाभी के कर्म और सिद्धान्त का अर्थ यह कदापि नहीं कि भैया अभयबाबू का अकल्याण हो। भाभी का तो केवल इतना ही अर्थ है कि उनके मन पर चोट लगे और जो जागरूकता, जीवन के प्रति जो सम्पन्नता उनमें एक दिन दिखाई दी थी, वही फिर चरितार्थ हो। जेबुन्निसा ने लिखा कि यही भाभी की महानता है। यही नारी का आदर्श है। नारी का त्याग है। उसने बताया कि आज-कल भाभी ने स्वयं उपार्जित करके ही, अपना पेट भरना आरम्भ कर दिया है। विनोद कालेज में पढ़ता है, तो उसका व्यय स्वयं ही उठाना स्वीकार किया है। अभी तो वह मजदूरों के बच्चों को पढ़ाती हैं। समय मिलता है,

तो सूत कातती हैं। कहती हैं,—मेरा बच्चा धनवानों का पैसा खाकर शुद्ध नहीं बन सकेगा। और मेरा पुत्र शुद्ध न हो, सच्चा तथा निर्भीक नागरिक न हो, तो नारी रूप में एक और कलंक मेरे माथे पर लग सकता है। जेबुन ने लिखा कि भाभी कहती है, यह कलंक मेरी आत्मा को शान्ति नहीं देगा। मेरे द्वारा पति और पुत्र को जीवन नहीं मिला, तो यह जीवन बेकार ही जायेगा...मिट्टी बन जायेगा! और जिस पूंजीवाद से अभयबाबू ने अपना नाता बांध लिया है, वह इतना कठोर और भारी है कि टूट नहीं सकता। समाज के ऊंचे स्तर पर बैठकर, भला आदमी क्या नीचे उतरता है! पार्टियां होती हैं, दावतों में अभयबाबू निमन्त्रित किये जाते हैं, और विशिष्ट स्थान पर बैठाये जाते हैं। उन पार्टियों में जो वार्ताएं चलती हैं, मन और आंखों की वाणी द्वारा पारस्परिक स्नेह, सौहार्द तथा सहयोग स्थापित किया जाता है, वह क्या भुला देने की बात है। न, अब वह अभयबाबू के लिए सुगम नहीं। वह वक्तव्य और भाषण देते हैं, परन्तु उनमें अभयबाबू की आत्मा नहीं...पूंजीवाद के समाज जैसे कोरे आदर्श का दम्भ करके ही, समाज की आत्मा रूपी काया को नोंचा जा रहा है और झिंझोड़ा जा रहा है...

महेन्द्रकुमार द्वारा ग्रामीण-क्षेत्र में सुधार-आन्दोलन के साथ इस बात का पूर्ण दृढ़ता के साथ प्रचार किया जा रहा था कि जमीन की उपज का अधिकांश लाभ किसान और मजदूरों को हो। इस प्रयत्न के लिए कुछ व्यवहारिक सुझाव भी ग्रामीणों को दिये गये। महेन्द्रकुमार का इस उद्देश्य में निहित प्रयत्न का अर्थ ही यह था कि पूंजी और श्रम—बुद्धि और श्रम—जब तक अपने-आप में सहृदय, समष्टिवत् समन्वित नहीं होंगे, समाज ऊपर नहीं उठेगा। देर से महेन्द्र के मन में यह बात थी कि पूंजी का

अर्थ ही यह है कि साधन एकत्रित करे। किन्तु उन साधनों का नियोजन करना, श्रम द्वारा साधना करना, यह तो श्रमिक का ही काम था। लेकिन उसे यह देख कर क्लेश होता कि उस श्रमिक की साधना का मूल्य अपेक्षाकृत इतना न्यून रखा गया कि मानव खिन्न बन गया,—दास और कंगाल हो गया। फलस्वरूप, गांवों में खेती के व्यवसाय के अतिरिक्त सामुहिक रूप से कारखाने खोले गये। करघों का आयोजन किया गया। अवसर की बात यह थी कि उस प्रान्त की रुई देश के सभी प्रान्तों से बढ़िया और अनुपाततः अधिक उपजती थी। किन्तु किसान उस रुई को पैदा करके भी नंगा था। अन्न पैदा करके भी भूखा था। प्रजा-संघ द्वारा किये गये आन्दोलन का प्रभाव यह हुआ कि बाहर रुई का जाना बन्द होने लगा। किसानों ने अपने स्वार्थ का त्याग किया। जन-तन्त्र के युग की पुकार को सुनने का प्रभाव इससे बड़ा और क्या हो सकता था कि घर-घर चर्खे चलने लगे। प्रत्येक गांव में जुलाहे अपना काम करने लगे। कोई बेकार नहीं रहा। पराजित नहीं रहा। अन्यथा, अवस्था यह थी कि गांव उजड़ गये। बेकार व्यक्ति जीविका के हेतु नगरों में जा बसे। गांव सूने खण्डहर हो गये और नगर कोलाहल से पूर्ण!

आरम्भ में, इस कार्य के हेतु महेन्द्रकुमार को कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी। प्रतिरोध भी सामने था। उस अवस्था में ही, महेन्द्र को देखकर अचरज हुआ कि नगर के बड़े-बड़े कारखाने-दारों के दलाल फसल से पूर्व ही, किसानों को पैसा बांट जाते और रुई का सस्ते से सस्ता भाव ठहरा जाते। अतएव, उस लालच को मारने के लिए, पैसा महेन्द्र के लिए आवश्यक था। और वह पैसा पूंजीपतियों के पास से ही प्राप्त किया जा सकता था। किन्तु वर्ष से ऊपर हुए समय में, महेन्द्रकुमार ने इतना प्रभाव और

विश्वास उस ग्रामीण-समाज पर अवश्य स्थापित कर लिया था कि जिससे उसकी बात में बल हो, चेतना हो और नव-स्फूर्ति अनुभव की जा सकती हो। फलस्वरूप, वह पैसा स्वयं ग्रामीणों ने अपने पौरुष से ही उपार्जित किया। कोआपरेटिव ढंग पर काम आरम्भ किया गया। पहिले छोटे-छोटे कारखाने खोले गये, फिर बड़ों का सिलसिला आरम्भ होने लगा। नगरों की पूंजी गाँवों में आने लगी। व्यक्ति भी आने लगे। सूखे मुंह और दुर्बल शरीरों पर खून छलकने लगा। आत्म-गौरव और आत्म-भाव भी उन ग्रामीणों में दिखायी देने लगा।

किन्तु महेन्द्रकुमार के इस सफल प्रयत्न से नगरों में बैठे हुए बड़े-बड़े कारखानेदार इसलिए स्तब्ध रह गये कि उन्हें अपनी शक्ति पर नाज था, उस पर भरोसा था। श्रम का मूल्य उनकी दृष्टि में सदा ही हीन बना रहा। उनकी दृष्टि में बुद्धि का चमत्कार ही सर्वोपरि था। लेकिन महेन्द्रकुमार ने जिस आधार पर आश्रित बनकर, उनके मर्मस्थल पर आघात किया, वह भी असहनीय था। कारखानों के लिए रुई की दरकार थी। और वह उसी प्रान्त से मिलती थी। अच्छी मिलती थी, सस्ती मिलती थी। परन्तु उस रास्ते के बन्द होने के कारण उनका मार्ग प्रायः अवरुद्ध हो गया था। उन्हें आगे बढ़ने के लिए रास्ता नहीं था। कई बार महेन्द्र-कुमार तथा अन्य व्यक्तियों के समक्ष नगर के पूंजीपतियों द्वारा समझौते का प्रयत्न किया गया, लेकिन महेन्द्र ने सदा ही कहा, पेट की रोटी के प्रश्न पर समझौता नहीं किया जाया करता। अतएव, बात चलती और रुक जाती।

और इस प्रसंग में यह बताना कदाचित आवश्यक ही होगा कि प्रजा-संघ द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में किये जाने वाले इस

प्रयत्न में रानी और जेबुन्निसा का विशिष्ट सहयोग प्राप्त हुआ। गांवों के कारखानों से जो माल तैयार होकर नगरों में जाता, उसके लिए बाजार तैयार करना इन्हीं दो नारियों का काम था। अवस्था यह हुई कि इतना माल तैयार न हो पाता, जितना कि खप जाता। हैंडलूमों पर तैयार किया हुआ कपड़ा टिकाऊ, मुलायम और सुन्दर होता। प्रदर्शन का भी ध्यान रखा जाता। नये-नये डिजाइन नगरों में जायें, ऐसा प्रयत्न किया जाता। अवस्था यह थी कि मिल और हैंडलूमों में जैसे प्रतिस्पर्धा का बोलबाला हो गया। ग्रामों से आया हुआ वह कपड़ा अपेक्षाकृत सस्ता भी होता। यद्यपि, रानी का मत था कि जब देश का माल है, सर्वथा स्वदेशी है, तो भले ही मोटा हो, किसी भी सभ्य नागरिक को उसे खरीदना चाहिए और पहनना चाहिए। फलस्वरूप, इस विज्ञापन को देख कर बाबू अथवा लाला कपड़ा खरीदते और प्रसन्न मन घर ले जाते।

इसके साथ, पति गृह को छोड़ कर रानी ने अपने को एक दिन भी अकेली नहीं पाया। उसके साथ पुरुष थे, नारियां थीं। किन्तु रानी के लिए यह गौरव की बात थी कि जितना नारी समूह उसने तब अपने साथ पाया, उतना कदाचित ही कभी देख पाया, या सुन पाया। उन नारियों में सभी प्रकार की और सभी स्थितियों की नारियां थीं। निर्धन थीं, धनिक थीं। विवाहित थीं, अविवाहित थीं। बूढी थीं, जवान थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि रानी अपनी इच्छा के अनुरूप अपना मार्ग प्रशस्त कर सकी। वह अपना वेग बढ़ा सकी। कार्य शक्ति दिखला सकी।

सभी प्रान्तों और नगरों के समान, उस नगर में भी शरणार्थी समस्या मुख्य थी। पंजाबी और गैर-पंजाबी का प्रश्न भी चलता था। वह पंजाबी जो लुट और पिट कर आये थे, स्वभा-

वत: आराम करने वाले नागरिकों को देखकर कुढ़ते और जलते थे। किन्तु उन्होंने जिस प्रकार पुरुषार्थी बनकर अपने पौरुष का प्रदर्शन किया, वह सचमुच ही, किसी भी नागरिक के लिए शिक्षा का एक विमल पाठ था। अतएव, उन शरणार्थियों में सहृदयता, बन्धुत्वता की भावना किस प्रकार विकसित हो, वहां के नागरिक के लिए समर्पित हो, इसके लिए रानी ने एक ही मार्ग खोजा कि जातीयता और राष्ट्रीयता के लिए मर-मिटने वाले इस विशाल काफिले के चरणों में नागरिक अपने को झुका दें। वे समझें, इनका घर लुटा है, सम्मान लुटा, जन और धन लुटा है, तो हमारे हृदय पर आसीन होने का इन्हें अधिकार है...हम इनके हैं, ये हमारे हैं।

रानी के साथ, नगर की जिन सैंकड़ों नारियों ने सहयोग दिया, तो इसका परिणाम यह हुआ कि उन नारियों ने नगर में घूम-घूम कर जहां और सेवा कार्य संपन्न किये, शरणार्थियों के लिये मकान और दुकानों का भी प्रबन्ध किया। नगर के जो गृहस्थ शरणार्थियों को अपने यहां बसाने में असमर्थ थे, भयभीत थे, उन्हें इस बात के लिये सहमत किया कि वे सहयोग दें,—भाई को गले लगायें। जिन्होंने देश और जातीयता के नाम पर आत्म-बलिदान दिया, उन्हें उपेक्षित तथा तिरस्कृत करना स्वयं आत्मघात करना है।

सरकार जिस समस्या को सुलझाने के हेतु करोड़ों रुपया व्यय कर रही थी और समस्या सुलझ नहीं पा रही थी, वह उन नारियों के सहयोग से सुलझने लगी। अवस्था यह हुई कि नागरिक सड़क पर पड़े हुये शरणार्थियों के पास जाते और उन्हें अपने साथ घरों में लाकर बसाते। जिन्हें अन्य सहयोग की आवश्यकता थी, वह भी देते।

किन्तु रानी के इस सहयोग को पाकर जहां सरकार कृतकृत्य थी, वहाँ वह रानी द्वारा बहिष्कृत अन्य समस्याओं के प्रति चिंतित थी। गुलाबसिंह मिल की हड़ताल खत्म हो चुकी थी, परन्तु समझौते के जिस मसौदे पर वह हड़ताल स्थगित की गयी, मिल अधिकारियों द्वारा आश्वासन देने के बाद भी, मजदूरों की मांगें अभी स्वीकृत नहीं हुई थीं। अतएव, मजदूरों में रोष था। रानी चिंतित थी। रानी को यह भी पता था कि समझौते के जिस बहाने को लेकर हड़ताल खत्म करायी गयी, उस नीति को व्यवहृत करने में अभयबाबू का प्रधान हाथ था। कदाचित उन्होंने मिल अधिकारियों से कहा था कि एक बार हड़ताल समाप्त होने पर फिर नहीं हो सकेगी। सामुहिक जोश मर जायगा।

लेकिन रानी को इस नीति पर भरोसा नहीं था। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि हड़ताल फिर भी हो सकेगी। उसने जैसे पहिले हड़ताल जीवित रखी, तो आगे भी रख सकेगी।

निदान, संघर्षों के उस दौर में गुलाबसिंह मिल के मजदूरों ने एक दिन फिर मिल अधिकारियों को नोटिस दे दिया कि वे समझौते की शर्तें पूरी करें, अन्यथा हम फिर हड़ताल करने पर विवश होंगे।

अभयबाबू ने यह सुना, तो उपेक्षा भाव में मुसकरा दिया और हँस दिया।।

जिस दिन मजदूरों ने नोटिस दिया, तो जेबुन रानी के पास आई और चिन्तित मुद्रा में बोली—'हड़ताल के दिनों में तुम बहुत परेशान थीं, भाभी! फिर वही। देखती हो, तुम थक चली हो!'

बात सुनी और रानी सूखे भाव में मुसकरा दी—'इस थकने के बाद ही मेरी मौत है,—तू यही कहती है, जेबुन!'

जेबुन ने रानी की मुद्रा देखी। अब रानी के सिर पर काले बाल नहीं थे। वे प्रायः सफेद हो चले थे। उस सफेद मुंह पर वे सफेद बाल सचमुच ही अच्छे लगते थे। जब जेबुन आई, तो रानी पूजा के आसन पर बैठी हुई गीता का पाठ कर रही थी। अतएव, जेबुन की दृष्टि में वह महान और गौरव की मूर्ति थी।

रानी फिर बोली—'हां, बोल न! क्या मौत!'—उसने कहा—'री, पगली! मौत तो आती और जाती है। वह कभी भी आ सकती है। लेकिन जब तक यह जीवन है,—यह जीवन-रेखा है,—तो इसको लांघना क्या शोभा देता है? अपना अधिकार पाने के लिए यह मानव सदा ही संघर्ष करता रहा है। अपने से लड़ता रहा है। मैंने तो यही अपने पिता और पति से सुना। यही स्वीकार किया।'

तुरन्त ही, रानी की बात सुनकर जेबुन बोली—'भैया ने कहा, वह तुमने स्वीकार किया, भाभी! सच!'

रानी मुसकरा दी—'और तुझे अचरज क्यों हुआ है। जिस अपने भैया की बात तू कहती है, वह मेरे पति हैं। पूजनीय हैं। आज मेरा उनसे विचारों का मतभेद है। जो पैसा उन्होंने पाया है; उससे भी मतभेद है, परन्तु इसके अर्थ यह कदापि नहीं कि तेरे वह भाई मेरे शत्रु बन गये हैं,—पति नहीं रह गये हैं, कहते हुए रानी रुक गयी। उसकी दृष्टि दूर आकाश की ओर चली गयी। उसी ओर लक्ष करती हुई वह बोली—'जेबुन्निसा, मेरे पति हृदय के उदार हैं। वे निष्कपट हैं। वे स्वार्थियों में घुस गये हैं। यह न सोचना, मैं उनसे विद्रोह करना चाहती हूं। मैं तो अपने पति को महान देखना चाहती हूँ। अपने त्याग द्वारा मैं पति और पुत्र को सच्चा मानव पाना चाहती हूं। देखा मैंने कि घर में रह कर मैं उन्हें उस गिरोह से नहीं निकाल सकती, तो अपने उस घर

से बाहर आकर उन्हें निकालने का प्रयत्नकरती हूँ। मेरे पति माया के महल में पहुंच गये हैं। वह महल सोने-चांदी से बना है। उस महल के पहरेदार उनके चारों तरफ हैं। वे किसी ओर की बात उनके कानों में नहीं जाने देते हैं। निरुपाय, बाहर की शक्ति का आश्रय लेकर मैंने बाहर से ही चोट पहुंचानी चाही है। कुछ लोगों ने कहा है कि मैं पति को बदनाम करना चाहती हूँ। उन्हें अपने से निष्कृष्ट बताना चाहती हूँ। हाय! मैं कैसे उन लोगों को अपना हृदय चीर कर दिखाऊं कि मेरे पास पति-पूजा को छोड़कर और कुछ नहीं है...हां, जेबुन! मेरा यह निश्चित मत है, जो नारी पति का विश्वास पा सकेगी, वह जनता-जनार्दन की कृपा और आशीष भी पाने में समर्थ होगी। मेरे पति आज भी जनता की करुण पुकार में खो जाते हैं। वे मैंने रातों-रात जागते और रोते हुए देखे हैं। परन्तु आज,—आज,—हे, परमात्मा!'

जेबुन ने कहा—'भाभी, समय की बात है!'

रानी बोली—'हां, समय की बात है। भिखारी मालदार बन गया है। चिन्तनीय और सहृदय मानव में जहरीले कीटाणु पैदा हो गये हैं।'

चिन्तित भाव में जेबुन ने कहा—'जहरीले कीटाणु—विष!'

रानी बोली—'जब आदमी ईर्षालु और स्वार्थान्ध बनता है, तो उसमें विष के अतिरिक्त और क्या रहता है! उसके अन्तर का परमेश्वर भी उससे दूर हो जाता है।'

देर से रुकी हुई बात को लेकर जेबुन बोली—'अच्छा भाभी, तुम भी धार्मिक हो, मेरी अम्मी भी धार्मिक थीं; नमाज-रोजे रखती थीं, भला बताओ तो, इसमें कितनी सार्थकता है?'

बात सुनी और रानी ने अपनी आंखें जेबुन के मुँह पर पसार दीं—'धार्मिक व्यक्ति यदि विवेक शून्य नहीं तो वह समाज के लिये

अधिक उपयुक्त होता है। वह दया और धर्म को मानता है। मानव को देवता,---ईश्वर का अंग ही मानता है। इसलिये वह मानव की भी पूजा करता है। वह समाज का हितचिन्तक बनता है। ऐसा मनुष्य सचमुच ही शान्ति पाता है।'

जेबुन ने कहा---'कल महेन्द्रबाबू का पत्र मिला। अधिक तो कुछ नहीं लिखा, बस कहा है, मैं जल्दी नगर में आने वाला हूँ।'

रानी ने कहा---'कल ही मुझे पत्र मिला। वह इसी सप्ताह आ रहा है।'

जेबुन ने कहा---'सुनती हूँ उनका काम बड़ा है। सरकार ने भी उसे महत्व दिया है!'

रानी ने कहा---'भैया ने जो काम किया, एक मनुष्य कदाचित ही एक जीवन में कर सकता है। गाँवों का क्षेत्र ही, उसका कार्य-क्षेत्र बन गया है।'

जेबुन ने इतना सुना और मुग्ध-भाव में अपनी दृष्टि को हरे आसमान की ओर उठा दिया।

बयालिसवाँ अध्याय

अगला दिन, एकाएक ही, रानी के लिए परीक्षा-काल बन गया। पिछले दिन की सन्ध्या से ही गुलाबसिंह मिल तथा अन्य मिलों के कर्मचारियों ने मिल अधिकारियों द्वारा उनकी मांगें स्वीकृत न करने के विरोध में हड़ताल करदी। फलस्वरूप, अगले दिन से नगर की आधी मिलें बन्द हो गयीं। वे समस्त कर्मचारी 'घर पर रहो' का आन्दोलन कर रहे थे। अवस्था यह थी कि मालिक और मजदूर के उस विरोधाभास में नगर का शान्त वातावरण दूषित बन गया। कहीं कोई अघट घटना न हो जाये, अतः नगर के अधिकारी-वर्ग ने सतर्कता के लिए सुरक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक समझा। मिल-अधिकारी और सरकार की दृष्टि में यह अपराध रानी का था। मजदूर आन्दोलन उसी की प्रेरणा का प्रतिफल था। उनके मत से रानी का आवाहन मजदूरों को प्रेरणा प्रदान कर रहा था।

यद्यपि पिछले दिनों की हड़ताल में रानी को जिस अथक परिश्रम से लड़ना पड़ा, वह दृश्य अभी उसके स्मृति-पट पर अंकित था। कदाचित इसीलिए, उसका मत अभी हड़ताल के पक्ष में नहीं था। परन्तु मजदूर नेताओं ने रानी को सूचित किया कि गुलाबसिंह मिल के साथ, अन्य मिल मालिकों ने मजदूरों को दो टूक जवाब दे दिया। रोटी मांगी थी कि पत्थर मार दिया। इस प्रकार उन्होंने न केवल मजदूरों की मांग ठुकरा दी, अपितु, भविष्य के लिए भी सभी-कुछ अवरुद्ध कर दिया। रानी मजदूर नेताओं का विरोध नहीं कर सकी। उसकी दृष्टि में यह मजदूरों के स्वाभिमान का प्रश्न था। वह समझती थी कि आत्म-गौरव

को खोकर मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। उसका मत था कि अपने स्वार्थ के लिए किसी की विवशता से लाभ उठाना, उसके आत्म सम्मान पर प्रहार करना, सभ्य मानव का गुरुतर अपराध है। इस अपराध की आत्मा कितनी गन्दी, वीभत्स और हीन बनी हुई है, ऐसा लक्ष करके ही उसकी आत्मा में कंपन होता। उस अवस्था में बरबस ही, उसे अनुभव होता कि ऐसे तो, मानव एक नहीं बनेगा!...स्वार्थ और दम्भ है, तो इन्सान दूर-दूर रहेगा! शक्ति का उपयोग जब सन्तुलित नहीं होगा तो ऐसे ही इस परम-आत्मा का दुरुपयोग होता रहेगा...

परिणामस्वरूप, एक गुरुतर भार रानी ने फिर अपने ऊपर ले लिया। उसे जहां उस विशाल मजदूर-वर्ग के भोजन का प्रबन्ध करना था, वहां मिल-अधिकारी तथा सरकारी-वर्गसे भी सम्पर्क स्थापित करके समझौते का फिर कोई मार्ग निकालना था। क्योंकि रानी की यह भी निश्चित धारणा थी कि जब तक मजदूर स्वयं अपने-आप नहीं उठेगा, सरकार द्वारा भी उसके श्रम को महत्व नहीं दिया जायेगा। और राज्याश्रय जब तक नहीं मिलेगा, तब तक मजदूर समुदाय के समक्ष उसके पथ पर इसी प्रकार विशाल अन्धकार छाया रहेगा। रानी का यह भी निश्चित मत था कि पूंजी का भले ही कोई विशिष्ट पद हो, परन्तु जिस श्रम के द्वारा उसका विकास किया जा रहा है, उस श्रमिक को किसी अवस्था में भी निम्न दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। रानी कहती थी, श्रम और पूंजी दोनों समान हैं। दोनों का बल महान है। दोनों के तेज से ही दुनिया का सौन्दर्य चमकता है। इन्सान वैभव संपन्न बनता है।

लेकिन रानी के उस परीक्षा-काल की अन्तिम सम्पुट कदाचित अभी शेष थी। वह अतिशय जर्जर तथा क्लान्त बन कर प्रगट

हुई। जब अगले दिन हड़ताल आरम्भ हुई, तो घर पर विनोद के कालेज से लौटते समय रानी वहाँ नहीं थी। वह मिल-क्षेत्र में थी। किन्तु अवसर की बात कि विनोद की अवस्था बिगड़ गयी। गर्मी के कारण उसे रास्ते में उल्टी हो गयी। हैजे की अवस्था उसे पकड़ चुकी थी। निदान, विनोद की दयनीय अवस्था थी। उस समय जेबुन्निसा घर पर आई हुई थी। उसने तुरन्त रानी को खबर भेजी। डाक्टर बुलाया। जब रानी घर लौटी, तो उस घर पर भीड़ एकत्र थी। नगर के समाज की सद्भावना रानी के पुत्र पर ममता और करुणा के साथ केन्द्रित थी।

पुत्र की वह अवस्था देखकर रानी नितान्त गम्भीर थी। एकत्र समाज में आवाज उठ रही थी, अभयबाबू नहीं आये! उन्हें आना चाहिए। रानी पर विपत्ति है...पुत्र काल के मुंह में है!

किन्तु रानी ने अत्यन्त धीर तथा गम्भीर भाव धारण करके कहा—'उन्हें नहीं आना चाहिए...वह नहीं आयेंगे!'

'क्यों? क्यों?'

'यह संघर्ष की अवस्था है। हम दोनों ही युद्ध में लिप्त हैं। दोनों के स्वार्थ हैं।'

'तुम्हारा स्वार्थ...जनता की देवि का स्वार्थ!'

रानी ने कठिनाई भरे स्वर में बताया—'मेरा भी स्वार्थ है। समाज के जिस निम्न वर्ग से मेरा सम्बन्ध है, वह स्वेच्छाचारियों द्वारा इन्सानियत से भ्रष्ट किया जा रहा है। उसके पेट पर आघात किया गया है। मेरे पति ने आज उसी उच्च वर्ग को बल प्रदान किया है। उसकी शक्ति के सामने अपना सिर झुका दिया है!'

किन्तु रानी से फिर कहा गया—'तो तुम्हारे विरुद्ध...पत्नी के विरुद्ध! हे, राम!'

और रानी के पास जैसे इस बात का उत्तर नहीं था। मानो उसके पास वे शब्द ही नहीं थे कि जिनसे चिन्तित समाज को शान्त किया जा सकता था।

धीरे-धीरे वह घर नर और नारियों से भर रहा था। दो जाते थे दस आते थे। अमीर-गरीब सभी आ-जा रहे थे। डाक्टर क्षण-क्षण पर विनोद की अवस्था देख रहे थे। वे बार-बार कह रहे थे कि रोग असाध्य नहीं। मृत्यु का कोई चिह्न नहीं।

किन्तु रानी फिर भी मौन थी। वह बार-बार ऊपर आसमान की ओर देखती और जैसे अपने अन्तर के देवता को वहीं पर मुसकराता हुआ पाती। सोचती रानी, मानव की यही स्थिति है। यही परीक्षा। और संघर्षों के व्यूह को भेदने की क्रिया समझना ही जैसे इन्सान की सफलता है। यही जीवन की पूजा है। मानो एक महान लक्ष्य। उन कुछ क्षणों में ही रानी को स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ कि उसका जीवन निश्चय ही असंख्यों बार जन्मा है। उन सभी जन्मों का इतिहास उसके सामने खड़ा है। वह जैसे अलहड़ भाव से खिलखिलाकर हँस रहा है। परम आत्मा के आंदोलन से पूर्ण बन कर चीत्कार कर रहा है। वह इतिहास मानो स्पष्टतया रानी को सुना रहा है—ए रानी! तू अकेली क्यों? देख तो हमारी पूजा, समस्त अर्चना और जीवनोत्तर की गयी साधना तेरे साथ है। यह पुत्र, कि जिसकी ममता में तेरा प्राण अटका है, एक दिन यही तेरा पिता था, फिर मा।...हां, रानी! तेरा इसका यह जीवन-क्रम तो देर से चला आया है। सृष्टि के आरंभ से विभिन्न अवस्थाओं को पार कर आया है। जीवन का यह आंदोलन, यह ममत्व और यह निष्क्रमण भौतिक शरीर का स्वभाव रहा है। जो आता है, उसे जाना ही पड़ता है...

उसी समय जेबुन ने टकोर कहा—'भाभी!'

रानी ने बरबस अपनी भरी हुई आँखों को उसके मुँह पर टिका दिया।

जेबुन ने रानी के उन आँसुओं को देखकर कहा—'मैं तो स्वतः कमजोर हूँ भाभी ! तुम रोती हो ! भैया विनोद अच्छा हो जायेगा।'

सुन कर रानी ने साँस भरी—'हाँ, क्यों न अच्छा हो जायगा।'

किन्तु तदन्तर ही, रानी चौंक गयी। उसकी दृष्टि एक आगन्तुक पर टिक गयी। वह व्यक्ति परेशान था। जैसे विक्षिप्त। वह मिल से आया था। पसीनों से लथपथ। रानी ने उसे देखते ही पूछा—'क्या है, जनार्दन ?'

जनार्दन ने अपने चारों ओर लक्ष किया। वहां की अवस्था को देखा। बोला—'मिल क्षेत्र की दशा खराब है। सशस्त्र पुलिस आ गई है। गोली चल जाने की संभावना है।'

सुनते ही, रानी का माथा ठनक गया। आँखें चढ़ गयीं। पुत्र की ओर से ध्यान चला गया। उसने जनार्दन से पूछा—'क्यों ? किसलिये ?'

जनार्दन बोला—'मिल अधिकारी बलपूर्वक मजदूरों से काम लेना चाहते हैं।'

इतना सुनते ही, रानी की छाती पर घूंसा लगा। वह तड़प गयी। तुरन्त खड़ी हो गयी। वह चलने के लिये उद्यत बन गयी।

जेबुन ने चंचल बन कर कहा—'भाभी !'

किन्तु रानी ने कहा—'न, जेबुन ! उन हजारों मजदूरों के प्राणों पर आघात किया जा रहा है। उनकी आत्मा को कुचला जा रहा है। मैं जाऊँगी। गोली चली, तो मैं...मैं...'

एकत्र समाज में से आवाज उठी—'और विनोद...तेरा लाल.. '

रानी मुसकरा दी—'विनोद तुम्हारा है। समाज का है। मैं मैं तो निमित्त मात्र थी। अधिकार तुम्हारा है।' कहते हुए उसने जेबुन के सिर पर हाथ रखा—'तू यहीं रहना। भगवान पर भरोसा करना। वहाँ जाना मेरा कर्तव्य है। वही तो मेरे जीवन की पूजा है। दिखता है कि आज ही मेरा परीक्षा-काल है। यह पूजा भ्रष्ट हुई तो क्या मेरी आत्मा को शान्ति का सांस मिलेगा। मेरा व्रत भंग हो जायगा, जेबुन !' इतना कहा और रानी जनार्दन के साथ चल दी,—वह चली गयी।

जब रानी मिल क्षेत्र में पहुंची, तो वह यह देख कर दंग रह गयी कि सचमुच शक्ति का जोर उन निरीह और कंगाल बने हुए मजदूर-समाज पर तोलने की तैयारी हो रही थी। बन्दूकों के मुँह मजदूरों की ओर उठे थे। मुँह मानो चिल्ला रहे थे—हम हैं पूँजीवाद के सहायक .. राज्य बल...

हाय ! यह भी कैसी विवशता थी कि वह मजदूर-वर्ग भी निर्बल तथा निस्तेज बना हुआ उन बन्दूकों के सामने खड़ा था। छाती ताने हुए था। वह वर्ग चिल्ला रहा था—'हम अपना खून देंगे...अपना स्वत्व प्राप्त करेंगे !'

रानी ने अग्रिम पंक्ति में जाकर उन बन्दूकधारी सैनिकों को संबोधित किया—'मुझे मारो ! अपराध मेरा है। मैंने ही इन मजदूरों को प्रेरित किया है। मैंने इन्हें अधिकार पाने का मन्त्र दिया मैं। मरने के लिये कहा है।' वह बोली—'जो दूसरों को मार कर जीते हैं, जीवन उनका नहीं; जो दूसरों के लिये मरते हैं, जीवन वही पाते हैं। चलाओ गोली। साधो मेरी छाती का निशाना...'

और जैसे शिकारी को अपना शिकार मिल गया था। रानी का प्रयत्न उस पूँजीवाद के मार्ग में रोड़ा था। रानी ने उस वर्ग के

मर्मस्थल पर आघात किया था। अतएव, भीड़ को हटाने के लिए पुलिस ने पहिले हवा में फायर किये, फिर निशाने साधे। पल-भर में दो राऊंड दन-दन करते हुए उन मजदूरों को भेदने में सफल हो गये। अनेक मजदूर धराशायी हो गये। यह सभी ने देखा कि उन गोलियों का प्रथम वार रानी पर पड़ा। वह गिर गयी, वह चिल्लायी—'मजदूरो, आगे बढ़ो। अपना अधिकार लो...अपना सम्मान...इन्सानी गौरव...'

फलस्वरूप, मजदूर भागे नहीं। पीछे नहीं हटे। वे भूके मानव अपने स्थान पर डटे रहे। परन्तु, हाय! कितनी दयनीय और विषम अवस्था थी, वह! तुरन्त ही, नितान्त क्षत-विक्षत अवस्था में लहू-लुहान बनी हुई रानी अस्पताल में पहुंचायी गयी। यह बात नगर भर में फैल गयी। चहुं ओर जैसे आग लग गयी। और वह सबसे बड़ी आग उस अभयबाबू के अन्तर में लगी कि जिनकी पत्नी पूंजीवाद की बर्बरता तथा अमानुषिकता का शिकार बन चुकी थी। जिस समय गोली चली, तो अभयबाबू सरकारी अधिकारी और मिल मालिकों की उस गोष्ठी में सम्मिलित थे कि जो नगर की उस बड़ी हड़ताल के ऊपर विचार विनिमय कर रही थी। किन्तु जब उन्होंने रानी की अवस्था का समाचार पाया, तो वे चौंक गये। आंखों में खून उतर आया। पुरुषत्व जाग गया। वे अस्पताल की ओर दौड़ पड़े। यद्यपि उनके साथ वह समस्त गोष्ठी थी, परन्तु अभयबाबू के मन में जिस प्रतिक्रिया की आग भभक उठी थी, उसके अंगारे चट-चट चटख रहे थे। वे मानो उन्हीं को भस्म करने में समर्थ हुए दीखते थे। सन्तोष चला गया था। क्रान्ति और असन्तोष ही उस मानव के खून में बोल उठा था।

रानी के शरीर पर अनेक आघात थे। वह बेहोश थी। बंदूक की गोलियां उसके शरीर से निकाल दी गयीं। किंतु जब उसे होश

हुआ, अभयबाबू को देखा, तो उसने मुँह फेर लिया। क्षीणभाव में जेबुन को लक्ष किया।

जेबुन ने कहा—'भाभी, विनोद अच्छा है।'

जेबुन से अभयबाबू बोले—'अपराध मेरा है। मेरा पाप बोल रहा है।' उन्होंने अपने सिर के बाल पकड़ लिये और कहा—'रानी क्या घायल हुई, मैं घायल हुआ हूँ। मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। मेरे जीवन की दिशा बदल गयी है। संचित संपत्ति में से एक पैसा भी अपने लई उपयोग करना मेरे लिये पाप है। मैं फिर क्रांतिदूत बनूँगा...मैं अपने को जनता जनार्दन की झोली में डाल दूँगा!'

जेबुन ने धीमे स्वर में कहा' भाईजी, विनोद की अवस्था भी अच्छी नहीं है।'

अभयबाबू ने कहा—'मुझे पता है।' वह बोले—'परन्तु मुझे रानी चाहिये,—पथ-निर्देश तो मुझे इस रानी से प्राप्त हुआ है। जीवन इस रानी ने दिया है।'

डाक्टर ने कहा—'आप शान्त रहिये, अभयबाबू! अवस्था खराब है! गोली का आघात हृदय पर हुआ है।'

यों रात बीत गयी थी, सवेरा आ गया था।

नगर में चारों ओर सन्नाटा था। मानो स्मशान का दृश्य ही उस नगर में आ उपस्थित हुआ था। सुरक्षा के लिये पुलिस और फौज सर्वत्र लगी थी। अस्पताल के द्वार पर अपार जन-समूह एकत्र था। वह चिल्ला रहा था—'रानी की जय हो...इन्किलाब जिन्दाबाद!'

उसी समय वह अपार भीड़ अपने-आप एक व्यक्ति को रास्ता दे रही थी। वह उसे उत्कृष्ट दृष्टि से देख रही थी। वह चिल्ला रही थी, 'महान भाई की महान बहिन! युग की प्रतीक...

युग की ज्वाला!' महेन्द्र उस युग का नेता बना हुआ और एक पागल के सदृश होकर, मौन भाव में, भीड़ को चीरता हुआ अस्पताल में प्रविष्ट हुआ। वह उस कमरे के द्वार पर पहुँचा कि जहां जेबुन, अभयबाबू, रानी के पिता तथा अन्य संबंधी एकत्र थे। वे सभी उसे देख कर सिसक उठे थे। देखते ही, अबयबाबू महेन्द्र से चिपट गये। उस अवस्था में ही, महेन्द्र ने अपनी रोती हुई आँखों से जेबुन को देखा, तो उसकी आँखें भी भरी पायीं और वे उसके गालों पर बहती दिखाई दीं। और महेन्द्र अपनी उन अश्रुपूर्ण आँखों से देख रहा था कि रानी का वह प्राणहीन, पंच-भौतिक शरीर, श्वेत खद्दर के कफन में लिपटा पड़ा था......

जयहिन्द